॥ अस्य पुस्तकस्यानुक्रमणिका ॥



॥ ॐ श्रीवर्द्धमानाय नम ॥ श्रीगौतमाय नम ॥

॥ अथ ॥

श्रीदेवचंद्रजीकृत श्रीआदिनाथप्रमुख चोवीश तीर्थंकरनी स्तवनागीत चोवीशनो बालावबोध सहित प्रारंभ करिये छैये

तत्र प्रथम पीठिका

ए ससारी जीव, देवतत्त्व, गुरुतत्त्व, धर्मतत्त्वनी भूलें अनादिनो ससारचक्र मांहे नमी रह्यो छे, शरीर इंद्रियसुख परिग्रह तेने हितकारी मान्या छे, अने पोतानु आत्मस्वरूप, अनतानदमय विसारी मूक्यु छे, ते सनारतोज नथी, पण सज्ञी पचेंद्रियपणु पामीने, जो पोतानो शुद्धधर्म तथा शुद्ध धर्मना कारण सेवे नहीं, तो आत्मा स्यात् स्वसपदा केम पामे ? तेमाटे उपकारी,जगत्हितकारी, श्रीवीतराग,परमात्मा,परमपुरुषोत्तम, एवा श्रीअरिहतनी स्तवना तथा सेवना करवी,पण राग विना प्रनुनी सेवना थाय नहीं, ते कारणथी प्रथम श्रीऋषनदेवजीनी स्तवना करता श्रीवीतराग उपर प्रीति करवी, ते रीत कहे छे प्रथम धर्मना चार आचरण कह्या छे १ प्रीति, २ नक्ति, ३ वचन, ४ असग तेमा प्रथम प्रीतिनु लक्षण, षोडशकटीकाथी जाणवु "यत्रानुष्ठातु आदरप्रयत्नातिशयो स्ति प्रीतिश्च अनिरुचिरुपाहित उदयोयम्या सा तया नवति कर्तु अनुष्ठातु शेषाणां त्यागेन च तत्काले यच्च करोति तदेकमात्रनिष्ठतया तत्प्रीत्यनुष्ठान ज्ञेयमिति " जिहा आचरण करवा वालानु अति आदर सहित उद्यमनु अतिशयपणु होय, ते प्रीति जाणवी, ते प्रीतिना विलास विना चाले नहीं, माटे तेहना रुचि अनिलाषी जीवे बीजा सर्व कार्य तजीने तेहज करवु तथा तिहाज एक निष्ठा प्रतीति करवी, तेने प्रीतिअनुष्ठान जाणवु ॥ इति नावार्थ ॥ ते प्रीति ससारी नावथी सर्व जीवोने छे, पण ते पलटावीने गुणीथी करवी, ते कहे छे

॥ अथ प्रथम श्रीऋषनजिन स्तवन ॥

॥ निंदडी वेरण हुइ रही ॥ ए देशी ॥

ऋषन जिणदशु प्रीतडी, किम कीजे हो कहो चतुर विचार ॥ प्रनुजी जइ अलगा वश्या, तिहा किणे नवि हो कोइ वचन उच्चार ॥ऋ०॥१॥

अर्थ —श्रीनाभिकुलवरनी नार्या, श्रीमरुदेवी स्वामिणीनी कुक्षिने विषे उत्पन्न थईने जेणे अढार कोडा कोडी सागरोपम सुधी,निर्वाण मार्गनु विघ्न हतु ते निवार्यु, एवा श्री ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर, रागद्वेष रहितताथी जिन कहिये, तथा उपकारसंपदा, अने अतिशयसंपदाये करि विराजमान ताथी जिणंद कहिये तेनाथी प्रीतिविलास करवानो अर्थी भव्य जीव, मो क्षाभिलाषी विचारे छे जे, नीरागी ऋषभ पुरुषोत्तम साथे शी रीतें प्रीति कीजें ? ए वीतरागथी प्रीति,माहारा आत्माये पहेला किवार अनुभवी नथी, ते परमेश्वरथी प्रीतिनो अर्थी प्रीतिनी चाल अजाणतो पूछे छे जे हे चतुर माहारा ज्ञानी आचार्यादिक पुरुषो ! अथवा पोतानो आत्मा ते जा तें चतुर छे, तेहने पूछे छे, के ते प्रीतिनो विचार कहो जे नजीक होय, तेथी प्रीति बने, पण प्रभुजी तो सर्व रीतें अलगा रह्या छे प्रथम द्रव्यथी हुं अशुद्धपरिणतिविभावकर्मानुयायी, पुद्गलभावभोगी, तेथी अशुद्ध द्रव्य छु, अने श्रीभगवान् तो शुद्धपरिणामी, सकल निरावर्णस्वभावी, नि कर्मा, अनंत अक्षयज्ञानादिस्वगुणभोगी, तेथी शुद्धद्रव्य छे बीजु क्षेत्रे करी हु सं सार क्षेत्री, शरीरावगाही छु, अने श्रीऋषभप्रभु तो लोकांतक्षेत्रे रह्या छे, अश रीरी, स्वप्रदेशावगाही छे, तेथी क्षेत्र करी भिन्न छेयें तेमज त्रीजु कालें पण भिन्न छैयें अने भावथी हु रागी, द्वेषी, तथा अढार पापस्थानकें भर्यो छु, अने श्रीदेवाधिदेव तो नीरागी, सर्वपापस्थानरहित छे, माटे श्रीप्रभुजी, हमणा तो सर्व रीतें मुजथी वेगला वसे छे वली अलगाने पण वचनादि के मलियें, पण श्रीऋषभदेव सिद्ध थया, तिहा सिद्ध अवस्थामां कोई वच ननु उच्चारवु नथी, त्यारें प्रीति केम कराय ? ॥ इति गाथार्थ ॥ १ ॥

कागल पण पहोंचे नहीं,नवि पहोंचे हो तिहा को परधान ॥
जे पहोंचे ते तुम समो, नवि भाखे हो कोईनु व्यवधान॥ऋ०॥२॥

अर्थ —तथा एक बीजो पण प्रीतिकरवानो उपाय छे,जे कागल वडे प्रीति थाय छे, पण सिद्धने विषे कागल पण पहोंचे नहीं तथा कागल नहीं पहो चे तो कोई माणस मूकीयें, पण तिहा सिद्धावस्थाने विषे कोई प्रधान प ण पहोंचे नहीं,के जेनी साथे विनति कहावियें इहा कोई जीवने संशय उपजे के रत्नत्रयी आराधीने अनेक जीव, मोक्ष जाय छे, तो कोई न प

होंचे एम केम कहो छो? ते उपर कहे छे, जे तिहां सिद्धावस्थाने विषे जे पहो चे ते तुम समो, तुम जेवो. प्रभुतामय, वीतराग, अयोगी, असंगी, सकलज्ञा यक, पण वचनरहित, एटले अर्थात् ते पण परमपूज्य ते कोइनु व्यवधा न कहेता आतरो भेद कहे नहीं, माटे प्रीतिना त्रण उपाय माहेलो कोई उपाय दीसतो नथी, तेमाटे श्रीयुगादिदेव साथे प्रीति केम करियें?॥इति॥२॥

प्रीति करे ते रागीया, जिनवरजी हो तमें तो वीतराग ॥ प्री तडी जेह अरागीथी, भेलवी ते हो लोकोत्तर माग ॥ऋ०॥३॥

अर्थ – हवे वली कहे छे के ससारी जीव मुझ सरिखा तथा सम्यग्दृष्टि प्रमुख पण जे श्रीसर्वज्ञ त्रैलोकीतिलकथी प्रीति करवा चाहे, तेतो रागी राग सहित छे, अने हे जिनवरजी! तुमे तो वीतराग छो, रागरहित छो, रा गीने अनेक रीतें रीझवीयें, पण जे पोतें रागी नहीं, ते केम रीझ पामे? इहा कोई जीव कहेशे जे ते वारें वीतरागथी प्रीति न करवी? तिहा कहे छे जे अरागी राग रहित तेहथी जे प्रिति भेलववी, तेतो लोकोत्तर मार्ग छे, एटले एम जाणवु जे रागीथी रागी थाय ते भले, पण कोई रागाश जे मध्यें नथी तेहथी प्रीति करवी, ते लोकोत्तर मार्ग जाणवो, एटले अरागीथी राग करवो, ते अति आश्चर्य जाणवु ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥ ३ ॥

प्रीति अनादिनी विष भरी, ते रीतें हो करवा मुझ भाव ॥ करवी निर्विष प्रीतडी,किण भातें हो कहो वने वनाव॥ऋ०॥४॥

अर्थ –हवे ससारी जीव मध्ये प्रीतिनी परिणति अनादिनी छे, परंतु ते पुद्गलना वर्ण, गध, रस, स्पर्श, मनोज्ञसयोग उपर इछता छे, ते प्रीति अ प्रशस्त छे नवा कर्मना बधनु कारण छे, तेथी ए अनादिनी प्रीति, विष भरी छे, जेम ऐश्वर्यादिक देखीने पुद्गल अशुद्धता उपर जे इछता ते राग, विषमय छे, ते राग, स्वजन, कुटुंब, परिग्रह उपर छे, ते रीतें प्रभुजी तुम उपर राग करवानो मारो भाव छे, पण ते राग कामनो नहीं ममकार कुलाचारें जे अरिहत उपर राग, ते मोक्षमार्गमा नहीं इणामाटे जे मम कार काण राग करतो नथी? एराग,ससारहेतु छे ॥ उक्त च॥ जो अपस त्थो रागो, वड्ढइ ससारभमण परिवाडी॥ विषयाइसु सयणाइसु, इछत पुग्ग

जाईसु ॥१॥ अने श्रीअरिहंतथी जे राग करवो ते प्रशस्त करवो, तेनुं लक्षण कहे छे नाणाईसु गुणेसु,अरिहंताईसु धम्मरूवेसु॥ धम्मोवगरणत्ताइम्मी,एसु धम्मछं जो य गुणरागो ॥२॥ सो सुपसत्थो रागो, धम्म सयोग कारणो गुणदो ॥ पढम कायवो सो,पत्तगुणेखवई तं सव॥३॥ तेमाटे अरिहंत उपर राग करवो, ते निर्विष करवो, जेमा विषयाभिलाषपणुं नहीं, वर्णादिकनी रीझ नहीं, तथा इह लोक, परलोक, इंद्रियसुखाभिलाष नहीं, प्रभुना ज्ञानादिक गुण छे ते मने आपे, एवी अभिलाषा नहीं एक अरूपी, अज, अविनाशी, अकृत्रिम,शुद्धज्ञानादिक गुण सकल व्यक्त थया, स्वरूपभोगी स्वरूपमणी,स्वरूपाश्रित, एवा गुणनो राग एकलो गुण प्रगट करवा वास्ते करवो ते राग, निर्विष जाणवो, ते निर्विष प्रीति करवानी मुझमा तो शक्ति नथी, तेमाटे हवे एवभाव केम बने ? हे उपकारी पुरुषो ! ते तमे कहो ॥ इति चतुर्थगाथार्थ ॥४

॥ प्रीति अनंती परथकी, जे तोडे हो ते जोडे एह ॥
परम पुरुषथी रागता, एकत्वता हो दाखी गुणगेह ॥ऋ०॥५॥

अर्थ –हवे चतुर पुरुष, उपाय कहे छे प्रीति केहता राग अनंतो परथकी एटले पुद्गलभावथी अथवा शरीरी जीवथी छे ते सर्व जे जीव तोडे कहेता टाले, ते जीव ए गुणी अरिहंतादिकथी प्रीति जोडे, एटले सर्व परभावथी राग तजे, ते गुणी राग करी शके तिहा कोई पूछशे जे गुणी अरिहंतादिकथी गुणे मले, पण राग तो पापस्थानक छे, ते शामाटे करिये ? तिहा कहे छे, जे परम पुरुष, वीतरागथी रागता कहेता रागीपणु ते पण गुणनु घर कह्यु छे, अने श्रीअरिहंतादिकथी गुणे एकत्वध्यानें मलवु, ते पण गुणनु गेह कह्यु छे, तेमाटे प्रथम श्री अरिहंत ऊपर राग करवो, तेहीज वीतरागतानु कारण छे ॥ इति पंचमगाथार्थ ॥ ५ ॥

॥ प्रभुजीने अवलंबतां, निज प्रभुता हो प्रगटे गुणरास ॥
देवचंद्रनी सेवना, आपे मुज हो अविचल सुखवास ॥ऋ०॥६॥

अर्थ –ए रीतें प्रभुजीने अवलंबतां कहेता आश्रयता निज कहेतां पोतानी प्रभुता अनंतगुणपर्यायरूप प्रगटे, निरावरण थाए,गुणनो राशि समूह, सर्व व्यक्त थाय, तेमाटे देव जे चार निकायना देवता अथवा नरदेवादिक

माटे चड्मा समान श्रीअरिहंत देव, तेहनी सेवना भक्ति, द्रव्यथी तथा भा वथी करवी, ते आपे कहेता दे, सुने अविचल सुख, अव्याबाध सुख, ते हनो वास कहेता रहेवु, एटले भावार्थ ए जे, श्रीपरमात्मा, परमपुरुषोत्तम अरिहंतनी सेवना असयम आश्रवत्याग, सयम सवररूपपरिणमन, ते से वना कहियें ॥ उक्त च ॥ आणाकारी नत्तो, आणा छेईदं सो अनत्तोत्ती ॥ इति ॥ तथा अरिहंत प्रभु पोतें तो पोतानी सेवनाना अर्थी नथी, पण सर्व जीवोने स्वहित करवा वास्ते एहीज करवु छे, अने अरिहंत आज्ञा ते कोईनो हुकम मनाववो नथी, पण श्रीअरिहंत देवे केवल ज्ञाने दीठु, जे सर्व जीवोने पोतानां ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ते परमानंदहेतु छे, तेमाटे जे रीते ज्ञान, दर्शन, चारित्र नीपजे, ते मार्ग उपदेश्यो, ते प्रमाणे वर्त्तवु ते अरिहंतनी सेवना करता निश्चय मोक्षपद,सर्व उत्तम जीव पामे,माटे प्रभुजीनी सेवा, ते अविचल सुख आपे, ते कारणें सर्वभव्य जीवे सकल ससार कार्य तजी सर्व परभावथी निस्पृही थईने, एक परमोपकारी, तत्त्वोपदेशी, धर्मना यक, श्रीअरिहंतदेवनी सेवना करवी॥६॥इति श्रीऋषभजिनस्तवनं समाप्त॥

॥ अथ द्वितीय श्रीअजितजिनस्तवन ॥

॥ देखो गति देवनी रे ॥ ए देशी ॥

ज्ञानादिक गुणसपदा रे, तुज अनत अपार ॥ ते साभलतां ऊपनी रे,रुचि तेणे पार उतार ॥ अजित जिन तारजो रे ॥ तारजो दीन दयाल, अजित जिन तारजो रे॥ १ ॥

अर्थ –हवे श्रीअजितनाथ स्वामीनी स्तवना करे छे. कारण कार्यभावनी साधनता देखाडे छे, जे कारण मले, ते कार्य नीपजे, ते कारणना बे भेद छे एक निमित्त कारण, बीजु उपादान कारण, पण उपादान कारणनी कारणता निमित्त मल्यां प्रगटे, ते निमित्त कारणनी पुष्टतायें थाय, अने मोक्षनु निमित्त कारण, श्रीदेवतत्त्व छे, ते कारणे कार्य निपजे, ते परिपाटी देखाडे छे, सकल पचास्तिकाय गुणपर्यायादि विशेष धर्म, प्रत्यक्ष भासन, त्रिकालावबोध, ते केवल ज्ञान तथा सकल सामान्यग्राहक ते केवल दर्शी न अने स्वरूप एकत्व ते परम चारित्र, वली अरूपी अव्याबाध प्रमुख गु णनी सपदा, हे प्रभुजी ! तुज कहेता तुमारे अनत छे, अपार छे, जेयकी

अनेक जीव आत्मा साध्यावलम्बी तथा साधनपरिणति थया विना मोक्षका र्य निपजाव्या विना हजी संसारमां भमता दीसे छे, तेमाटे कर्त्ता जे आ त्मा ते जो मोक्षसाधनरूप प्रयोग कहेतां व्यापार करें, तो सिद्धतारूपका र्य निपजे ॥ इति ॥ द्वितीयगाथार्थ ॥ २ ॥

कार्य सिद्धि कर्त्ता वसु रे, लहि कारण संयोग ॥ निज
पद कारक प्रभु मल्या रे, होए निमित्तह भोग ॥ अ० ॥ ३ ॥

अर्थ –माटे कार्यसिद्धतानी निष्पत्ति ते कर्त्ताने हाथ छे, जेम दंडरूप कारण तेने जो कर्त्ता घटरूप कार्य करवाने प्रवर्त्तावे तो घटरूप कार्य करे, अने तेज दंड जो घटध्वंसने प्रवर्तावे तो घटध्वंस करे, ते माटे निमित्तनी प्रवृत्ति ते कर्त्ता जो ते कार्य करवाने प्रवर्त्तावे तो कार्य करे, माटे कार्यनी सि द्धि ते कर्त्ताने हाथ छे, पण कारणनिमित्तादिक तेनो संयोग मल्या कार्य निपजे, ए पद्धति छे माटे कोई संसारी आत्मा निज कहेता पोतानुं आ त्मिक पद परमानंद महोदयरूप तेहनो कारक कहेता करवावंत तेने मोक्ष ना पुष्टकारण प्रभुजी श्री अरिहंत मल्या थका अवश्य निमत्तनो भोग थाय, एटले जे जीव संसारथी उभग्यो मोक्षाभिलाषी थयो, ते मोक्षना नि मित्त श्री तीर्थंकर देव पामीने, हर्षनो भोग आस्वादन पामे घणो विलास उपजे कार्यार्थी कारणनी पुष्टता वांछे, ए नीति छे इति ॥ ३ ॥

अजकुलगत केशरी लहे रे, निजपद सिंह निहाल ॥
तिम प्रभुभक्ते भवि लहे रे, आतमशक्ति संभाल ॥ अ० ॥ ४ ॥

अर्थ –ते उपर दृष्टांत कहे छे जेम कोइ केसरी सिंह जन्मकालथी बक राना टोलामां वध्यो छे तो ते एम जाणे जे बकरानो टोलो तेज माहेरु कुटंब छे, त्यां किवारे बीजो सिंह आवे, तेवारे बकरा सर्व नासे, अने पोतें पण नासे, एम करता किवारे सिंहनो आकार देखीने पोता सामुं जुए, त्यारे ते पोतानो समान आकार जोईने विचारे जे एहनुं ने मारु तो तुल्यपणु दीसे छे,ने हुं पण सिंह छुं,पछी निर्णय थाय ए रीतें अज केता बकराना कुल केता टोलामांहें गत केता रह्या जेसिंह, ते सिंहपणु भूली गया, ते बीजासिं हने देखीने पोतानुं सिंहपणु संभारे, तिम केहता ते रीतें प्रभुनी भक्ति कर

ता नव्यजीव जहे कहेता पामे पोतानी आत्मशक्तिनी सनाल कहेता उन्न खाण पामे,जे वीतराग देव देखीने तेनी नक्ति करता तथा सेवता थको उपजे, जे वस्तुस्वरूपसत्ताधर्मे हु पण वीतराग नि कर्मा शुद्धस्वरूपी हु, ए पण प हेला ससारी जीवद्रव्य हता, पत्नी सिद्ध थया तेम हु पण प्रथमथी स सारी हु, पण जो साधु, तो सिद्धरूप थाउ ए सर्व उन्नखाण, प्रनुसेवना करता निपजे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

कारण पद कर्त्तापणे रे, करी आरोप अनेद ॥ निज
पद अर्थी प्रनुथकी रे, करे अनेक उमेद ॥ अ० ॥ ५ ॥

अर्थ – तेवार कोई केहेशे जे अरिहत देव तो अन्य जीवना मोक्षकर्त्ता नथी, तो श्या वास्ते अरिहतदेव पासे मोक्ष मागो गो? तेने उत्तर कहे ठे, के कारणपद जे अरिहतादिक ते अतिपुष्टालबन ठे, माटे जे कारण तेने ज अनेदकर्त्तापणे आरोप करीने निज कहेता पोतानु पद जे शुद्ध सिद्धता, तेहनो अर्थी जे नव्य जीव, ते प्रनु श्रीतीर्थकर देवथी अनेक सम्यक्त्वादि क गुणनी उमेद कहेता आशा करे, जे हे प्रनुजी! मुजने मोक्षनां कारण तथा मोक्ष तमे आपो एटले निमित्त कारणने कर्त्तापणे आरोप करी स्तुति करी॥५॥

एहवा परमातम प्रनु रे, परमानद स्वरूप ॥ स्याद्वा
दसत्ता रमी रे, अमल अखम अनूप ॥ अ० ॥ ६ ॥

अर्थ –हवे जे निमित्त पामीने उपादान समरे, पलटण पामे, ते रीत कहे ठे, अथवा प्रनु परमात्मा तेहनु स्वरूप कहे ठे आत्मा सर्व त्रण प्रका रना ठे, एक वहिरात्मा, वीजो अतरात्मा, त्रीजो परमात्मा, तिहा जे श रीरादिक उदैकनावकर्मजनितने आतमपणे गणे, ते वहिरात्मा कहिये, अने जे शरीरादिक उदैकनावथी आत्मा असख्यात प्रदेशी, चेतनालक्षण ज्ञानादि अनतगुण पर्याय सहित अरूपी निन्न एटले आत्मा अरूपी, श रीर रूपी, आत्मा सहज अकृत्रिम, शरीर सयोगी कृत्रिम, तेमाटे कर्मयोगे शरीरादिमध्ये रह्यो,पण निन्न ठे एहवो नेदज्ञानवत समकित गुणगणाथी मांमी क्षीणमोह गुणगणाना चरम समय पर्यत अतरात्मा जाणवो,तथा ज्ञा नावरणी,दर्शनावरणी,मोहनी,अतराय,ए चार कर्म क्षय गया केवलज्ञानी ते

सयोगी अने अयोगी केवली तथा अष्टकर्ममुक्त सिद्धात्मा, ते परमात्मा जाणवो, एटले श्रीअजितनाथ अरिहंत एवंभूतनये परमात्मा छे प्रभु छे, सर्व सिद्ध वस्तुगते पोताना गुणपर्यायरूप संपदाना प्रभु छे कोई द्रव्य अन्यद्रव्यनु स्वामी होयज नही, ज्यां सुधी जे द्रव्यना चिंतनमांहे पण परद्रव्यनु स्वामिपणु छे त्यां सुधी ते द्रव्य शुद्ध नही, तेमाटे श्रीअजित अरिहंत पोताना स्वभावना प्रभु छे. अने उत्तम जीव पोताने कर्मवश पडया मोह मुंझया जाणी, पोताने रंक समान गणे. अने अमोही स्वाधीन थया तेहने प्रभु कहे. अने अमोहीने अवलंब्या पोते स्वसंपदाना धणी थाय, माटे जेहना कारणपणाथी पोतानु प्रभुत्वपणु पामीये, तेहने प्रभु कहीये, स्तवीये. जगतमांहे पुन्यना संयोगे जे सुख कहेवाय छे तेतो आरोपमात्र छे, एटले जाते सुख नथी॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ जत्तोचिय पच्चक्खं, सोम्म सुहं नत्थि दुक्खमेवेदं ॥ तप्पडियार विभत्तं, ता पुन्नफलंति दुक्खंति ॥ १ ॥ हे सौम्य! 'प्रत्यक्षज्ञानबलेन' ए सर्व दृश्यमान ते सुख नथी जे कांइ ए संसार माहे, स्रकचंदनअंगना संयोगथी उपना जे सुख, ते सर्व दुःखज छे, विषयनी उत्सुकताथी उपनी जे अरति, तेहना ए प्रतिकार छे एटले दुःख तेनेज तत्त्वना अजाणपणाथी, मुग्ध स्वरूप भेदे वेदयु छे, पण जात एक ज दुःखरूप छे॥ यथा॥ श्लोक ॥ अंतर्मुखमात्रमनोरमादपि प्रतिपदा, क्लिश्नाति लब्धरूपपरिपानतृप्तिर्न ॥ नातिश्रमापगमनाय यथा श्रमाय, राज्यं स्वहस्तधृतदंडमिवातपत्रम् ॥१॥ जे पुन्यफल ते सर्व तत्त्वथी दुःखरूप छे ॥उक्तं च॥ विसयसुहं दुक्खं चिय, दुक्खपडिआरओ तिगिच्छव्व ॥ तं सुहमुवयाराओ, न उवयारो विणा तच्चं ॥१॥ विषयसुख ते तत्त्वथी दुःखज छे जेम रोगीने क्वाथपान छेदन दाहादि चिकित्सानी परे हित लागे छे पण दुःखपणु टले छे, मात्र उपचारे सुख लागे छे, अने जे उपचार ते तथ्य पारमार्थिक सुख नहीं सुख ते मुक्त आत्माने निरुपचरित स्वाभाविक निःप्रतिकाररूप आत्मिक आनंद छे, तेज सुख छे, तथा शातानो उदय, ते पण दुःख, अशातानो उदय ते पण दुःख, कारण के शाता ते कर्म छे, अने कर्मना विपाक ते गुणरोधक छे, माटे गुणनो रोध तेहने सुख केम कहे? ॥ उक्तं च ॥ सायासाय दुक्खं, तव्विरहम्मि य सुहं जओ तेण ॥ देहिंदियसु दुक्खं, सुक्खं देहिंदियाभावा ॥ इति ॥ १ ॥ तेमाटे संसार सर्व दुःखरूप छे, अने सर्व परभावना सं

गथी रहित, स्वाभाविक जे आनद, तेने परमानद कहीये, ते परमानद, श्रीअजितनाथनु स्वरूप छे, जीवादि षट् द्रव्य छे तेमध्ये पचास्तिकाय ते प रमार्थे द्रव्य छे तथा छठो काल ते उपचारद्रव्य छे ए चर्चा, विशेषावश्यक तथा धर्मसग्रहणी मध्येथी जोवी तेमध्ये एक एक द्रव्यने विषे अनता गुण अनता पर्याय छे, ते अनेकता जाणवी, अने एकद्रव्यने विषे एक समयें स्यान्नित्य स्यादनित्य स्यात् एक स्यात् अनेक, स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति, स्यात् भिन्न स्यात् अभिन्न, स्यात् वक्तव्य स्यात् अवक्तव्य ए सर्व स्वभा व, समकालें वर्त्तता पामीयें छीये एटला धर्म समकालें जेमाहें वरते, ते धर्मनी अनत प्रवृत्तिने स्याद्वाद कहियें ॥ स्यात् इति पद अनेकांतोद्योतक ए हवी स्याद्वादमयी जे आत्मानी गुणपर्यायरूप सत्ता छे, तेना रसी कहे ता रसीया छो, एटले स्याद्वादमयी आत्मसत्ता, तेहेना भोगी छो, तथा अम ल कहेता कर्ममल रहित छो, अखम केहता क्यिारें खमन पामो, अनुप कहेता जेहनी उपमा नथी, एहवा प्रभु देखीने माहारे लाभ थयो ॥ ६ ॥

आरोपित सुख भ्रम टल्यो रे, भास्यो अव्याबाध ॥
समरयु अभिलाषीपणु रे, कर्त्ता साधन साध्य ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थ –एहवा प्रभुजी आत्मानद भोगी, आत्मस्वरूप रमणी, तत्त्वविला सी तेमने जोइने माहरे अनादि कालनु इद्रियसुखने विषे जे सुखनु भासन ते आरोपितसुखभ्रम हतो, ते टल्यो अने अव्याबाध, आत्मिकआनद सुख ते भास्यु जिहा सुधि विषय सुख उपर सुखबुद्धि हती, तिहा सुधि विषय सुखनो अभिलाष हतो ते हवे तो सर्वविषय रहित, अव्याबाध सु खी श्री प्रभुजी दीठा तेथी ते भव्य जीवने पण सुख, ते अव्याबाध छे एहवो निर्धार थया तेवारें अभिलाष पण अव्याबाध सुखनो थयो, माटे अभिलाषीप णु समरयु, तेवारे स्वरूपानुयायी थयो, एटला काल सुधी विषयसुखने अभिला षें, आत्मा विषयसुखनो कर्त्ता हतो ते जिवारेंएहने अव्याबाध सुखनो अभि लाष थयो, तेवार कर्त्ता पण अव्याबाध सुखनो थयो, एटले कर्त्तापणु स मखु, जे जेहवा कार्यनो कर्त्ता थाय, ते साधन पण तेहवाज मेलवे, अने सा ध्य पण तेहाज होय, एटले आज सुधि साध्य, विषयसुखनु हतु, तेथी साधन पण विषयसुखना मेलवतो हतो, हवे प्रभु श्री अजितनाथ निर्विकारी

दीठा,तेथारे ते अव्याबाध सुख साध्य थयो, एटले साध्य साधन समज्यु॥७॥

ग्राहकता स्वामित्वता रे, व्यापक जोक्तानाव ॥ कारणता
कारजदशा रे, सकल ग्रह्यु निज जाव॥ अ० ॥ ८ ॥

अर्थ—एटला काल सुधि ए जीव विषयसुखनो ग्राहक हतो, हवे शुद्ध अव्याबाध सुखी परमेश्वर देखीने ए जीव, अव्याबाध सुखनो ग्राहक थयो, एटला काल सुधि जूठनो वालो विषयसुखना हेतु जे धन, स्त्री, वस्त्र, आहारादिक परजाव, तेनु स्वामिपणु करतो हतो, हवे ज्ञानादिक अनंत गुण संपदाना स्वामी श्री देवाधिदेव देखीने ए जीवने पण अनंत ज्ञानादिक स्वसंपदानु स्वामिपणु थयु, एटले ग्राहकजाव तथा स्वामित्वनो जमज्यो एटला काल सुधि ए आत्मा विषयादिक परजावमध्ये व्यापक हतो ते हवे आत्मानंद मध्ये तथा तेना साधनमध्ये व्यापक थयो, तथा अनादि काल सुधी परजावनो जोक्ता हतो, हवे परमप्रजु स्वजावजोगी देखीने, ए पण स्वजावनो जोक्ता थयो, एटले व्यापकता तथा जोक्तापणु समज्युं एटला काल सुधि शुनें पच्यो ए आत्मा, संसारमां आठ कर्मरूप उपाधिनु उपादान कारण हतो, हवे शुद्ध स्वरूपी, नि कर्मा, तत्त्वमय देखीने पोताना शुद्ध स्वरूपनु उपादान कारण थया, एटला काल सुधि ए आत्मा आठ कर्म रूप कार्यना कर्ता हता, हवे परमदेवनी श्रद्धा पामीने सवरनिर्जरा रूप कार्यनो कर्ता थया, माटे हे परमेश्वर ! हे जगदाधार ! हे दीनदयो ! तुमारे अनुयायी मारी चेतना प्रवृत्ती, तेथी कारण तथा कार्य इत्यादि बीजी पण अनंती आत्मशक्ति, ते सर्व स्मरवा लागी, एटले सर्व आत्मानी शके आत्मजाव ग्रह्या अने परजाव तजवा मांड्या ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थ ॥

श्रद्धा जासन रमणता रे, दानादिक परिणाम ॥ सकल
थया सत्ता रसी रे, जिनवर दरिसण पाम॥ अ० ॥ ९ ॥

अर्थ—एटला काल सुधि उदय पुण्य प्रकृति तेनो विपाक जे शातावेदनी प्रमुख पुद्गलिक तत्त्वविमुख तेना स्वाद जीवने मीठा लागता हता, तेथी ते पुण्यना उदयने सुख मानतो हतो, ते हवे एवी श्रद्धा थड जे अव्याबाध नि रूप छे, तेहीज सुख साध्य छे, तथा जे वस्तुनो यथार्थजाव

ज्ञान थयुं, ते भासन केतां जाणपणुं ते पण समक्युं, अने रमण जे पुद्गलना वर्णादिकमां हतुं, ते सर्वसंवररूप रमण थयुं, तथा १ दान २ लाभ, ३ भोग, ४ उपभोग, ५ वीर्य ए पांचनो क्षयोपशम ते, एटला काळ सुधि दान पुद्गलनो हतो. लाभ पण पुद्गलनो मानतो हतो. तथा भोगपण पुद्गलना, उपभोग पण संसारमां पुद्गलनो हतो. अने वीर्य पण बालवीर्य ते पुद्गल ग्रहण वधन प्रमुख आठ करणपणे प्रवर्तंतो हतो ते सर्व गुणपणुं पोताना जीवद्रव्यना मूल धर्म ज्ञानादि अनंत गुणपर्याय रूप तेना रसीया थया, एटले पुद्गलानुयायिता तजीने, शुद्ध स्वरूपानुयायी थया, एटले स्वसत्ता ते मारो धर्म, एहवी श्रद्धा थइ. अने स्वगुण जे पोताना ज्ञानादिक ते सार छे, एहवुं भासन थयुं, तथा रमण ते. आत्मधर्म क्षमादिकमां थयुं, अने तद्रूपतारूप ते दानगुण, गुणग्राहकतारूप ते लाभ. भोग स्वगुणनो थया उपभोग स्वपर्यायनो, वीर्य ते पंडित वीर्य थइने, संवर हेतु निर्जरारूप थयो ते सर्व हे वीतरागदेव! हे जिनवर! तमारुं दर्शन पामीने एटले प्रभु दीठे मारामां एटला गुण समथ्या ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थ ॥

तेंण निर्यामक माहणो रे, वैद्य गोप आधार ॥
देवचंद सुख सागरु रे, भाव धर्म दातार ॥ अ०॥१०॥

अर्थ—तेमाटे हे प्रभु! तमे संसारसमुद्रनो पार पमाडनार छो जे भावधर्मरूप जहाज, तेने चलाववाने निर्यामक समान छो तथा तत्वधर्मपणे पोते परिणम्या तेथी द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसाथी रहित छो, अने परम अहिंसक धर्मना उपदेशक छो, माटे माहण छो, तथा आत्मस्वरूपना रूप भावप्राण तेनी सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप भावहिंसा तेने टाळनारा वैद्य छो, तथा भावथी ज्ञानादिगुण अने द्रव्यथी दशप्राण रूप जीवनो रक्षा करवाने परम गोप छो, वळी भव अटवीमां रे भमता प्राणीने हे प्रभु तमे आधार छो सर्वदेवने [illegible] समान शोभता एहवा हे श्री अजितनाथ परमेश्वर तमे देवचंद्रने सुखना सागररूपा छो सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन सम्यग् चारित्ररूप भावधर्म तेना दातार छो. एटले हे प्रभु! [illegible], सर्वजीवने भाव धर्मना दातार छो ॥ १० ॥ इति श्री अजितजिनस्तवन ॥

॥ अथ तृतीय श्रीसम्भवजिन स्तवन प्रारम्भ ॥

॥ धणरा ढोला ॥ ए देशी ॥

श्रीसम्भव जिनराजजी रे, ताहरु अकल स्वरूप॥जिनवर पूजो॥
स्वपरप्रकाशक दिनमणि रे, समता रसनो भूप॥जि०॥१॥ पूजो
पूजो रे भविक जन पूजो, हारे प्रभु पूज्या परमानंद ॥जि०॥

अर्थ —हवे श्रीसम्भवनाथ जिन कहेता श्रुतकेवली अवधिज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी प्रमुखमांहे राजा समान, एवा हे सम्भव प्रभु! ताहरु कहेता तमारु अकल कहेता कोइथी कलाय नहीं एहवु सरूप छे, एहवा जिनवरने पूजो अहो भव्यो! तमे एहवा परम पूज्य परमेश्वरने पूजो, वली प्रभु केहवा छे? जे स्व केता पोतानो धर्म अने पर केता धर्मास्तिकायादिकनो धर्म,तेने प्रकाशवाने दिनमणि केहेता सूर्य जेवा छे? तथा समता जे सर्वने विषे राग द्वेष रहितपणु, तेहना भूप केता राजा छे, एहवा तत्त्वप्रकाशक, अरिहंतने पूजो, वारवार पूजो भविक केता मोक्षयोग मोक्षरुचि जीव, तमे पूजो,ए स्वरूपभोगी,निर्मलानंदमयी, अज, अविनाशी, अक्षय, अणाहारी, अशरीरी, अनंतज्ञानमयी, अनंतदर्शनमयी, शुद्धस्वरूपी,देवतत्त्वने पूज्या परमानंद थाय जे पुद्गलयोगथी सुख उपजे, ते उपचारसुख माटे ते परमानंद नहीं, अने जे आत्मानु सहज अविनाशी, अप्रयासी, स्वरूपनु सुख अव्याबाधरूप तेने परमानंद कहीये, ते सुख, अरिहंत देवने पूज्या पामीजे यद्यपि अरिहंत देव, कोइ अन्य जीवना अव्याबाधादि गुणना कर्त्ता नथी, पण जे भव्यजीव, पोतानु शुद्धपारिणामिक परमसिद्धता स्वरूप साध्य करीने वीतराग परमात्माने सेवे, अवलंबे,ते नियमा पोतानु तत्त्व प्रगट करे, नियामिक कारण माटे, ए हथी स्वरूप प्रगट थाय एमज थारवु ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

अविसंवाद निमित्त छो रे, जगत जंतु सुखकाज ॥ जि० ॥
हेतु सत्य बहुमानथी रे, जिन सेव्या शिवराज ॥ जि० ॥ २ ॥

अर्थ —वली हे प्रभुजी! तमे अविसंवादि केता विसंवाद जे निर्धार नहीं ते, अने तमें निश्चय निर्धार कार्यने करो, माटे अविसंवादनिमित्त

कारण छे॥ निमित्त लक्षण ॥ कार्यानिन्नत्वे सति कर्तृत्वाव्यापारवत्त्वे सति हे तुर्निमित्तमिति ॥ माटे हे प्रभु ! तुमें जगत्ना जीव तेना क्षायिक सुखरूप कार्य निपजाववाने प्रधान निमित्त छेजो माटे हेतु केता कारण ते सत्य केता साचु तेने बहुमान केता माहामोटमपणे सेवता जे मुज सरिखो मोहवश पड्यो तृष्णायें ग्रस्यो, पुद्गलनो रागी, असंयममयी, मिथ्यात्व नू र्यो नाव, ते निराधार अशरण एहवो हु, तेने श्रीतीर्थंकर देव, परम तत्त्व मय, त्रैलोक्योपकारी, जेना नामथी परम कल्याण थाय, एहवा परमेश्वर ना थाग मल्या, माटे मारे ए वेला ए घडी, धन्य एम असंख्यात प्रदेशें नि र्मल, निसंगी स्वरूपनोगी देवतत्त्वनु बहुमान करतो थका जे जिन केता वीतरागने सेवे, ते जीव परम कल्याणमयी पातें थाय इहा सत्य पद वेने जोडवु हेतु सत्य ते अरिहंत देव आपणा मोक्षरूप कार्यना हेतु छे, तेनु सत्य केता साचु बहुमान करवु, एटले इह लोक, परलोक, इंद्रिय सुखनो आशंसा टालीने अद्भुत वर्ण, गंध सत्स्थानातिशय, वचनातिशय, प्रातिहार्य प्रमुख सर्व शुद्ध बहुमान कारण माटे बहुमान करवा योग्य छे, ते द्रव्यबहुमा न पण जे अरिहंतना शुद्धज्ञानादि गुण अनतानु सकलपुद्गलातीतपणानु प रम अरूपी अतींद्रियपणानु बहुमान ते सत्यबहुमान कहिए एटले जिनशा सनमध्ये १ नाम, २ थापना, ३ द्रव्य, ए त्रण निक्षेपा ते कारण छे अने चो था नावनिक्षेपा ते कार्यवस्तु छे, माटे जिहा सुधी प्रभुना अतिशयादिकना योग निरूप तिहा सुधि द्रव्यबहुमान छे, अने जे दर्शनगुणे प्रभुनानु नाम न थपाथी तत्त्वप्राग्नावनु जे बहुमान, ते भावबहुमान कहिए अने नामा दिक त्रण निक्षेपा ते नावना कर्ता छे, अथवा नावानिनाशी छे, ता ते पण सत्यबहुमान जाणवु ते नव्यबहुमानथी जे निनसेवना तेज प्रभुनी आज्ञा यें परनाव त्याग स्वनाव ग्रहण करता शिवनित्यपद जे निरूपणु, ते राज पामीयें एटले तात्त्विक शिव ते उपचारी अल्पकाली अने मान्यता रूप छे, माटे जे निष्कर्मपणे सर्वस्वरूप प्राग्नाव, ते निरुपचरित, अवि नाशी शिव कहिए ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

उपादान आतम सहीरे, पुष्टालंबन देव ॥ जि० ॥
उपादान कारणपणे रे, प्रगट करे प्रभु सेव ॥ जि० ॥ ३ ॥

अर्थ –हवे आत्मनिष्पत्तिविषे उपादान कारण तो मूल छे, तो पण निमित्त कारण विशेष छे, ते देखाडे छे जे कारण, तेज कार्यपणे अनेदें परिणमे ते उपादान कारण जाणवु, अने जे कर्त्ताना व्यापारे कार्यने निप जाववानु सहकारी थाय, तेने निमित्त कारण कहिये ए निमित्तकारण, ते कार्यथी भिन्न होय इहां कोइ पूछे जे उपादान कारणमा तथा निमित्तकार णमा जे कारण धर्म छे, ते वस्तुमा छतो पर्याय छे के अछतो उपजे छे? तेने उत्तर कहे छे जे कारण पर्याय वस्तुधर्म होय तो सिद्ध भगवानमा पण उपादान कारण पाम्यो जोइयें? तेतो नथी देखातु, केम जे सिद्धमा का रणपणु होय तो कांहीं कार्यपण निपजाव्वु जोइयें ते कार्य तो सपूर्ण निपनु छे तथा निगोदावस्थाविषे पण उपादान कारण मानवु पडे, ते पण सनवतु नथी, केम जे निगोदावस्थामा उपादान कारण मानिये, तो आत्मसिद्धि रूप कार्य पण थवु जोइयें ते केम? जे कारण, ते नियमा कार्य करे, अने कारणकाल, कार्यकाल, ते नियमा अभेद छे, ते विशेषावश्यकमा मतिज्ञा नाधिकारथी जोइ लेजो तेमाटे कारणपर्याय ते उत्पन्न छे, ते कार्य सपूर्ण थये कारणतानो अभाव छे, अने जेनी सादि होय तेनोज अत थाय, माटे कारण पर्याय ते सादि सात छे, इहां कोई कहेशे जे उत्पन्नपर्याय ते केवारे उपनो? त्या कहे छे, के जे वारे कर्त्ता कार्यरुचि थाय, तेवारे कार णता उपजे, एटले भव्य तथा अभव्य सर्व जीव सपूर्ण सिद्धताना उपादान छे, पण सर्वे सिद्धता निपजावता नथी, श्या माटे? जे कारणपणु नथी, जो का रणपणु प्रगटे, तो कार्य निपजे, माटे सर्व आत्मा पोत पोताना गुणप्राग्भा व रुप सिद्धता कार्यना उपादान अवश्य छे, पण श्री जिनवरदेव शुद्धतत्त्वनें अवलबनें कारणता निपजावे, माटे पुष्ट कहेता नियामकी मोटु आलबन अ रिहत देव छे, जेमाटे सालबन विना आत्मा अनादि दोषथी निवृत्तिने तत्त्वनें आश्री शके नहि, माटे अरिहत देवनो तीर्थंकर नामकर्मनो विपाक, तेहथी उपनां समवसरणादि जे आश्चर्य, तेने आलब्या ससारी जीव पोतानो आत्मधर्म नजीक करे, तो जगत् जीवना आधार श्री तीर्थंकरनी सरुपस पदाने आलब्या थका आत्मधर्म अवश्य निपजे, माटे अरिहत देव, ते भ व्य जीवने पोतानी शुद्धसत्ता प्राग्भावे करता मुख्य आलबन छे, हवे श्रीवी तरागदेव पुष्टआलबन केवी रीतें छे? तेनु कारण कहे छे, जे आत्माने वि

पें उपादानपणु अनादिनु छे पण ते आत्मसिद्धतारूप कार्यने करतुं नथी शा माटे? जे उपादान कारणपणु थयु नथी. ते श्री जिनवर वीतरागनी जे सेवना, ते उपादान कारणपणु प्रगट करे छे, एटले अरिहंत देवनी द्रव्य भावथी भक्ति करता संसारी आत्मा, मोक्षनो साधक थाय. तेमाटे श्रीनग हथाउ, कर्मरागना भाववंद्य, मिथ्यात्वरूप अंधकार टालवाने सूर्यसमान, ममत्वरहित. एवा गुणी प्रभुने सेवता आत्मा मोक्षरूपकार्य निपजाववानु कारणपणु प्रगट करे, तेथी प्रभुजी पुष्टालंबन जाणवा ॥३॥इति तृतीयगा०॥

कार्यगुण कारणपणे रे, कारण कार्य अनूप ॥ जि० ॥ सक
ल सिद्धता ताहरी रे, माहरे साधन रूप ॥ जि० ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने शरीर, इंद्रिय, विषय, कषाय रूप कार्य करता अनंता काल गया. ते जेवारें सम्यग्दृष्टि गुण प्रगटयो तेवारें रत्नत्रयी जे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान सम्यक् चारित्र, ते पोतानु कार्य जाण्यु पछी श्रीअरिहंत सेवना आगमश्रवणादि कारण सेवीने रत्न त्रयीनो क्षयोपशम प्रगट कर्यो, एटले यथार्थ तत्त्वश्रद्धान, तत्त्वरमण, परभावतत्त्वत्यागरूप भेदरत्नत्रयी जेटली प्रगटी, ते पहेला कार्यगुण थयी, पछी तेज, क्षायिक अभेद रत्नत्रयीरूप स्वकार्य करवाने कारणपणे प्रवर्त्तावे, तेवारें जे कार्यपणे हतु, ते कारणरूप थाय, पछी तेहीज कारण रूप. भेद रत्नत्रयी ते क्षायिक भावरूप कार्यरूप परिणमे, माटे जे कारण, तेहीज कार्य थाय ए उपादान कारण कार्यरूप पद्धति कही. हवे निमित्तपणे कहे छे हे प्रभुजी! तमारु शुद्ध स्वरुप तेहीज तमारा कार्यगुण छे, पण ते भव्य माहरुवि जीवन कारणपणे छे, केमक जे उपादानने तमारा शुद्ध गुण तेने कारणपणे अवलंबी तमारा जेवी सत्ता प्रगट करवी ते कार्य छे, एटले जे कारण तेहीज करवाने सकरपे कार्य छे, माटे हे प्रभुजी! तुमारी सकल कता संपूर्णसिद्धता सकल प्रदेशें निरावरणता सर्वस्वधर्म प्राग्भावता ते माहरे साधनरूप छे, एटले तुमारी शुद्धतानु जे साधन छे, तने जेवारें माहरो आत्मा प्रभुजीनी परम प्रभुतारूप सपदान अवलंबे, तेवारे परभावत्यागी थइने, स्वरुपावलंबी थाय, तेवारें माहारी सिद्धता निपजे, माटे तमारी सिद्धता ते माहारे साधनरूप छे, तेथी हु जे मा

हरु स्वरूप प्रगट करूं, ते उपकार तमारो छे, तेथी माहारे तो आधार, त्रा
ण, शरण, सर्व हे देव! तमेज छो ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

एक वार प्रभुवंदना रे, आगम रीते थाय ॥ जि० ॥
कारणसत्ये कार्यनी रे, सिद्धि प्रतीत कराय ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थ —माटे श्रीअरिहंत अनंतज्ञानी, अनंतदर्शनी, शुद्धचारित्री, अवि
कारी,अकषायी, स्वरूपभोगी, स्वरूपरमणी, स्वरूपविलासी, त्रैलोक्यपूज्य,
त्रैलोक्यउपकारी, चालता भावसूर्य, कर्मरोगना माहावैद्य, परमेश्वर, परमो
पकारी, तेने एकवार पण जे रीते आगम कहेता सिद्धांतमा कह्यु छे,ते रीते जो
वंदन थाय, एटले अनुष्ठान वर्जीने गुणबहुमाने,प्रभुतना आश्चर्यता, तद्गिर
हकातरतायें जो थाय, तो माहारु मोक्षरूप कार्य निपजे, एहवी प्रतीत क
राय, शा माटे ?जे कारणसत्ते कहेता छते कारणे अथवा कारण सत्यें कार्यनी
सिद्धि एटले निष्पत्तिनी प्रतीत कराय, अने कार्य पण निपजे, एटले श्रीप्र
भु परमात्माने विधिए वंदना करता उपादान जे आत्मा, ते गुणानुयायी
थयो, तो निमित्त तथा उपादान बेहु कारण साचा मल्यायकी कार्य पण
साचु निपजे, जेम स्त्री, धन, विषयादिक अशुद्ध निमित्त मले तेवारे आ
त्मा अशुद्ध उपादानी थाय तेथी संसार अशुद्धतारूप, कार्य निपजे छे,
तो श्रीवीतराग शुद्ध निमित्त मलेथी उपादान जे आत्मा ते शुद्धपरिणा
मी थाय तेथी शुद्ध सिद्धतारूप कार्य निपजेजी, अनादिकाल संसारमां भ
मतां न आव्यु एहवु अरिहंत बहुमान ते जो एकवार आवे, तो कार्य निप
जवानी प्रतीति थाय ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थ ॥

प्रभुपणे प्रभु ओलखी रे, अमल विमल गुणगेह ॥ जि० ॥
साध्यदृष्टि साधकपणे रे, वंदे धन्य नर तेह ॥ जि० ॥ ६ ॥

अर्थ —हवे शुद्धतना परिणामिपणे संसार तथा परजीवनी सिद्धिना
अकर्ता अने सेव्या सिद्धि प्रगटे, वली अमल कहेता राग द्वेषादि आवर
णादि मलथी शून्य, विमल कहेता भाव उज्ज्वलतावंत, गुणगेह कहेतां
ज्ञानादि गुणना घर, एवी रीतें प्रभुनु जे रूप छे, तेने ओलखीने साध्यदृष्टि
एटले पोतानो आत्मा परमानंद रूप छे, तेनी सर्व संपदा प्रगटाववा रूप

साध्य नजरमां राखीने एटले तत्त्वकार्य थाजवनी थइने साधकपणे कहे ता पोतें साधक थइने, जे पोताना ज्ञानादिक गुण क्षयोपशमी छे, ते सर्व गुण निर्मल करवारूप कार्य करवापणे प्रवर्त्तावता जे शुद्धानंदी, परम ज्ञानी निर्मोही देवने वांदे, नमस्कार करे, ते नर धन्य, कृतपुण्य जाणवा ॥ उक्तं च ॥ जे पुण तिलोय नाहो, नत्तिप्पर पुरिएण हीयेण ॥ वंदंति न मसंति, ते धन्ना ते कयछा य ॥ ६ ॥ इति षष्ठगाथार्थ ॥

जन्म कृतारथ तेहनो रे, दिवस सफल पण तास ॥ जि० ॥
जगत शरण जिन चरणने रे, वंदे धरीय उल्लास ॥ जि० ॥ ७ ॥

अर्थ —ते जीवनो जन्म कृतार्थ जाणवो, वली ते दिवस पण तेहवोज स फल जाणवा जगतना जीव, मोहे मुंज्याने, नव अटवीमध्ये पडयाने, मिथ्यात्वे लुटाताने, परमशरण त्राण आधार जूत एहवा श्रीजिन कहेता वीतरागना चरणने जे उल्लास केहता हर्ष धरीने वंदे, कहेता वांदे, तेनो जन्म कृतार्थ ॥ ७ ॥

निज सत्ता निज भावथी रे, गुण अनंतनु ठाण ॥ जि० ॥
देवचंद्र जिनराजजी रे, शुद्ध सिद्ध सुखखाण ॥ जि० ॥ ८ ॥

अर्थ —ते प्रभु निज कहेतां पोतानी सत्ता अनंतगुण पर्याय रूप ते निज जावथी कहेता पोताने भाव स्वभावेथी थया छे, एहवा जे गुणज्ञानादिक अनंत तेनु ठाण कहेता ठेकाणु छे. सर्वदेवमां चंद्रमा समान जिनराज, ते कहेवा छे? शुद्ध सिद्ध कहेतां निष्पन्न गुणनी खाण छे ॥ ८ ॥ इति संजवजिनस्तवन ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थ श्रीअभिनंदनजिनस्तवन ॥

॥ ब्रह्मचर्यपद पूजीय ॥ ए देशी ॥

क्युं जाणुं क्युं बनी आवशे, अभिनंदन रस रीति हो मित्त ॥
पुद्गल अनुभव त्यागथी, करवी जसु परतीत हो मित्त ॥ क्युं० ॥ १ ॥

अर्थ —हवे श्रीअभिनंदन प्रभुनी स्तुति करे छे कोई भव्य जीवने श्री वीतरागदेवथी एकत्वपणे मलवानुं मन थयुं पण प्रभुजीने मलवानी शक्ति पोतामां अण देखतो विचारे छे, जे एहवा परमोत्कृष्ट देवतत्त्वथी केम मि

लाय? तेनो विरहवत थको बोले छे जे ए प्रभुजीथी शु जाणीये केम बनी आवशे? ते परम वल्लनथी मलवानु मन छे, पण मलवु डुर्जन देखीने बोले छे, जे हे प्रभु! श्री अजिनंदन देव! तुमथी मा्हरें शु जाणीयें केम बनी आवशे? अजिनंदन कहेता संवर राजाना पुत्र,सिद्धार्थ राणीनी कुक्षियें उत्पन्न, गर्ने आव्याथी जिहा सुधी गर्ने रह्या, तिहा सुधी नित्य इंद्रे आवीने सुखपृच्छा पूछी, तेथी अजिनंदन एवु नाम थयु अथवा अति समस्त पणे आनंदमयी तेथी अजिनंदन नाम थाप्यु, ते प्रभुथी रस कहेता रसीली एकत्वता रीति केम बने? पुजलना वर्ण, गंध, रस, फरसनो अनुनव कहेता नोगववु, तेह्ना त्यागथी करवी, जेहनी प्रतीत एटले सर्वपुजलनो अनादिनो अशुद्धनोग तजीने जेवारें जे वर्त्ते तेवारें तेने प्रभुथी मलि शकवानी प्रतीति थाय, पण पुजलनोगीने ते शुद्धतत्त्वीथी एकत्वता न थाय, जे स्वरूपनोगी थयो, तेहने ए रसरीत बनी, एवी प्रतीत थाय, माटे पोताना आत्माने कहे छे, जे हे मित्र! ए कार्य केम बनशे? ते तु विचारी जो॥ १ ॥इति प्रथमगाथार्थ ॥

परमातम परमेसरू, वस्तुगते ते अलिप्त हो मित्त ॥ द्रव्ये
द्रव्य मले नहि, नावे ते अन्य अव्याप्त हो मित्त ॥स्युo ॥२॥

अर्थ –प्रभु तो नि कर्मा केवली परमात्मा छे, तथा परम कहेता उत्कृष्टा ईश्वर छे, एटले असंख्यात प्रदेशें पारिणामिकपणे रह्या जे अनंता गुणपर्याय, तेह्ना ईश्वर अथवा सर्वप्रकार स्वाधीन, निर्दोषी तेथी परमेश्वर, केहवा छे? जे वस्तुगतें कहेता मूलवस्तुधर्मे अलिप्त छे, एटले सर्व जीवद्रव्य शुद्धसंग्रहनयें अलिप्त छे, पण कोइ अन्यद्रव्य तथा रागादि अशुद्ध परिणतिथी लेपाय नहीं, अने अजिनंदन प्रभु तो सर्वनयें विशुद्ध थया छे, टंकोत्करणन्यायें प्राग्नावधर्मी थया छे, ते सर्वरीतें परथी अलिप्त छे, एटले जे लेपाय, ते मले, पण जे लेपाय नहीं, ते केम मले? हवे छ द्रव्य छे, तेना नाम कहे छे १ असंख्यात प्रदेशी, लोकप्रमाण, अरूपी, अक्रिय, अचल, अचेतन, तथा जीव अने पुजल ए बे द्रव्य, गतिपरिणामी छे तेने गतिनो सहायी थाय, ते धर्मास्तिकाय द्रव्य जाणवु २ असंख्यातप्रदेशी, लोकप्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, स्थितिपरिणामी एटले जे जीवपुजलने स्थिर रहेवानु सहाय आपे, ते अधर्मास्तिकाय, ३ अनंतप्रदे

शी लोकालोकप्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने सर्व द्रव्यना पोतें अव गाहक परिणामी, तेने अवगाहनानु हेतु, ते आकाशास्तिकायद्रव्य, ४ पुद्गलपरमाणु, अनंता रूपी, अचेतन, सक्रिय, पूर्णगलनधर्ममयी, १ वर्ण, २ गंध, ३ रस, ४ स्पर्शयुक्त एक एक परमाणु, एहवा अनंत परमाणु ते सर्वलोकमाहे जाणवा, पण लोकथी बाहेर नहीं, ते पुद्गलास्तिकायद्रव्य, ५ चेतनालक्षण, १ ज्ञान, २ दर्शन ३ चारित्र, ४ तप, ५ वीर्य, ६ उपयोग, लक्षण तथा अरूपी, स्वभावनु कर्त्ता, असंख्यात प्रदेशी, एहवु एक जीवद्रव्य, तेहवा अनंता जीव, ते जीवास्तिकायद्रव्य कहियें, ए पांच द्रव्यने प्रदेशनो संबंध छे, माटे अस्तिकाय कहियें ६ तथा छठु अप्रदेशी, अरूपी, वर्त्तनालक्षण, निश्चयनयथी पंचास्तिकायनी वर्त्तनारूप अने व्यवहारे उपचारथी ज्योतिश्चक्रने चारे ओळखाय, ते कालद्रव्य, ए छ द्रव्यना नाम कह्या तेमा १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ काल, ए चार द्रव्य, अपरिणामी कोइथी मिले नहीं अने १ जीव, २ पुद्गल, ए बे द्रव्य परिणामी, एटले अन्यद्रव्यथी मिले तेमाहे पुद्गलद्रव्य माहोमाहे स्कंधपणु पामे, अने परानुयायी हेतुपणे परिणम्यो जे जीव, तेने प्रदेशे कर्मपणे वळगे, पण एक जीवथी बीजो जीव मले नहीं, अने पुद्गल तो संसारी जीवथी मले, पण माहारा अभिनंदन परमेश्वर तो सिद्ध थया छे, मिथ्यात्वादिक हेतुथी मुक्त थया छे, तेने पुद्गल लागी शके नहीं, ए स्वरूप छे, माटे द्रव्यथी द्रव्य मले नहीं, एटले शुद्ध जीव ते अशुद्ध जीवथी मले नहीं बीजु पण मूलनयें कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यथी मले नहीं, ते द्रव्यें तो मळवु नथी तथापि कदाचित् भावें मळे तो पण भाव कहेता वस्तुनी मूलपरिणति प्रवृत्तिरूप तेथी अन्यजीव तथा अन्य पुद्गलनु अव्याप्तपणु छे, एटले व्यापे नहीं जे परव्यापकता ते उपाधियी छे, अने प्रभु श्रीअभिनंदन देवना भावधर्म ते परम निर्मल थयो छे, सर्वस्वभावने अनुयायी थयो छे, एटले कर्त्ता, भात्ता, ग्राहकता व्यापकता, आधारता, रमणता, अवस्थानता, इत्यादिक सर्व स्वस्वरूपपणे निपना छे, ते केम अन्यद्रव्यने व्यापे? तेथी प्रभुजीना १ द्रव्य २ क्षेत्र, ३ काल ४ भाव, सर्व शुद्धधर्मी छे, ए द्रव्यादि चारनु स्वरूप लखे छे ॥ गाथा ॥ दव्व गुणसमुदाउ, खित्त उगाहवट्टणा कालो ॥ गुणपज्जाय पवत्ती, भावो निअ वत्थुधम्मो सो ॥ १ ॥

इति आगमवचनात् ॥ गुणपर्यायनो समुदाय ते द्रव्य, तथा प्रदेशावगाह ना ते क्षेत्र , अने उत्पाद, व्ययनी वर्त्तना, ते काल, तथा द्रव्यना पोत पोताना गुणपर्यायनी प्रवर्त्ति ते भाव, एम द्रव्यादि चारनी परिणति ते व स्तुधर्म छे, माटे ते प्रभु केम मले ? ॥ २ ॥ इतिद्वितीय गाथार्थ ॥

शुद्ध स्वरूप सनातनो, निर्मल जे निस्सग हो मित्त ॥ आतमा विभूति परिणम्यो, न करे ते परसग हो मित्त ॥ क्यु० ॥ ३ ॥

अर्थ – वली श्रीवीतरागदेव केहवा छे ? शुद्ध कहेता सर्वदोषरहित, एहवु स्वरूप जेहनु सनातनो कहेता नित्य छे, यद्यपि पर्यायें अनित्य छे, पण इहा कूटस्थ नित्यताये नित्य छे, निर्मलज्ञानावरणादि मल रहित, वली निस्सग केहेता सर्व सग रहित, जेहना असख्यातप्रदेशमध्ये द्रव्य थी कोइ परमाणु मात्र रह्यो नथी, अने भावथी जेहनी परिणतिमाहे रागी द्वेषीपणे काइ अन्यभाव नथी, एहवो निस्सग छे ते परमेश्वर, वली आ त्मविभूति कहेता पोतानी सपदा शुद्धस्याद्वादरूप, अनत, अज, अविनाशी, अखड, स्वधर्मे परिणम्यो छे, एहवो जे परमेश्वर ते पर केहेता बीजा द्रव्यनो सग एटले सबध करे नहीं, एटले सत्ताये जीवद्रव्य परसगी नथी, विभावे परसगी थयो छे, पण जे सम्यक् रत्नत्रयी रूप साधनपणे परिणमीने शुद्धरूप थया ते कोई रीते परना सग करे नहीं, तो एहवा प्रभुथी केम मलाशे ? माटे हे प्रभु ! तुमने मल्या विना मुझने सुख केम थाशे ? ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

पण जाणु आगम बले, मिलवु तुम प्रभु साथ हो मित्त ॥ प्रभु तो स्वसपत्तिमयी, शुद्ध स्वरूपनो नाथ हो मित्त ॥ क्यु० ॥ ४ ॥

अर्थ –एम विचारता उपयोग आव्यो ते कहे छे, के पणजाणु आग मबलें केहेता जे आगममाहे कह्यु, ते गुरुमुख सानद्यु तेना बलथकी जाणु छु, जे हे भव्यजीव ! प्रभुश्री वीतराग साथे आपणने मलवु छे, जेहने गरज होय ते मले, एटले पोतानी सपदा प्रगट करवाना रुचिव त मले प्रभु तो स्व कहेता पोतानी सपत्ति जे स्वक्षेत्र असख्यात स्व प्रदेशविषे व्यापकपणे रह्या जे अनतज्ञानादिक गुण, ते सपदामयी छे,

शुद्ध स्वरूपनो नाथ केहेतां धणी छे, माटे निष्पन्नपरमानंदभोगी शुद्ध स्वरूपी ते कोइथी मले नहीं ॥ ४ ॥इति चतुर्थगाथार्थ ॥

परपरिणामिकता अछे, जे तुझ पुद्गलयोग हो मित्त ॥ जड
चल जगनी एठनो, न घटे तुझने भोग हो मित्त ॥ क्यु० ॥ ५ ॥

अर्थ —हवे कोई पुछशे जे सर्वद्रव्यमांहे परथी मलवानी शक्ति नथी, तो साधकनु जीवद्रव्य पण, वस्तुधर्मे शुद्ध छे, तेने प्रभुथी मलवु, ते प ण तेनी सत्तामा तो नथी,तो हवे केवी रीतें मिले ? त्यां कहे छे जे अनादि अतीतकाल ए संसारी जीवनु आत्मिक सुख सर्व अवराणु अने भोगधर्म, क्षयोपशमी छे, ते कांईक भागथ्यो जोइयें. ते स्वरूपने अण पामवे. पुद्गल ना वर्ण, गंध, रस. फरस. ते अभोग्य छे, तेने भोगवतो थको परभोगी थ यो परपरिणामी थया,ए परपरिणामिकतानी चाल ते अनादिनी टेव छे एटले कर्त्ता परनो, भोक्ता परनो, रमण परने विषे, ग्राहक परनो, एम स र्व. परभावमवि थयो छे इहा कोई पुछशे जे शुद्ध द्रव्यधर्मी, ते परप रिणामी केम थाय? तेने कहे छे जे पुद्गलना योगें पुद्गलावलंबी चेतना थइ, एटले कहे छे जे हे जीव ! पुद्गलने योगें जे तारी परपरिणामिकता ते अनादिनी अशुद्धता विजातीयपणे छे, दोषरूप छे, अने आत्माने सर्व अघटित छे, केम जे पुद्गल ते जड छे, तथा चल कहेतां विनाशी छे जगतुनी एठ छे, ते पुद्गल द्रव्य द्रव्ये ध्रुव छे, अने पर्याये अध्रुव छे, वर्णादिक, स्पर्शादिक पर्याय सर्व पलटे छे, अने सर्व संसारी एकेका जीवें एकेको पुद्गलपरमाणु,तेने शरीरपणे.भाषापणे, मनपणे, आहारपणे, अनंती वार लइ लइने मूक्या छे,ते माटे ए पुद्गल ते सर्व, जीवोनी एठ छे अने जीवद्रव्य ते स्वरूपभोगी छे,माटे हे चेतन! तुने ए पुद्गलनो भोग घटतो नथी, केम जे हंस केवारें कचरामा चांच घाले नहीं॥५॥इति पंचम गाथार्थ ॥

शुद्धनिमित्ती प्रभु ग्रहो, करी अशुद्ध पर हेय हो मित्त ॥
आत्मालंबी गुण लही, सहु साधकनो ध्येय हो मित्त॥ क्यु०॥६॥

अर्थ —माटे परभोगीपणु अशुद्ध निमित्त जे पुद्गलादिक, तेने तजीने शुद्ध, नि कर्मा, पूर्णानंदरूप प्रभुने अवलंबो, एटले ए आत्माने विषे परा

नुयायितापणु छे, ते टाळवाने माटे प्रथम अशुद्धालंबन तजीने अरिहंता लंबनी थवु,तेथी शुद्धनिमित्ती जे निमित्त नियामककारण छे,ते प्रभुने भजो, सेवो,पण सर्व परवस्तु अशुद्ध ते हेय कहेता तजवारूप करीने एटले सर्व परभाव त्याग करीने प्रभुने भजो ते प्रभु केहेवा छे ? जे आत्मालंबी केहे तां सर्वपणे पोतानी आत्माने अवलंब्या छे, एटले पोतानाआत्मानं विषेज तन्मय थया छे, वली श्रीवीतरागतत्त्व केहेवु छे ? सर्वमोक्षने निपजावनारा साधक एहवा जे सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्व विरति, श्रेणिना वाली, ध्यानारू ढ जीवो तेने ध्येय छे,एटले सर्व आत्माने श्री सिद्ध परमात्मा ध्येय छे ध्यान बे प्रकारनु छे, एक सालंबन, बीजु निरालंबन तेमा जे अरिहंतसिद्धनु तत्त्व स्वरूप अवलंबीने ध्यान करवु, ते सालंबन ध्यान छे तेणे श्रीअभिनंदन प्रभु सर्वने ध्यायवा योग्य छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

जिम जिनवर आलंबने, वधे सधे एक तान हो मित्त ॥
तेम तेम आत्मालंबनी,ग्रहे स्वरूप निदान हो मित्त ॥ क्यु०॥७॥

अर्थ —इम करता जेम जेम साधक जे आपणो जीव, ते श्रीजिनवरदेव नी तत्त्वप्रभुताने आलंबने वधे, केहेता सर्वक्षयोपशमी चेतना वीर्य रमण अरिहंतनी शुद्धतामा तन्मयपणे थाय, एकतान केहेता एकत्व पणु सम निपजे एटले सकलपरभावथी टलीने एकनिष्पन्न परमात्माने स्वरूपे चेत ना व्याप्त थाय, तेम तेम ए साधक जीव, पोतानो आत्मा कार्यरूप ते हेना स्वरूपनें आलंबे, उपादानस्मरण चिंतन ध्यानरूप थाय, तेवारे ए क स्वरूपनु निदान कहेतां मूलकारण ग्रहे, अंगीकार करे ॥ इति ॥ ७ ॥

स्वस्वरूप एकत्वता, साधे पूर्णानंद हो मित्त ॥ रमे भो
गवे आतमा, रत्नत्रयी गुणवृंद हो मित्त ॥ क्यु० ॥ ८ ॥

अर्थ —ते जेवारें स्वस्वरूपएकाग्रता ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप ग्रहे, ते वारें परिणामिक परमतत्त्वने विषे एकत्वता शुद्धस्वरूपरमण, शुद्धस्वरूप भोगी थाय, तेथी सधे कहेता निपजे, पूर्णानंद कहेता संपूर्ण, आत्यंतिक, ऐकांतिक, अनंतातिशय, अबाधक, केवलनिराबाध, स्वाधीन आत्मसुख निपजे, पछी ए आत्मा पोतानी रत्नत्रयीआदिक गुणवृंदने विषे रमे, तेह

नेज जोगवे, तन्मय तद्विलासी, स्वभावआनदी थका रहे, सादि अनतो काल स्वपरिणामिक प्रगटपणे वर्त्ते ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थ ॥

अभिनंदन अवलंबनें, परमानद विलास हो मित्त ॥ देवचद प्रभु सेवना, करी अनुभव अभ्यास हो मित्त ॥ क्यु० ॥ ९ ॥

अर्थ –ए रीतें श्रीअभिनदन प्रभुने अवलबनें परमानदनो विलास थाय सर्वदेवमाहे चद्रमा समान जे अरिहत देव तेहनी सेवना अथवा स्तुतिकर्त्तानु नाम पण देवचद्र तेमाटे पोताने नशोधने हे देवचद्रप्रभु ! तमारी सेवना करे, पण अनुभवना अभ्यासथी एटले अनुभवयुक्त करे एहीज आत्मा निपजाववानु परम कारण छे, माटे एहने सेवो, आदरो ॥९॥इति॥

॥ अथ पचम श्री सुमतिजिन स्तवन ॥

॥ कडखानी देशी ॥

अहो श्री सुमति जिन शुद्धता ताहरी, स्वगुण पर्याय परिणामरामी ॥ नित्यता एकता अस्तितता इतर युत, भोग्यभोगी थको प्रभु अकामी ॥ अ० ॥ १ ॥

अर्थ –अहो इति आश्चर्ये हे श्री सुमतिजिन ! पाचमा परमेश्वर ! ताहरी शुद्धता आश्चर्य रूप छे, ते शुद्धता केहवी छे ? स्व केता पोताना गुण ज्ञानादिक तथा पर्याय ते १ द्रव्यपर्याय २ गुणपर्याय, ३ द्रव्यव्यजनपर्याय ४ गुणव्यजनपर्याय, ५ स्वभावपर्याय त्या स्वाभाविकधर्म ते गुण कहिये, अने क्रमभावि ते पर्याय कहिये तथा श्री उत्तराध्ययन सूत्रे ॥ गाथा ॥ गुणाणामासउ दव्व एगदव्वस्सिया गुणा ॥ लक्खण पज्जवाण तु, उभउ निस्सिया भवे ॥ १ ॥ एहवी स्वगुणपर्यायरूप सपन्नामध्ये रमी रह्या वो, पर भावथी निवर्त्तीने पोताने धर्मे रम्या वो वली ते शुद्धता केहवी छे ? जे नित्यता, तद्भावथ नित्य ते नित्यता, तथा एकता, तथा अस्तितता, इतर कहेता बीजा भेद अनित्यता, अनेकता नास्तिता एटला धर्ममयी छे जे नित्य तेहीज अनित्य, जे एक तेहीज अनेक, जे अस्ति तेहीज नास्ति, माटे आश्चर्य रूप छे, वली केहवो छे ? भोग्य जे पोताना गुण पर्याय, तेहनो भोगी छे, तो पण अकामी एटले स्वरूपना भोगी थका पण कामना (वाछ

ना) विना नोगवे ठे, माटे अकामी ठे, एटले स्वक्षेत्रथी वेगलो जे पुद्गलना वर्ण, गंध रस, फरसनो जोग, ते गलवो पडे, तेने कामना कहियें, पण तेनो जोगी आत्मा नथी, आत्मा तो ज्ञानादिक गुण जे स्वक्षेत्रव्यापक पणे प्रगटजोग तेहना जोगी ठे, ते जोगवता कामना न जोइये, माटे कामना विना जोगी ठे, ए अचरज जाणवु ॥१॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

ऊपजे व्यय लहे तहवि तेहवो रहे, गुण प्रमुख बहु
लता तहवि पिंमी ॥ आत्मजावे रहे अपरता नवि
ग्रहे, लोक प्रदेश मित पण अखमी ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थ —हवे नित्यतादिक धर्म कहि समजावे ठे सर्वद्रव्य ठ ठे, तेमध्ये काल ते उपचार द्रव्य ठे, तथा धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य अस्तिकाय ठे, तेमां १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय ए त्रण एकेक द्रव्य ठे जीव अनंता द्रव्य ठे, पुद्गल अनंता द्रव्य ठे, द्रव्यनु अगुरुलघुपर्यायनु षट्गुण हानि वृद्धिरूप चक्र एकनु जलावर्त्तनी परवर्त्ते, ते एकद्रव्य, जेनु चक्र जिन्न पडयु ते जिन्नद्रव्य, ते सर्व द्रव्य, उत्पाद, व्यय, ध्रुवयुक्त ठे, तेमाटे नित्यानित्य ठे ॥ उक्तं च विशेषावश्यकनाष्ये ॥ नं जइ जीवो नासो, तं नासा होउ सव्वमा नत्ति ॥ ज सो उप्पायव्वय, धुव धम्माणंत पज्जाउ ॥ १ ॥ पुन ॥ सव्वंपि य पइसमय, उप्पयइ नास एय निच्च च ॥ एव चेव य सुहदुक्खबंध मोक्खाइ सप्नावा ॥ २ ॥ इहां सुक्तिनो समूह, माहानाष्यथी जाणजो एम जीवना नित्यानित्य स्वनाव ठे ते कहे ठे, अजिनवपर्याय उपजे ठे, पूर्वपर्याय व्यय थाय ठे, यथा एक प्रदेशें अगुरुलघुपर्याय अनंत गुणा ठे, बीजे प्रदेशे तेथी अनंतना हीन ठे, त्रीजे प्रदेशे असंख्यात गुण वधतो ठे, चोथे प्रदेशे संख्यात गुण वृद्धि ठे, एम असंख्यात विजाग ठे, ते प्रतिसमय परावर्त्तरूप ठे, तेजिहां अनंतगुण तिहां असंख्यात गुण थाय, तथा जे प्रदेशें अनंत गुणपणु हतु, ते व्यय थयो अने असंख्यातपणानु उपजवु थयु, ते उत्पाद थया, तथा अगुरुलघुनु तत्व पणु रह्या, ते ध्रुव जाणवो तथा ज्ञपनु जाणवु, ए ज्ञानना धर्म ठे, ते ज्ञेयने पलटवे जा ज्ञान निव्य थाय ना पलाय नहीं जेमाटे विवक्षित समयन विषे केवल ज्ञान अनंता अतीत धर्म थया, तेने जाणे, वर्त्तमानें

अनंता धर्म छे तेने जाणे तथा अनागत अनंता थाशे ते पण जाणे, य द्यपि थया छे थशे ए धर्म, ज्ञेयना छे पण ते सर्वने जाणवानो धर्म, ज्ञान माहे छे अने परज्ञेयने जाणगपणे ज्ञान परानुयायी थातु नथी "विष यभेदात् विषयिणोपि भेदः ज्ञेयभेदात् ज्ञानभेद, पुनः ज्ञान यावतोहि ज्ञे यस्य पर्यायास्तावतस्तदवभासकत्वेनाभ्याप्येष्टव्याइति बृहद्भाष्ये" तथा जे ज्ञान वर्त्तमानपणे जाणतो तेहने अतीतपणे जाणे, अने जे आनागत तेहने वर्त्तमान पणे जाणे, ए ज्ञानना पर्याय भासनवेलाइक ते सर्व ए वी रीतें पलटे, तेथी पूर्वपर्यायनो व्यय, उत्तरपर्यायनो उत्पाद, अने ज्ञा नपणे ध्रुव, एम दर्शन, चारित्र, सर्व गुण जाणवा, माटे हे श्रीसुमतिनाथ प्रभु! तमारी शुद्धता केहवी छे? जे समय उपजे, ते समयेंज व्यय पामे छे, अने तद्रूवि कहेता ता पण तेहवो रहे केता मूलध्रुवधर्मे न मूके, एटले उपजे, विणसे, ते अनित्यता, अने ध्रुव रहे, ते नित्यता ए बे स्वभाव कह्या तथा एक आत्माने विषे ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्र गुण, वीर्यगुण, दानगुण, लाभगुण, भोगगुण, अरूपीगुण, अगुरुलघुगु ण, अव्याबाधगुण इत्यादिक अनंता गुण छे, ते सर्व गुण भिन्न भिन्न छे, तेथी अनेकता छे, तथा ते सर्वगुण समुदायरूप छे, पण केवारें भिन्नक्षेत्री न थाय, ते अनत गुणपर्यायनो एकपिंड एहवा आत्मा छे, माटे एकरूप छो, वली प्रभुजी तमे केहवा छो? जे स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव पणे अस्ति छो, ते अस्तिभाव काइ वारे टलतो नथी, तेणे हे प्रभु! तमें आत्मभावें रह्यो छो, पण कोइ वारे अपर केता बीजा द्रव्यना भाव केता धर्म लेता नथी, माटे स्यात्अस्तिपणे छो, पाताना धर्मे रह्यो छो, पर द्रव्यना धर्म स्यात्नास्तिपणे छे, ते कोइवारे तेमें ते पणे परिणमता नथी, माटे स्यात्अस्तिनास्तिरूप छो हवे इहा सप्तभंगी उपजे, ते कहे छे १ स्वद्रव्य ते पोताना गुण अने पर्यायना समुदाय तथा स्वक्षेत्र, ते पाताना अगरुलघु स्वभाव, विभागीकृत असंख्यातप्रदेशें, स्वकाल ते उ त्पाद व्ययरूप प्रवर्त्तना स्वभाव ते अनंता ज्ञानना पर्याय, अनंता दर्श नना पर्याय, अनंता चारित्रना पर्याय, अनंता अगरुलघु पर्याय, तेणें स्या त् अस्ति ए पहेलो भागो थयो २ परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव पणे स्यात्नास्ति ए बीजा भागा ३ तथा अस्ति, नास्ति, ए बे वस्तुधर्म रह्या छे,

माटे स्यात्अस्ति, स्यात् नास्ति. ए त्रीजो नांगो थयो ४ एहवो धर्म एकवस्तुमां एक समय छे अथवा वस्तुमांये अनंता धर्म वचने गोचर नहीं एहवा अवक्तव्य छे तेथी स्यात् कथंचित् पणे अवक्तव्य ए चोथो नांगो थयो ५ ते अवक्तव्य पण अस्तिधर्मनुं पण छे माटे स्यात्अस्ति अवक्तव्य ए पांचमो नांगो थयो ६ ते अवक्तव्य पण नास्तिधर्मनुं पण छे, ते माटे स्यात्नास्ति अवक्तव्य ए छट्टो नांगो ७ एहवा वस्तुधर्म समुदाय पर्यायपणे स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्य ए पदार्थ धर्म छे,ए सातमो नांगो थयो ८ सामान्य सप्तनंगी कही, तेमज नित्य तथा अनित्यनी सप्तनंगी, एक अनेकनी सप्तनंगी, वक्तव्य तथा अवक्तव्यनी सप्तनंगी, तथा गुणपर्यायनी सप्तनंगी तथा द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिकनी सप्तनंगी एम अनंती सप्तनंगी थाय छे. ए सप्तनंगीये सर्व पदार्थ पोतानो स्वभाव पालटता नथी, ते माटे हे प्रनुजी! तुमे अस्तिनास्तिपणे छो, स्वधर्मपणे रह्या छो, परधर्मग्रहण करता नथी वली हे प्रनु! तमे केटला छो? ताके चउद राजलोकना जेटला आकाशप्रदेश छे, तेटला तमारा आत्मप्रदेश छे, पण ते असंख्यातप्रदेशनुं ते सर्व षट्गुण हानिवृद्धिरूप, अगुरुलघुपर्यायना तरतमयोग, विनागरूप रहनुं श्रुतनाअथवा परज्ञानादि गुणानुं असंख्यात क्षेत्र, क्षयोपशम रूपे कार्यान्नाग तरतमना, तरनुं स्वरूप, कम्मपयडीविषे योगस्थान अधिकार तथा वृहत्कल्पनाप्रथमाध्ये संयमश्रेणिअधिकारथी जाणजो, तथा क्षायिकनावे सर्वगुणनी सामान्यता, परंतु अगुरुलघुपर्यायनुं तारतम्य रह्यां छे तथी स्वधर्म छे,अथवा सर्वगुण पर्याय तुल्यविनाग असंख्यातप्रदेश पणे रह्या पण कांइ वार जुदा समाता नथी, माटे अवगाहना एटले अनंतानंता प्रदेशांतर अवयवना छे, पण नित्र थाय नहीं, ते आश्चर्य जाणवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

कार्यकारणपणे प्रणमे तदपी ध्रुव, कार्यनेदे करे पण अनेदी ॥ क
र्तृना परिणामे नव्यता नवि रमे, सकल वेत्ता थको पण अवेदी ॥३॥

अर्थ —वली स्याद्वादस्वरूप धर्म कहे छे जीवद्रव्यने विषे जेटला गुण छे ते सर्व पोतानुं कार्य करे छे, अने स्वात्मनतत्त्व कारण तेणेज का र्य थाय छे एम कांइ स्वदेश न छांडतां कारण यथानुरूप कार्य, एटला

माजीनो मत छे, जो कारणकाल, कार्यकाल भिन्न होय, तो कारणकाल
विनाशे तदनतर कार्यकाले कारण विना कार्योत्पत्ति थाय, अने कारण वि
ना कार्य मानता अनेक दोष थाय, तेवार घटे पट कार्य थाय, पटे घटका
र्य थाय, माटे कारण विना कार्य नथी एटले कारणनाव, तथा कार्यनाव, ए
बे एक समये छे, ए जेननी श्रद्धा छे,श्रीविशेषावश्यकमध्ये पण वखाण्यु छे,
जो वाले उत्पन्न कारण कार्यविषे एक कालता छे, तो सहज अकृत्रिम
कारण कार्यता एकसमयेज होय, तेमाटे जीवनो केवलज्ञान गुण, ते विशे
ष नाव सर्व जाणे छे, तिहा सर्वनु जाणवु, ते कार्य छे, अने ज्ञानगुण,
जाणवा रीते प्रवर्त्ते ते कारण छे, तेहज समय कारण कार्यपणे परिणमे छे
अने ज्ञानगुण पणे सदा ध्रुव छे, तेम केवल दर्शनादि गुण अनंता छे, ते सर्व
ए रीते परिणमे छे, कारणता व्यय, तिहाज कार्यता उत्पाद, कार्यताव्यय
तिहाज कारणताउत्पाद, इम सर्व द्रव्यने विषे उत्पादव्ययधर्म छे इहा कोइ
कहे छे जे उत्पादव्यय स्वत नथी परप्रत्ययपणो छे एम केहे छे तेनी भूल छे, जे
परप्रत्ययी धर्म ते लक्षण न थाय लक्षण ते स्वधर्मज न थाय, तिहा श्रीश्वेता
वर गणी तत्त्वार्थटीकाकारनी साख लखे छे ॥ अथ ये व्याचक्षते व्ययोत्पा
दाविति तथा कथमनाकाशाऽवगाहकानावात् अवगाहकसन्निधानापत्तावुत्पादव्य
लक्षणस्य साध्याऽव्यापित्वं चेष्यते हि यत्पुत्पादव्ययत्रयमिति अत्रोच्यते य ए
य महात्मा वस्तुस्वरूपविवक्षया लक्षणमतानुसारेण पदार्थस्वरूप तेऽत्र निपुणतरमनुयोज्य
व्या रूपमेतत् यत् तु विस्रसापरिणामेन सर्ववस्तूनामुत्पादादित्रयमिष्टा
म प्रयोगपरिणत्या जीवपुद्गलानामिव तावदस्मदर्शनमविरुद्धसिद्धांतमनार
अस्मद्गुरावापि गुणमेव च नाप्यवधारणापुच्यते ॥ ए वचन जोइ श्रद्धा य
थार्थ करवी माटे हे प्रभुजी! तमारा गुण, कार्यपणे परिणमे छे, तेथी उत्पा
द व्यय छे अने गुणना अनाव थता नथी ते ध्रुवधर्म छे, तेथी स्याद्वनि
त्य स्याद्अनित्य ए स्वरूप छे, ते अचरिज जेहवु छे वली जीवद्रव्यमध्ये
जेटला गुण छे ते सर्वनिजपणे पोतानु कार्य करे छे, तेमा ज्ञान ते जाण
वारूप कार्य करे छे, दर्शन ते देखवारूप कार्य करे छे, समकित ते नि
र्धाररूप करे छे चारित्र ते थिरतारूप कार्य करे छे, अभिनगुण अभि
रिणे कार्य करे छे एम सर्व गुण पोताना कार्यना कर्ता छे, त्यो कार्यन

ते कहेता जुदा जुदा पणे करे ते वस्तुमा अनेकता स्वनाव छे, तेथी नेद स्वनाव छे, पण ते कार्यधर्मनु कारण कोई द्रव्ये तथा क्षेत्रे जूदु थतु नथी. तेथी अनेदरूप छे जेम सुवर्णमध्ये पीतता, गुरुता, स्निग्धता, ए कार्यनेदें त्रण धर्म पामीय छेये, परंतु केवारे निन्न थाता नथी, तिम जीवना अनंत गुण निन्न निन्न कार्य करे छे, परंतु वस्तुधर्म निन्न नथी कार्य तो सर्व नेद कहेतां निन्नपणे करे छे, पण अनेदी कहेता नेदरहित छे वली प्रतिसमय कर्तृतापणे परिणमे छे, एटले पंचास्तिकायमध्ये चार अस्तिकाय ते अकर्त्ता छे, अने एक जीवास्तिकाय स्वतंत्रकर्त्ता छे, ते स्वाधीनपणे कारणावलंबी थइ कार्यने निपजावे, ते कर्त्ता, तथा जेम परकार्य घट, तेना कर्त्ता कुनकार तेम ज्ञानादि कार्यना कर्त्ता जीव छे, माटे कर्तृतापणे परिणमे छे पण काइ नव्यपणे नथी रमता, एटले जे प्रतिसमय पर्यायन करे, पण कांइ नवो नथी, परता अस्तिधर्म छे, तमज रहे छे, वली सकल कहेता सर्व द्रव्य ग तेहना गुणपर्याय स्वनाव, तेना उत्पादरूप, व्ययरूप, ध्रुवरूप, अतीत अनागत वर्त्तमान काल सर्व त्रणे कालना वेत्ता कहेतां जाण गे, ए सर्वने जाणो गे, पण अवेदी कहेता पुरुष, स्त्री, नपुंसकरूप वेद रहित गे, माटे वेत्ता पण्य पण वचनधर्म अवेदी गे, ए अचरिज जाणवु ॥२॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

शुद्धता बुद्धता देवपरमात्मता, सहज निज नावनोगी अजोगी॥ स्व पर उपयोगी तादात्म्यसत्ता रमी, शक्ति प्रयुंजतो न प्रयोगी॥ अ०॥४

अर्थ —वली शुद्धता ते सकलपुद्गलरूप मलरहित रहित, बुद्धता कहेतां केवल ज्ञानदर्शनरूप संपूर्णतास्वरूप गो, देव कहेता पोतानु स्वरूप तेणे विषे क्रीडा कहेता रमणशील ते देव कहिय, परमात्मता कहेतां पोताना आत्मा ज्ञानावरणादिकर्मथी रहित छे, माटे परमात्मापणु संपूर्ण जोगवो गो, परमात्मनिष्पन्न ने आत्मा, ते नाव पाम्या गो, वली सहज कहेतां स्वनाव ना अकृत्रिम एवा निज कहेता पोताना नाव ते ज्ञानादिक अनंतधर्म तेहना नोगी केहेतां नोग आस्वादनवंत गो, वली कहेता गो? के अयोगी कहेतां म न वचन कायारूप योग तेथी रहित गो, अने क्षयोपशमी वीर्य, तेहने प्र वर्त्तवे वर्त्ते, ते योग कहिय, तिहा नाषावर्गणा, शरीरवर्गणा, तथा मनो वर्गणा, ते तिहा परवर्तनहेतु वे, ते द्रव्ययोग कहिय, अने ज परवर्तन साधक

वीर्यपरिणाम ते पहेलो परिणमन बीजो अवलंबन, त्रीजो ग्रहणरूप, ए त्रण शक्तिने जावयोग कहियें. एहवु जे योगपरिणमन, तेथी रहित गे, कारण के योग जे ने ते आश्रव ने अने सिद्ध आत्मा तो संपूर्ण संवरमयी ने वली प्रजुजी तमें केहेवा गे? जे स्व कहेता पोतानु आत्मतत्त्व पणु तेहना उप योगी कहेता जाण तथा पर आत्मा ते बीजा अनंता जीव तथा सर्व पुजल. तथा धर्म, अधर्म, आकाश अने काल. ते सर्वना जाण गे एटले स्व तथा पर ए वेना जाण पण तादात्म्य कहेता तन्मयपणे रह्यो जे पोतानो सत्ताधर्म. तेहना रसी कहेता रसीया गे आस्वादी गे, एटले जाणग स्व पर वेना ग पण जोगी एक आत्मधर्मनाज गे, इहां कोइ कहेशे जे जाणग वेना ने तो जोगी वेना केम नथी? तेने कहेवु जे परजावमध्यें जोगधर्म न थी. माटे आत्मा परजावनो जोगी नथी स्वजोगीज ने. परक्षेत्र रह्या जे धर्म ते जोगवाय नहीं स्वक्षेत्री धर्म जोगवाय वली प्रजु तमारी अनंती शक्ति गे, ते सकर्मी जीवनी सर्व शक्ति दबाणी गे, अने तमें साध्य साधक जाव करीने सर्व कर्मपमलने दलवे करीने सर्व शक्ति प्रगट करी गे अने ते सर्व शक्तिनी जिन्न जिन्न प्रवृत्ति गे ते सर्व शक्तिने प्रयुंजता गे, एटले सर्व कर्तृत्व, जोगतृत्व, ज्ञायकत्व पारिणामिकत्व, ग्राहकत्व, आधारत्वादि शक्ति प्रवर्त्त गे, पण कोई शक्ति अण प्रवर्त्ती रहेती नथी.तथापि न प्रयोगी कहेता शक्ति प्रवर्तावितां कोइ जातिनो प्रयोग कहेता प्रयास उद्यमविकल्प करवो पडतो नथी. एटले सर्वशक्ति सहेजे प्रवर्ते गे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थगाथार्थ ॥

वस्तु निज परिणते सर्वपरिणामकी, एटले कोइ प्रभुता न पामे ॥ करे जाणे रमे अनुभवे ते प्रभु, तत्त्वसामित्व शुचि तत्त्व धामे ॥ अण ॥ ५ ॥

अर्थ—हवे १ नित्य, २ अनित्य, ३ एक ४ अनेक, ५ अस्ति, ६ नास्ति, ७ जेद, ८ अजेद इत्यादिक, अनंतधर्म प्रजुमां ने ते माटे परमे श्वर पणु ने तेनी उंलखाण करावाने कहे ने जे नित्यानित्यादिक धर्म तो सर्व इव्यमां ने एटले वस्तु केता जीवादि पदार्थ ते निज परिणतियें केतां पोतानी स्याद्वाद परिणतियें सर्व केता समस्त इव्य परिणामिकी केता परि णामी ने एटले नित्यानित्यादिक धर्मपणे सर्व इव्य परिणामी ने, पण तेथी

कोइ परमेश्वरपणु न पामे, सर्व द्रव्य साधारण धर्मी माटे एमा शी अधिकाइ? एटले केता एथी, कोइ केता हरेक द्रव्य, ते प्रभुता केता मोटाइ पणु, न पामे केता पामे नहीं, तो केम पामे? ते कहे छे करे केता पोताना धर्मने क र्त्तापणे करे, एटले बीजा अजीवादि पाच द्रव्य ते सर्व उत्पाद व्यय ध्रुवपणे परिणमे छे,पण ते कर्त्ता नथी,अने जीवद्रव्य कर्त्ता छे, ते शा माटे? जे बीजा सर्व द्रव्यना धर्म प्रतिप्रदेशे छे,अने ते प्रदेशें प्रदेशें प्रवर्ते छे पण एक प्रदेशने बीजा प्रदेशनु सहाय एम एकठु प्रवर्तन नथी, अने जीवद्रव्यने प्रदेशें प्रदेशे धर्म अनता छे, अने ते ते प्रदेशे रह्या प्रवृत्ति करे छे पण ते सर्व प्रदेश समुदाय मलीने एकठी प्रवृत्ति छे, माटे जीवद्रव्य कर्त्ता छे, तेथी स्वस्वधर्म ने करे छे, ए कर्त्तापणु ते ईश्वरता छे, तथा अजीवद्रव्यमध्ये पण अनता गुण अनता पर्याय छे, पण ते द्रव्य पोताना गुणने जाणता नथी, अने आत्मा ज्ञानादिक अनता आत्मगुण तथा अनता परद्रव्य तेथी अनतगु णा परगुण, ते सर्वने जाणे छे, माटे जाणपणु ते असाधारण धर्म छे तथा स्वचारित्रगुणे करी आत्मा पोताना गुणनेविषे रमे छे, अने अजीवद्रव्य ते स्वधर्म रमी शकता नथी,तथा आत्मा स्वभावधर्मने भोगवे छे,तेथी स्वरूपा नुभवी छे, माटे जे कर्त्ता होय ते भोक्ता होय, पण जे कर्त्ता नथी, ते भो क्ता नथी, तेथी अनुभवधर्म, ते आत्माने विषेज छे, माटे जे कर्त्ता, जे ज्ञा ता, जे चारित्री, जे भोक्ता ते प्रभु केता तेने परमेश्वर जाणवो एटले दर्शना तरी परमेश्वरने अकर्त्ता कहे छे ते पण मिथ्या छे, केम जे परमेश्वर नि क र्मा ते स्वभावना कर्त्ता स्वभावना भोक्ता छे हवे एम केहेता ससारी तथा सिद्ध सर्व जीव परमेश्वरपणु पामे? ते उपर कहे छे तत्त्व केता वस्तुनो मू लधर्म, स्वामित्व केहेता तेनु स्वामिपणु ते परमेश्वर पणु शुचि कहेता प वित्र कर्म रहित निर्मल तत्त्व सिद्धतानु धाम कहेता घर ते निष्पन्न सिद्धा वस्था तेज परमेश्वर पणु छे, बाकी सर्वससारी जीव, सत्ताये परमगुणी छे पण जेना गुण प्रगट थया, ते पूज्य जाणवा माटे श्रीयशोविजयजी उपा ध्याये कह्यु छे ॥गाथा॥ जे जे अंशे रे निरुपाधिकपणु ते ते कहीयें रे धर्म ॥ सम्यग्दृष्टि रे गुणठाणाथकी, जाव लहे शिवशर्म ॥ १ ॥ माटे जे परम पू ज्य ते सिद्ध छे ॥ ५ ॥ इति पचम गाथार्थ ॥

जीव नवि पुग्गली नैव पुग्गल कदा, पुग्गलाधार नहीं तास रंगी॥ पर तणो ईश नहि अपर ऐश्वर्यता, वस्तुधर्मे कदा न परसंगी॥अ०॥६

अर्थ – हवे जीवनो जे मूल धर्म छे, ते श्रीसुमतिनाथ अरिहंतने निपज्यो छे ते कहे छे जे जीव नवि पुग्गली कहेतां जीव ते काइ वारे पुद्गली नथी अनंतो काल संसारमध्ये पुद्गलथी एकठो रह्या, पण केवारे पुद्गलरूप थयो नहीं तथा जीव ते पुद्गलनो आधार नथी, कारण जे क्षेत्रीद्रव्य ता आकाश छे, धर्म अधर्म, जीव, पुद्गल, ए सर्व आकाशद्रव्य मध्ये रह्या छे पण जीवना प्रदेशें पुद्गलनु रहेवु, ते जीवनी भावअशुद्धताथी थयु छे, केम जे सं संसारी जीवाने भोग तथा उपभोग गुणनो सदा ज्ञान क्षयोपशम पामीये पण स्वभोगनी प्रगटता नथी तेथी परभोगी थया छे वीर्यांतरायना क्षयोपशम सदा पामीये, ते वीर्य पण परानुयायी थयु, तथा कर्त्ता, ग्राहकता, व्यापकता भोक्तापणु सदा निरावरण छे, अने कार्य, ग्राह्य, व्याप्य भोग, अवराणो छे, तथी पुद्गलग्राह्य, पुद्गलानुयायी प्रवृत्ति ते कार्य पुद्गलभोगपणे तेह ना वर्णादिकमां व्यापक थयो, पुद्गलने ग्रहे छे पछी जेने भोगव्यो, तेनीज हां श उपजे, एटले पुद्गलनो रुचि ते फरी पुद्गलने ग्रहे, तथा भोगवे, तेथी आ त्मप्रदेशें पुद्गल रह्या छे, आत्मप्रदेश ते स्वगुणपर्यायनु क्षेत्र छे पण पर पुद्गलद्रव्यनु क्षेत्र नथी, तथा मूलवस्तुधर्में पुद्गलना रंगी नथी स्वधर्मना आ स्वादन विना ए पुद्गलनो रंगी थयो छे, पण वस्तुरीत विचारतां एने पुद्गलथी स्यो संबध छे? वली आत्मा परभावना स्वामी नथी, परभावें एनी ऐश्वर्यता कहेतां ठकुराइ नथी, एटले वस्तुधर्में कदा कहेतां कोइ वेला परवस्तुनो संगी नथी, जीवद्रव्यनो सत्ताधर्म एहवो छे, माटे माहारो सुमतिनाथ परमेश्वर शुद्ध द्रव, ते पुद्गलनो आधार तथा रागी केम होय? सर्वपुद्गलातीत छे ॥६॥

संग्रहे नहीं आपे नहीं परभणी, नवि करे आदरे न पर राखे॥ शुद्ध स्याद्वाद निजभाव भोगी जिके, तेह परभावने केम चाखे॥अ०॥७

अर्थ – वली सुमतिनाथ परमात्मा केहेवा छे? जे परभणी कहेतां परवस्तु भणी माहारापणे संग्रहे नहीं, ते परवस्तु काइ बीजाने आपे नहीं, परवस्तुने करे नहीं, परवस्तुने आदरे नहीं, परवस्तुने परिग्रह धनपणे राखे नहीं, ए

शुद्धद्रव्यना धर्म छे तथा शुद्ध कहेता निर्दोष स्याद्वाद कहेता अनंतधर्मा त्मक निज कहेता पोतानो, भाव कहेता धर्म, अनंत ज्ञान दर्शनादिक, तेहना जे त्यागी आस्वादी एटले रसनाश्वना जे भोगी थया, ते परभाव जे राग द्वेष नि अथवा पुद्गलवर्णादिक, तेहने निष्पन्नपरमात्मा केम चाखे कहेता आ स्वादे? माटे परमात्मा ते परभावने चाखे नहीं, स्वरूपभोगीज होय ॥७॥ इति

ताहरी शुद्धता भास आश्चर्यथी, उपजे रुचि तेणे तत्त्व ईहे ॥ तत्त्व
रंगी थयो दोषथी उभग्यो, दोषत्यागे ढले तत्त्व लीहे ॥ अ० ॥ ८॥

अर्थ — एवो साधन धर्म कहे छे तिहां श्रीसुमतिनाथ पोतें मुक्त करी कृत कृत्य थया ते परजीवनी मुक्तिना कर्त्ता नहीं, तो शा वास्ते स्तवो छो? नमो छो? त्यां कहे छे जे ताहरी कहेतां हे प्रभु! तुमारी शुद्धता, नि कर्मता, अनंतगुणप्रगटता, तेनुं जेवारें भासन कहेता जाणपणुं थाय, ते जेम जेम गुणनी धारणा करे, तेम तेम गुणनुं भासन थाय तेथी आश्चर्यता उपजे. जे अहो प्रभु ज्ञान! त्रण कालगत षड्द्रव्य त्रण काल पर्यावृत्ति सहित एक समये जाणे, तेमज अहो प्रभुनुं दर्शन! अहो प्रभुनुं चारित्र! सहज गुण आचरण! अहो परमानंद! इत्यादिक आश्चर्यथी आश्चर्य उपजे, तेथी पोताने तेहवी परमात्म दशा नीपजाववानी रुचि उपजे, ईहा उपजे पछी ते मोक्षरुचि जीव विचार जे क्यारें महारो आत्मा कर्मरहित थाय? क्यारे म्हारा शुद्ध पारिणामिकभाव प्रगटे? क्यारें माहरा गुण हुं भोगवुं? अने अनंता जीवानी परे जे पुद्गल तने तजी पोताना धर्म हुं क्यारें भोगवीश? एहवी रुचि उपजे, पछी ते रुचिवंत जीव तत्त्वनी ईहा करतो थको माटे ते जेम जेम तत्त्वनी ईहा करे, तेम तेम तत्त्वना रंग प्रगटे, जेम जेम तत्त्वना रंगी थाय, तेम तेम राग, द्वेष, अढार पापस्थानादि दोषथी उभगे कहेता निर्वेद, तेम ढले केहता ते पणे परिणमे, तत्त्व लीह कहेता तत्त्व मर्यादा एटले स्वतत्त्वरमणतानो थाय ए सर्व कार्य प्रभुथकी थवाना थाय॥८॥

शुद्धमार्गे वध्यो साध्यसाधन सध्यो, स्वामिप्रतिछंदे
सत्ता आराधे।। आत्मनिष्पत्ति तेम साधना नवि
टके, वस्तु उत्सर्ग आतम समाधे ॥ अ० ॥ ९॥

अर्थ —ए रीतें पारिणामिकपणे समरयो ए आत्मा, शुद्ध मोक्षसाधनमा र्गे वध्यो साध्य जे पोतानो परमात्मभाव, तेहना साधननो उपाय सध्या थको स्वामी जे श्री सुमति जिन, तेहने प्रतिछंदे केहेता तेहना जेवो पोतानी सत्ता छे तेने आराधे. कहेतां निपजावे, प्रभुनी जेवी सत्ता प्रगट करे, निर्मल निर्मल शुद्धानंद पद भोगवे, पछी आत्मा जेम जेम निष्पत्ति केहेतां निपजे तेम तेम साधना केहेतां कारणपणु टके नहीं, एटले जेम कार्य निपजे, तेम कारणता टले, कार्यान्वयी कारण छे. कारण काइ वस्तुधर्म नथी, जे वस्तु कार्यने सन्मुख थाय, ते कारणपणे परिणमे,जेम कार्य निपजे, तेम तेनी कारणता ध्वंस पामे, एम आत्मसिद्ध साधनता नवि टके, जेवारें वस्तु कर्त्ता जीवपदार्थ, घससगैरोतें संपूर्ण आत्मा पोतानी समाधि परमानंद पामे, तेवारें कारणता रहे नहीं, सिद्धपणे वस्तुना मूलधर्म प्रगटे, तेवारें साधनपणु रहे नहीं ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थ ॥

माहरी शुद्ध सत्तातणी पूर्णता, तेहनो हेतु प्रभु
तुहीं साचो ॥ देवचंद्रे स्तव्यो मुनि गुणें अनुभ
व्यो, तत्त्वभक्ते भविक सकलराच्यो ॥अ०॥१०॥

अर्थ —माटे हे प्रभुजी ! माहरी शुद्ध निर्मल आत्मसत्ता, तेहनी पूर्णता कहेतां संपूर्णता तेहना हेतु कहेतां निमित्त कारण हे प्रभु तुहीज साचो छो, तमारा जेवा शुद्धदेवनु निमित्त पाम्या विना माहारा निर्मल मोक्ष केम निपजे ? सर्व जीवनो एहीज परिणति छे, जे निमित्तावलंबी थइ, उपादानावलंबी थाय, देव जे चार निकायना, तेहमां चक्रमालमान वहेरा तेणे स्तव्या, तथा मुनि जे निर्ग्रंथ मोक्षाभिलाषी तेणें अनुभव्यो, तेहना गुणनु आस्वादन कर्यु, एहवा जे अरिहंत देव, तेनी तत्त्वरूप जे भक्ति, एटले वस्तुगत गुणनी बहुमानता, तेना उपर सर्वआत्मा अर्थी जीवो तमे राचा, मग्न थाउ ॥ १० ॥ इति दशम गाथार्थ ॥ इति श्री सुमतिजिन स्तवन ॥

॥ अथ षष्ठ श्री पद्मप्रभजिन स्तवन ॥

॥ हु तुज आगल श्री कहु केसरिया लाल ॥ ए देशी ॥

श्रीपद्मप्रभ जिन गुणनिधि रे लाल, जगतारक

जगदीश रे ॥ वालेसर ॥ जिन उपगारथकी लहे
रे लाल, भविजन सिद्धि जगीश रे ॥ वा० ॥ १ ॥
तुझ दरिसण मुझ वाल्हो रे लाल, दरिसण शुद्ध प
वित्त रे ॥ वा० ॥ दरिसण शब्द नये करे रे लाल,
संग्रह एवंभूत रे ॥वा०॥ तु० ॥ २ ॥ ए आंकणी ॥

अर्थ –हवे श्री पद्मप्रभजीना निमित्त कारणनी कारणता यथार्थरूपे स्तवे छे श्रीपद्मप्रभ गुणना निधान छे, जगतारक कहेता जगत्नेविषे मोक्षार्थी जीव तेहना तारक छे, गुणाधिक छे, तेमाटे जगत्ना ईश कहेता स्वामी वडेरा छे, जिन उपगारथी लहे कहेता पामे, भव्यजीव सिद्धि कहेता मोक्षरूप जगीश कहेता संपदा पामे, हे प्रभु ! ताहरा दर्शनमा कारणरूप ताहरी मुद्रा तु जे देखवु, ते उत्कृष्ट कारणरूपे ताहारु दर्शन कहेता शासन, उपादान कारणपणे दर्शन केता सम्यक्त्व ते मुजने वाल्हो केता इष्ट छे, हे प्रभु ! ताहरु दर्शन जे सम्यक्त्वतत्त्वरुचिरूप ते शुद्ध छे, पवित्र छे, जो आत्माने स्वरूप निर्धार, स्वरूप रुचिरूप प्रगटयो, तो आत्मा मोहमलथी रहित थाय, माटे परम पवित्र छे ॥ उक्त च ॥ सम्मत्तेण सुद्धो, सच्चसु किच्चो हवइ तिगहेक ॥ सवरबुद्धी तह नि, ज्जरा य धम्ममूल च सम्मत्त ॥ १ ॥ मूल दार पइठाण, आहारो भायण निहि ॥ दुसुक्क साविधम्मस्स, सम्मत्त परिकित्तिय ॥ २ ॥ वली दर्शन कहेता हे प्रभुजी ! ताहरु देखवु अथवा शुद्धश्रद्धा ते जे जीव, शब्दनये करे, ते जीवनो जे संग्रहनय ते एवंभूत थाय एटले भावार्थ ए छे जे सर्वजीवसंग्रह नये सिद्ध समान छे, ते ज्यारे पाताना सर्व आवरणक्षय करी संपूर्णसिद्ध थाय, तेवारें एवंभूतनय सिद्ध कहिये ते माटे संग्रह ते एवंभूत थाय, इहा नयनु स्वरूप संक्षेपें कहिये छैयें "सत्ताग्राही संग्रह" वस्तुनी सत्ताने ग्रहे, ते संग्रहनय कहियें अने वस्तुना नामपदनो जे अर्थ, तेपणे परिणम्यो, वेद्य संवेद्यपदें भावनिक्षेपे ते शब्दनय कहियें वली सकलपर्यायपरिणामिकतारूप प्रगटपणे संपूर्ण वस्तु, ते एवंभूत नय कहिये एटले ताहरु दर्शन जे देखवु ते अंतरंग अरिहंतना स्वरूपभासन आस्वादन सहित प्रभुतानु अवलोकन ते शब्दनयें प्रभुनु देखवु थयु १ योगनी चपलता, तथा उपयोग अन्यकार्यना, मात्र एकनु चक्षुइंद्रिये करी प्रभुमुद्रा

नु जोवु, ते नैगमनय प्रभु दीठा २ वंदन, नमन, आशातना वर्जन पणे जे प्रभुमुद्रा तथा प्रभुना शरीरनुं देखवु, ते व्यवहारनय प्रभु दीठा ४ योग तथा विकल्परूप उपयोग प्रभुना गुणनो, अने सर्वइंद्रियें प्रभुने जोवे, खवे, एकाग्र करे, चपलता मटावे, तथा हर्षसहित प्रशस्तरागनी मुख्यतायें जोवे स्तवे, ते ऋजुसूत्रनयें प्रभु दीठा ५ अंतरंग परिणाम परिणति चेत नानु आकर्षण तथा श्रीवीतरागनी वीतरागताये योग सर्व प्रभुमुद्रा, तथा प्रभुनु शरीर तिहां वलगा अंतरंग आत्मसत्ता प्रगट करवारूप साध्यरुचि थयो थको प्रभुतानु तत्त्वसंपदारूप अवलोकन ते शब्दनय प्रभुजो दीठा ए रीतें श्रीप्रभुजीने देखे, ते नियमा स्वसत्ता प्रगट करे, माटे ए निमित्त कारणरूप प्रभुदर्शन जाणवु एम सम्यक्त्वना पण नय करीने शब्दनये जे शुद्ध अ ...धारूप समकित ते संसारी जीवनी सत्ता प्रगटावनु कारण छे ॥ १ ॥ २ ॥

...बीजे वृक्ष अनंतता रे लाल, पसरे भूजल योग रे ॥वा०॥ तिम मु ...क आतम संपदा रे लाल, प्रगटे प्रभु संयोग रे ॥वा०॥ तु० ॥ ३ ॥

अर्थ —हवे कारणकार्य भाव कहे छे जेम बीज होय तेमां अनंता वृक्ष ... उपजवानी छती छे, पण भू कहेतां माटीमां नाखे, तथा जल कहेतां पाणी ... सींचे, एवो संयोग मले, तेवारें ऊगे, एटले माटी तथा पाणीना संयोगें वधे, ... ए रीत छे, तेम उपादानधर्म ते निमित्तकारण विना प्रगटे नहीं ए रीतें ... म्हारी आत्मसंपदा यद्यपि सत्तारूपें छती छे पण जेवार प्रभु श्रीवीतरा... ग देव शुद्धस्वरूपीनो योग मले, तेवारें प्रगटे, एटले ते आत्मनी तत्त्वने आ... ...वने वर्ते, तो ते निपजे, एम म्हारे आत्मादिक सत्ता सर्व छे पण श्री ...रिहंत रूप निमित्त मले, तेवारें सिद्धि नीपजे ॥३॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

...गतजंतु कारज रुचि रे लाल, साधे उद्यमें भाण रे ॥वा०॥ चिदान ...सुविलासता रे लाल, वाधे जिनवर जाण रे ॥वा०॥ तु० ॥ ४ ॥

अर्थ —सर्व जगतवासी जीव आहार, विषय, परिग्रह, मैथुनरूप का... रुचि कहेतां अभिलाषी छे, एटले पोत पोताना कार्य करवा रूप परि... सर्व जीवोने छे पण सूर्य उद्योतरूप निमित्त पाम्या विना कार्य क... ...के नहीं सूर्य उद्योतरूप निमित्तकारण पामे, तेवारें सर्वजीव कार्य

करवा लागे, ए रीत प्रगट देखाय छे, तेम माहारी आत्मा चिद् कहेता ज्ञान, आनंद कहेता अव्याबाधसुख अथवा सकलज्ञेय ज्ञायकता रूप जे ज्ञान तेहनो जे आनंद, तेने चिदानंद कहियें, तेनी सुविज्ञासता कहेता शुद्धपणे विलास एटले भोगवबु, ते आत्मानंद भोगीपणु ते यद्यपि सत्तानेविषे छतु छे, तो पण जेवारे श्रीजिनराजनो वर कहेता प्रधान अनुष्ठानदोष, तथा एका त दोष, तथा अर्थापत्तिदोष रहित ध्यान करिये, तेवारें आत्मानंद प्रगटे, उ पादान छे पण हे प्रभु ! तमारा जेवु निमित्त मळे प्रगट थाय माटे माहा रे प्रभुसमान उपकारी कोइ नहीं, ते कारणे हे परमेश्वर ! ताहरु दर्शन मने वालु छे, जे अनंता भव भमता न पाम्यो ते जो मळे, तो माहरु अतरगनु अनंतु अनंतु अनंता काळनु दरिद्र जाय ॥ उक्त च ॥ नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन, पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ॥ मर्माविधो विधुरयति हि मामनर्थाः प्रोद्यत्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥ १ ॥ एटले प्र भुनु दर्शन दुर्लभ छे, ते तेहनी प्राप्तिना अर्थी जे जीव, तेने इष्ट होय ॥४॥

लब्धि सिद्ध मत्राक्षरे रे लाल, उपजे साधक संग रे ॥बा०॥ सहज अध्यातम तत्त्वता रे लाल, प्रगटे तत्त्वीरंग रे ॥ बा० ॥ तु० ॥ ५ ॥

अर्थ —वली दृष्टात कहे छे जेम आकाशगमन प्रमुख लब्धियो तेनी जे सिद्धि ते विद्याशक्ति मत्राक्षरमा छे, पण ते तेहवा उत्तर साधक मळे, तेवा रे नीपजे, तेम सहज स्वभावरूप जे अध्यात्म कहेता आत्मायो तन्मयप णे रही, जे स्याद्वादरूप ज्ञानदर्शनादिक आत्मिकपरिणतिरूप तत्त्वता, ते यद्यपि वस्तुधर्मे आत्मान विषे छती छे, पण जेवारे निष्पन्नतत्त्वी शुद्ध नि र्मल, निरावरण, आत्मस्वरूपभोगी, आत्मरमणी, आत्माश्रयी असंख्यात प्रदेश पुद्गलसश्लेषरहित, एवा शुद्धदेवने आलबने एक रंग करे, तेवारे ज्ञाना वरणादि कर्मथी रहित निरावरणरूप प्रगट भाववु छतापणु नीपजे ॥ ५ ॥

लोह धातु काचन हुवे रे लाल, पारस फरसन पामि रे ॥बा०॥ प्रगटे अध्यातमदशा रे लाल, व्यक्तगुणी गुणग्राम रे ॥ बा० ॥ तु० ॥ ६ ॥

अर्थ —बीजो दृष्टांत कहे छे लोहधातुमध्ये काचन कहेतां सुवर्ण थवानी सत्ता छे, तो पण पारस पाषाण प्रमुख बाह्य निमित्त पामीने पोतानु सोना

पण लहे छे तेम भव्य जीवनी पण शुद्ध आत्मिकदशा यद्यपि सत्तारूपे
छे.पण व्यक्त कहेता प्रगट कर्मावरण रहित जे गुणी अरिहंत तेहना गुणग्रा
म करतां, स्मरण करतां आपणो आत्मा गुणानुयायी थई संपूर्ण गुणोप
णुं पामे, तेवारें सत्ता प्रगटे इहां कोई पूछशे जे निमित्त विनाज सिद्धपणु
केम न पामे ? तेने उत्तर कहे छे जे आत्मा अनादिनो पुद्गलरूप परनिमित्त
पामीने बंधपद्धति करे छे ते जो पुद्गलरूप परनिमित्त मूके तो मुक्त थाय,
ते पुद्गलरूप परनिमित्त तो अरिहंतरूप शुद्ध निमित्तने अवलंब्या विना टले
नहीं माटे श्री वीतरागदेवरूप शुद्ध निमित्त पामेथी,आपणु तत्त्व प्रगटे॥६

आत्मसिद्धि कारज भणी रे लाल,सहज नियामक हेतु रे ॥वा०॥ना
मादिक जिनराजना रे लाल,भवसागरमांहे सेतु रे ॥वा०॥तु०॥७॥

अर्थ –तेमाटे आत्मसिद्धिरूप जे कार्य, ते करवाने सहज अकृत्रिम
नियामक केतां निर्धार हेतु केतां कारण जे श्रीवीतराग देव तेने पामीने
निश्चें भव्य जीवने मोक्ष नीपजे, ए निर्द्धार थयो नामादि केतां नामनिक्षेपा
दि ते अरिहंत एहवु नाम तेने श्रवणें,उच्चारणें, स्मरणें करी पण अनेक जीव
गुणावलंबी थइ समकित प्रमुख गुण पामीने सिद्ध थया तथा श्री अरिहंत
नी स्थापना जे मुद्रा समतानी समुद्र, विषयविकार रहित, अतिशयसंपन्न,
एवी जिनथापना देखी योग थनें गुणीने अवलंबें स्वगुणावलंबी थइ अ
नेक जीव सिद्धि पाम्या, तथा श्रीपरम प्रभुनो द्रव्यनिक्षेपो ते विचरतां
शरीरधारी जिनराज, तेहना विहार उपदेश समवसरण देखी अद्भुतताने
अवलंबी, गुणावलंबी थइ अनेक जीव स्वधर्मसंपदा वरी सिद्धि पाम्या तथा
अरिहंतनो भावनिक्षेपो ते अरिहंत द्रव्यना गुण जे केवलज्ञानादि तथा प
र्याय ते अगुरुलघुतादि तेहनी अनंत परिणतिनु जे भासन, श्रद्धान तथा र
मण केतां पोतानु तत्त्व तेने अवलंबतां अनेक जीव मोक्षरूप लक्ष्मी पा
म्या, माटे एश्री अरिहंतना जे नामादि चार निक्षेपा छे, ते भवरूप महा
समुद्रमध्ये सेतु केतां मोहोटी पाज समान छे माटे प्रभुना नामादि चार
निक्षेपाने अवलंबीने आत्मसिद्धि करवी ॥७॥ इति सप्तम गाथार्थ ॥

प्रभन इंद्रिय यागनो रे लाल, रक्तवर्ण गुण राय रे ॥वा०॥ देव
र हृदे स्तव्यो रे लाल, आप अवर्ण अकाय रे ॥वा०॥तु०॥८॥

अर्थ –वली श्रीपद्मप्रभ स्वामीनु रक्तवर्ण शरीर ते सामा जीवना इन्द्रिय तथा योगनु स्थभन छे, एटले इन्द्रियो वर्णादिकने अचलपणेने रहे माटे प्रभुजी राते वर्णे छे, गुणगानीर्यादिक तेहना राजा छे, देव जे धर्मदेव ते साधु,नरदेव ते चक्रवर्त्ती, भावदेव ते भवनपति प्रमुख, तेहमा चन्द्रमा समान, वली इन्द्र गणधरादिक तेहना वृंद कहेता समूह, तेणे स्तव्या, पण प्रभु केहवा छे ? अवर्ण छे, अगध, अरस, अफरस, एहवा अकाय छे शरीर रहित छे, एटले भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरहित छे सकल पुद्गलातीत छे, एहवा श्रीपद्मप्रभ देव ते मने आधारभूत छे,परमशरण छे,एना निमित्ते परम पद नीपजे ॥८॥ इति अष्टम गाथार्थ ॥ इति षष्ठ पद्मप्रभजिनस्तवन सपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तम श्री सुपार्श्वजिनस्तवन ॥

हवे श्रीसुपार्श्व प्रभुने सहजधर्मरूप तत्त्व सपदापणे स्तवे छे जगत्‌ना जीव पुद्गलानदी छे, ते नवा पुद्गलने लेवे करी आनद पामे छे,पण ने पुद्गलसयोगजन्यसुख, तथा दुःख, ते आत्महित नहीं विभाव छे माटे अने जे आत्मानु सहज सुख ते आत्मधर्म छे, ए रीतें आगममध्ये उपदेश छे, ते कहे छे जे आत्माना अनता गुण छे, ते गुणगुणनु सुख जुदु जुदु छे,अने एक अव्याबाध सुखरूप आत्मधर्म जूदो छे, एक एहनीव्याख्या छे तथा आत्माना ज्ञान दर्शनरूप गुण, ते मूलगुण छे, अने वीर्यादिक सर्व ते गुणनी प्रवृत्तिरूप धर्म छे एक एवी पण व्याख्या छे अने १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ दान, ५ लाभ, ६ भोग, ७ उपभोग इत्यादिक अनत गुण आत्माने विषे छे, तथा विशेषावश्यकमाहे कह्यु छे

क्षायिक सम्यक्त्व केवलज्ञान केवलदर्शन सिद्धत्वानि पुन सिद्धावस्थायामपि भवति । अन्ये तु दानादिलब्धिपञ्चक चारित्रसिद्धस्यापीछति तदावरणस्य तत्राप्यभावात् आवरणाऽभावेपि च तदसत्त्वे क्षीण मोहादिष्वपि तदसत्त्वप्रसगात् ततस्तन्मते चारित्रादीना सिद्धावस्थायामपि सद्भाव पुनस्त्वार्थे पुनरप्यादिग्रहण कुर्वन् ज्ञापयति ॥ अत्राऽनन्तधर्मात्मकतयाऽशक्या प्रस्तारयितु सर्वे धर्मा प्रतिपदमप्रवचनज्ञेन तु पुसा यथा सभवमायोजनीया क्रियावत्त्व पर्यायोपयोगिता प्रदेशाष्टकनिश्चलता एव प्रकारा सन्ति सुया

स । अपि समुच्चये । एव प्रकारा अनादिपारिणामिका भवन्ति जीवस्य भावा ।
इहां जीवने विषे अनंता धर्म जुदा जुदा कह्या, तथा रत्नाकरावतारिकामध्ये
सप्तभंग्यधिकारे । नन्वेकस्मिन् जीवादौ प्रतिवस्तुन्यनंतधर्मात्मकत्वेनानंतधर्म
वत्त्वमेव । स्याद्वादरत्नाकरे । एकत्र वस्तुन्येकैकधर्मपर्यायानुयोगवशादविरो
धेन व्यस्तयो समस्तयोश्च विधिनिषेधयो स्यात्काराङ्कित सप्तधा वाक्प्रयोग
सप्तभंगीति । नन्वेकस्मिन जीवादिवस्तुन्यनंताविधीयमाननिषिध्यमानानाना
धर्मा स्याद्वादीनां भवेयु । वाच्येयता यत्तत्वाद्वाचकेयताया ततोविरुद्धैव
सप्तभंगीति ब्रुवाण निरस्यति। एकत्र वस्तुनि विधीयमाननिषिध्यमानानंतध
र्माऽभ्युपगमेनानंतभंगी प्रसक्तैव सप्तभंगीति न चेतत्ति निषेधमिति अत्र
हेतुमाह ॥ विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायवस्तुन्यनंतानामपि सप्तभ
गीनामेव संभवादिति तथाप्येकैकपर्यायमाश्रित्य विधिनिषेधविकल्पाभ्या व्य
स्तसमस्ताभ्या सप्तैव भंग्य संभवति न पुनरनंतास्तत्कथमनंतभंगीप्रसंगा
दिसगतत्व सप्तभंग्या समुत्थाप्यते कुतस्तस्तथैव भंगा संभवतीत्यत्राह ।
प्रतिपर्याय प्रतिपद्य तु पर्यनुयोगाना सप्तानामेव संभवादिति अनंतधर्मापे
क्षया सप्तभंगीनामानंत्य यदा याति तदभिमतमेव ॥

एटले वस्तुविषे धर्म अनंता छे इहा कोइ कहे जे धर्म तथा गुणवस्तु
जुदी छे, ते अजाण छे, केम के नाम भेद अशभेदपणु तो शब्दादिक नय
सर्व माने छे, घटकुंभादिकोने विषे एक वस्तुना स्वमयीपर्यायमा पण नाम
भेदे भेद कहे छे, ए रीतें गुणशब्द तथा धर्मशब्दनो भेदार्थ छे, पण विशेष
रीतें गुण अने धर्म ए बेहु एकज छे, श्रीविशेषावश्यके "जह सो विसेस ध
म्मो, चेयण तह मया किरिया" इहा चेतनागुणने धर्म कही बोलाव्यो छे
वली भाष्यने विषे । आह ननु गुणस्वभावयोर्भेदएव तद्भेदनिबंधनधर्मभे
भावात् ॥ इत्यादि ॥ हवे भेद गुणना भाखीजें, तिहां अस्तिकता लहि
जी ॥ ए पाठ द्रव्यगुणपर्यायना रासमा यशोविजयजी उपाध्यायें पण
स्तिकता धर्मने गुण कह्यो बोलाव्यो छे वली सिद्धांतमा पण उपयोगादि
अव्याबाध तथा अवर्णेत्यादिक अनेक गुण कह्या छे, तथा तत्त्वार्थमा
क आत्मा निष्क्रिय तथा क्षायिकसम्यक्त्ववीर्यसिद्धत्वदर्शनज्ञानैरात्यंति
सयुक्तोनिर्द्वन्द्वेनापि सुखेन तथाऽस्तिकायत्वगुणवत्त्वानादित्वासंख्येयप्र
त्त्वनित्यत्वादय सत्येव जीवस्य

६

यद्यपि नगवती सूत्रमा सिद्धने अवीर्या तथा अचारित्रीया कह्या छे, तेतो करणरूप चलवीर्यनी अपेक्षायें कह्या, पण तेहीज श्रीअनुयोगद्वार मा क्षायिकलब्धि अधिकारें तथा पन्नवणासूत्रमा वीर्य ते जीवलक्षण छे, एम कह्यु छे तथा चारित्र प्रवृत्तिरूपनी ना छे, पण स्थिरतारूपचारित्र ते तो जीवनु स्वलक्षण छे, ते उत्तराध्ययनना अठ्ठावीशमा अध्ययनथी जोवु, तथा वसुदेवहिंमध्ये, वली श्रीपालचरित्रमध्ये सिद्धस्तुति अधिकारें कह्यु छे ॥ गाथा ॥ जे एत गुणा डगुणा, इगतीस गुणा य अहव अठ गुणा ॥ सिद्धाणंत चउक्का, ते सिद्धा दितु मे सिद्धि ॥ १ ॥ तथा बृहत्कल्पनो ष्ये ॥ दवेण जीवदव, सखातीतपदे समोगाढ ॥ काले अणाइणिहणा, नावेणाणाइया णंता ॥ १ ॥

एम द्रव्यार्णव तथा आप्तमीमासादिक अनेक ग्रथोमा कह्यु छे, माटे अ त्मानी जेवारे नेदव्याख्या करियें, तेवारें गुण अनता एक एक गुणने वि षे अविनाग अनता, एक एक अविनागने विषे अनता पर्याय, ए कम्मपयडी ने विषे व्याख्या देखाय छे अने तेज अविनाग तथा पर्यायनु एकपणु प ण श्रीनगवतीनी टीकामा देखाय छे अने सक्षेप व्याख्यायें गुणपर्याय बे हुने एक पर्यायास्तिक कही बोलाव्या छे, एम मतिविभ्रम टालीने श्रद्धा राखवी इहा श्रीअरिहत द्रव्यने विशेषे ओलखाववा निमित्ते गुणगुणनी जुदी जुदी व्याख्या जणाववा माटे तथा पोतानी सत्तानी रुचि प्रगट करवा माटे गुण गुणनो जुदो जुदो धर्म कही स्तवना करियें छैयें ए प्रशस्ति थई

॥ हो सुदर तप सरिखु जग कोइ नहीं ॥ ए देशी ॥

श्री सुपास आनदमे, गुण अनतनो कद हो ॥ जिन जी ॥
ज्ञानानदे पूरणो, पवित्र चारित्रानद हो ॥जि०॥श्री०॥१॥

अर्थ —श्री सुपार्श्वप्रनु आनदमयी छे शुद्धआनद ते एने विषे छे, जेमाहे परनो नेज नथी, स्वरूप सुख छे, वली सुपार्श्वप्रनु केहवा छे? के गुण जे सहनावी अथवा 'द्रव्याश्रिता निर्गुणागुणा' एटले द्रव्य जे समुदाय तेहने आश्रि रह्या ते गुण, पण तेमा अन्य गुणपणु नहीं, गुणमध्ये तो पर्याय छे ॥ सवे सपक्खरा गुणा इति कल्पनाष्यवचनात् ॥ तथा अपक्खवे जाणणा नत्थि इति आवश्यकनिर्युक्तिवचनात् ॥ माटे गुणने विषे पर्याय छे, पण गुणने विषे

अन्य गुण नथी श्रीनयचक्रमां कह्युं छे जे गुणने विषे अन्यगुण पणुं होय तो गुण ते द्रव्यपणुं पामे, तेमाटे गुण ते निर्गुण छे, एटले सुपास प्रभुरूप द्रव्य छे ते ज्ञानादिक अनंत गुणना कंद छे एटले मूल छे. तिहां ज्ञान जे आत्मानो विशेषावबोधरूप सकल विशेष धर्म गुणपर्याय, तेहनी अनंती परिणति तेहनो ज्ञायक नित्यानित्यादिक अनंत धर्मनुं ज्ञायकत्व, वेतृत्व, अगुरुलघुत्व, अनंतपर्यायनो पिंड, ते ज्ञानगुण ते लोकालोक सकल प्रत्यक्षरूप सर्वप्रदेशनिरावरणरूप तेहने आनंदे करी पावनो कहेता पवित्र छे, पूर्ण छे वली कषाय तथा पुन्न फल आशारूप दोषरहित एवुं स्वरूप स्थिरतारूप जे चारित्र, अनंतपर्यायात्मक, अकषायता, अवेदता, अनंगता, परमक्षमा, परममार्दव, परमआर्जव, परमनिर्लोभतारूप, स्वरूप एकत्वरूप चारित्रधर्म, असंख्यातप्रदेशें व्यापकपणे रह्यो छे, तेहनो आनंद, हे श्रीसुपास प्रभु! तुम्हारे विषे छे, एटले चारित्रानंदमयी छो, ते माटे पवित्र निर्मल छो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

सरक्षण विण नाथ छो, द्रव्य विना धनवंत हो ॥ जि० ॥ कर्त्ता
पद किरिया विना, संत अजेय अनंत हो ॥जि०॥ श्री०॥ २ ॥

अर्थ —वली रे प्रभु! तमें सरक्षण विना नाथ कहेता धणी छो, एटले कोई अन्य जीवनी तथा अन्यद्रव्यनी रखवाली करता नथी, केम जे रक्षण पणुं करवुं, ए तमारो धर्म नथी, माटे कोईना तमें रक्षक नथी, पण शरण त्राण आधाररूप छो, मोक्षना हेतु छो. तेथी नाथ छो वली द्रव्य जे धन, स्वजन, परिजन, गज, मंदिरादि, सर्व परिग्रह रहित छो तो पण ज्ञानादि स्वगुण पर्यायरूप अनंतुं धन, श्रीप्रभुनी पासें छे, माटे धनवंत छो. वली हे प्रभु! तमारे विषे कर्त्ता पद, कहेतां कर्त्तापणुं छे, पण गमन परिसर्पणादिक क्रिया विना कर्त्ता छो एटले बीजाने कर्त्तापणुं ते क्रियाए करी होय छे. अने तमें तो अक्रिय छतां गमनपरिसर्पणादिक क्रिया विना पण कर्त्ता छो. शुद्धात्मानि क्रिय एम तत्त्वार्थटीकामां कह्युं छे वली हे प्रभुजी! तमें संत छो उत्तम छो, तत्त्वपरिणाम रसिक छो. अनेक कर्मना रागद्वेष परीसह वगेरे करी अजेय छो. वली कोई काले विणसता नथी, माटे अनंत छो, अथवा अनंतपर्याय माटे अनंत छो ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

अगम अगोचर अमर तु, अन्वय ऋद्धि समूह हो ॥ जि० ॥
वर्ण गंध रस फरस विणु, निजभोक्ता गुणव्यूह हो ॥जि० ॥३॥

अर्थ —वली हे प्रभु ! तमारु स्वरूप तुच्छ ज्ञानी जाणी शके नहीं, माटे अगम छो वली हे प्रभु ! तमे इंद्रियगोचर नथी, माटे अगोचर छो वली आयु कर्मना क्षयथकी प्राणवियोग थाय, तेने मरण कहियें, ते तमे प्राण तथा मरण रहित छो,माटे हे प्रभु ! तमे अमर छो,वली हे प्रभु ! तमे अन्वय कहेतां जे सहजना व्यापक पोताना ज्ञायकादिक गुण, तेनी प्रवृत्ति सहित जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यादिक गुण, ते अन्वयी गुण कहिये, तेहीज ऋद्धि कहेतां संपदा तेहना समूह छो, अने कषायादि दोषने टलवे करी जे अकषायादिक गुण उपना, ते व्यतिरेक गुण कहिये, तथा सति सद्भावो पटने जे छते पामिये, ते अन्वयी गुण कहिये, तेहना समूह छो वली वर्ण, गंध, रस, फरस, ते पुद्गलधर्म छे, तेथी तमे रहित छो, अने निज कहेतां पोता नो जे स्वरूपधर्म, तेहना भोक्ता छो, गुणना व्यूह कहेतां समूह छो ॥३॥इति॥

अक्षय दान अचिंतना, लाभ अयत्ने भोग हो ॥ जिन० ॥ वीर्य
शक्ति अप्रयासता, शुद्ध स्वगुण उपभोग हो ॥जि०॥श्री०॥ ४ ॥

अर्थ —वली हे प्रभुजी ! तमारा अनंता गुणनी प्रवृत्ति केवी रीतें छे ? ते कहे छे वीर्यगुण ते सर्वगुणने सहकार दिये छे तेम ज्ञान गुणना उपयोग विना वीर्य फुरी शके नहीं, तेथी वीर्यने सहाय ज्ञानगुणनु छे, तथा ज्ञानमां रमण ते चारित्रनु सहाय छे, अने पररमण न करे, ते चारित्रने ज्ञाननु सहाय छे एम एक गुणने अनंत गुणनु सहाय छे हवे जे गुण सहाय दिये छे, तेनो आत्माना गुणमां दानधर्म छे, एम हे प्रभुजी ! तमे प्रतिसमय अनंत स्वगुणसहायरूप दान ते अनंतु द्यो छो, पण भंडार क्षय पामा नहीं बीजा जगतमां दानना आपनार केटले काले क्षय थइ जाय अने तमे सादि अनंत काल स्वाधीन पणे स्वगुणरूप पात्रने अनंतु दान अद्य दयो छो, पण भंडारे क्षीण न थाउ माटे अक्षय एवा दान आपो छो एहवो दानगुण तमारे विषे छे, अने जे गुणने ज गुणनी सहायरूप शक्तिनी प्राप्ति ने लाभ छे,बीजाने जे ।चिंतवे,ते लाभ थाय ते पण निरंतर नथी,

थने हे प्रनुजी ! तमारे विषे चिन्तना विकल्परूप जे लाजार्थीपणु ते नथी,ता पण लान अनंतो ठे, माटे अणचिंत्या लाननाधणी हो, एहवो लानगुण ठे वली हे प्रनुजी ! तमें पोताना पर्यायने प्रतिसमयें जोगवो हो, पण प्रयास विना जोगवो हो. माटे तमें यत्नविना प्रयत्नविना जोगमयी हो, जीवना सर्व गुणनो जे प्रवृत्ति तेनु सहाय जे वीर्य,ते अनतु अन्यसहाय विना फुरी रह्यु ठे,पण ते वीर्यनी फुरणा, विना प्रयासें एटले उद्यम विना वीर्य फुरे ठे, वली शुद्ध स्वगुण केता स्वानाविक जे स्वगुण तेहनो उपजोग ठे,ए पांच अंतरायनी प्रकृतिना क्षय थयाथी पाच गुण प्रगटया ठे,एटले हे प्रनुजी ! तमने स्वरूपनुं दान, स्वरूपनो लान, स्वपर्यायनो जोग, स्वगुणनो उपजोग, स्वसर्वपरिणति सहकार शक्ति, ते वीर्य, ए रीतें धर्म प्रगट थया ठे ॥४॥इति॥

एकांतिक आत्यंतिको, सहज अकृत स्वाधीन हो ॥ जि० ॥ निरुपचरित निर्द्वंद्व सुख, अन्य अहेतुक पीन हो ॥ जि० ॥श्री० ॥ ५

अर्थ —वली हे प्रनुजी ! तमने जे सुख प्रगटयां ठे, ते सुख केहवां ठे ? जे एकांतिक केतां एकलुं सुख, जे पाठो डुःख पामे नहीं, वली आत्यंतिको केतां जेथी बीजुं वधारे सुख कोइ नथी,एटले सर्वथी अधिक ते पण सहज केतां स्वनावनु अकृत केतां अणकीधु पण कोइनु करेलु नहीं, वली ते पोताने स्वाधीन पोतानें वश पण पराधीन नहीं. वली निरुपचरित केतां जे उपचाररूप नहीं, अठता आरोपने उपचार कहियें, ते ए सुखमां काइ उपचारपणु नथी, संसारमां शातावेदनीनु सुख, ते उपचरित सुख ठे, केम के शातामध्ये सुखधर्म नथी पण अज्ञान नूलें,संसारी आत्मा, सुख माने ठे, पण वडेरा एने सुख कहेता नथी जे संसाराजिनंदी मोहें मूढ,परमार्थने अजाणता विषयगृद्ध थका इंद्रियदेहजनित विषयसुखने सुख माने ठे, ते जातें सुख नहीं ॥ यत ॥ विसयसुहं डुरक चिय, डुरक पडियारर्ठ तिगिछव ॥ तं सुयमुयाराउं, न उवयारा विणा तच ॥ १ ॥ इति विशेषावश्यके ॥ तथा शातानो उदय, ते पण स्वधर्मरोधक ठे, अने पुजल कर्मनो विपाक हे माटे ते सुख नहीं ॥ सायासायं डुरकं, तब्विरहंमि य सुहं जठलेण ॥ देहिंदियेसु डुरकं, सुरक देहिंदिया जावो ॥ इति ॥१॥ एम उदयिक सुख,ते सुख नहीं, अने जे सिद्धनिरुपम अनंत आत्मस्वनाव प्राग्नाव जोक्तापणे

तेज सुख जाणवु वली निर्द्वंद्व कहेता जेमाहे अन्य जीव तथा अजीव द्रव्यनो सयोग नही, एटले परवस्तुनो भेळ नथी कदापि परवस्तुनु कारण पामीने उपनु होय ? तिहा कहे छे जे ते निःद्वसुख कहेवु छे, के अन्य केता बीजा द्रव्यनु हेतुपणुं जेमा नथी वली पीन केता पुष्ट छे, प्रबल छे, माटे श्रीसुपार्श्वजिननु जे आत्मिक सुख ते माहानद छे ॥ ५ ॥ इति पचम० ॥

एक प्रदेशे ताहरे, अव्याबाध समाय हो ॥ जि० ॥ तसु पर्याय
अविभागता, सर्वाकाश न माय हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ –वली हे प्रभु ! तमारा आत्माना एक प्रदेशने विषे अनत गुण,अनत पर्याय छे, तेमाहे हे प्रभुजी ! ताहारे एकप्रदेश जे अव्याबाध गुण समाइ रह्यो छे, ते अनतो छे, ते अव्याबाध सुखना पर्याय तेना अविभाग ते केवलीनी बुद्धियें जेहना एक सहना बे सह न थाय, तेने अविभाग कहिये, ते अविभाग लोक तथा अलोकाकाशना एकेका प्रदेशें एकेको सुखनो अविभाग राखिये, तो पण सर्वाकाश कहेता लोक अलोक रूप सर्व आकाशमां समाय नही, एटले आकाशना प्रदेशथी पण तमारे एकप्रदेशें रह्यु जे अव्याबाध सुख, तेना अविभाग अनत गुणा छे ॥ यत ॥ सिद्धाउ भावधम्मा अणतगुणा ॥ इति ॥ सदा क्षेत्रधर्मथी भावधर्म अनत गुणा छे ॥ ६ ॥ इति ॥

एम अनत गुणनो धणी,गुण गुणनो आनद हो ॥ जि० ॥ भोग
रमण आस्वादयुत, प्रभु तु परमानद हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ –एम केता ए रीतें हे प्रभुजी ! तमे अनत गुणना धणी छो, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अव्याबाध, अमूर्त्तता, अगुरुलघु, दान, लाभ, भोग, उपभोग, कर्त्ता, भोक्ता, पारिणामिकता, अचल, अविनाशी, अनत, अन, अनाश्रयी, अशरीरी, अणाहारी,अयोगी, अलेशी,अवेदी, अकषायी, असख्यप्रदेशी, अचल, अक्रिय, शुद्धसत्ताप्राग्भावरूप, नित्य, अनित्य, एक, अनेक, सत्, असत्, भेद, अभेद, भव्यत्व, अभव्यत्व, सामान्य, विशेष इत्यादि अनत गुण पर्यायरूप धर्मना धणी छो ते गुण गुणनो जुदो जुदो आनंद छे, तिहां दृष्टात कहे छे जेम ससारी जीवने धननु सुख भिन्न छे, रूपनु सुख भिन्न, भोजननु सुख भिन्न, देखवानु सुख भिन्न, स्थानकनु

सुख भिन्न छे. तेम सिद्ध आत्माने पण गुण गुणनु सुख भिन्न भिन्न छे, तेथी अनंतो अनंत रीतें आनंद छे,एटला सर्व गुणनो आनंद छे, ते सर्वनो भोग पण छे, केम के भोगव्या विना आनंद थतो नथी एटले अनंता गुण ना आनंदनो भाग अनंता छे, तेमज ते सर्व गुणने विषे अनंतु रमण पण छे तेम अनंतो आस्वाद पण छे, केम के अनंता गुणने आस्वादीने भोगी थयो थको आनंदने विलसे छे, माटे अनंतो आस्वाद पण छे, तेथी हे प्रभु! तमें परमानंद छो इहां गुणगुणीनो अभेद उपचार बोलाव्यो, जे परमा नंदमयी तेहीज परमानंद. एहवा परम देव छो ॥७॥ इति सप्तम गाथार्थ ॥

अव्याबाध रुचि थई, साधे अव्याबाध हो॥जि०॥ देवचंद्र पद ते लहे, परमानंद समाध हो ॥जि०॥श्री०॥८॥

अर्थ—एहवा परमानंदरूप अव्याबाध सुख श्रीपरमात्मप्रभुने विषे छे. ते में निर्धार करयो, तेवारें जाण्युं के जेवु अव्याबाध सुख श्री सुपार्श्व प्रभुने विषे छे, एहवुज सुख माहारे विषे पण छे, एहवु जाणपणु प्रगट्यु, तेथी भव्य जीवने उपयोग आव्यो, जे हु पण ज्ञानादि अनंत गुणी छु, हवे माहारो शुद्धानंद भोग केवारें प्रगटे? एहवा उपयोगें जे जीव ज्येष्ठ मह्निामां जेम बपैया तृषातुर थइने वरसादने अभिलाष वरते, तेनी परें जे जीव, अव्याबाध सुखनो रुचि अभिलाषी थइने पुजलसयोगजन्य जे सुख तेतो विषभक्षण समान आत्मस्वरूपना घातक जाणीने तेथी उभगयो थको एक आत्मानंद केवार प्रगटे? एवो थको वर्त्ते, पछी तेहना साधक जे मुनिराज तेनां चरण सेवता उदासीन थइने साधे, केता निपजावे, आत्मिक अव्या बाध सुख प्रत्यें एटले उत्तम जीव स्याद्वाद आगम श्रवण करी, पांच आश्रवथी विरमी शुद्धसयमी थइ, देहनिस्पृही थको मोक्षने साधे ॥ उक्तं च॥ यत ॥ पचासव विरता, विसय विमुत्ता समाहि सपत्ता ॥ राग दोस विमुत्ता, मुणिणो साहंति परमट्ठ ॥ १ ॥ आवस्स खीणमाण, सुप्पाणवियोगेवि जे समाहिपया ॥ मावय दहूवयावि हु, मुणिणो साहंति परमठ ॥ २ ॥ एह वा मुनिराज त्रिकाल विषयना अवाछक, तत्त्वगवेषी, तत्त्वरसिया, तत्त्वानंद रुचि, पोतानु तत्त्व, अनादिनु कर्मसगें दबाणु ते प्रगट करवा माटे सकल पुजलभावथी विरक्त थइने जे आत्मा निपजावे छे, ते जीव, निमित्तावलंब

नी थइ स्वरूपावलंबन करता स्वरूपमध्ये एकत्व पामीने क्षपकश्रेणि आरोहण करी घनघाति कर्म खपावीने सयोगी केवली थइ,पछी शैलेशीकरण करी नि कर्मा थइने देव जे धर्मदेव मुनिराज, तेमाहे चंद्रमा समान एहवु अरिहंत पद तेने ते जीव पामे, जेमा परमानंदनी समाधि छे, अने सकर्मारूप अवस्था ते महाव्याधि छे, माटे निरावरण नि कर्मावस्था ते परम समाधिरूप छे, ते अवस्था श्रीसुपार्श्व परमात्माने अवलंबता जीव पामे, माटे श्रीसुपार्श्व प्रभुनी सदा सेवना करवी एहीज आधार, त्राण, शरण छे॥ ८॥

॥ अथ अष्टम श्री चंद्रप्रभजिनस्तवनं ॥

॥ श्री श्रेयांस जिन अंतरजामी ॥ ए देशी ॥

श्रीचंद्रप्रभ जिनपद सेवा, हेवाये जे हलिया जी ॥ आतमगु
ण अनुभवथी मलिया, ते भवभयथी टलिया जी ॥ श्री०॥१॥

अर्थ –हवे श्रीचंद्रप्रभ भगवाननी स्तवना कहे छे अने सेवना पण उंलखावे छे, ते श्रीचंद्रप्रभनामा आठमा प्रभुनी पद केता चरणनी सेवा अथवा अरिहंत पदनी सेवना तेहनी जे हेवा केतां भात रीत, तेहमां जे हलिया केता तेवी टेवे पड्या छे, तेहने प्रभुसेवन विना काल जाय नहीं, जेहने असंख्यात प्रदेश श्रीप्रभु परमात्मा परमपूज्यनु आराध्यपणु छे, ते जीव आत्मा चेतनालक्षण असंख्यात प्रदेश स्वधर्मना कर्त्ता, स्वधर्मना भोक्ता, पोताना गुण ज्ञानदर्शनादिक, तेहना अनुभव केतां भोगववु, तेहथी मल्या छे, एटले आत्मगुणभोगी थया छे, तेज जीव भव केता चार गतिरूप संसार तेहना जे भय, जन्म मरण स्वरूपरोगरु कर्माधीनतारूप, तेहथी टल्या छे, एटले यथार्थ रीतें जे परमात्माने सेवे, ते अवश्य असंसारी थाय तेमाटे टलवा योग्य थया ते टल्या ए न्यायें, हर्षनु वचन छे, जो कारण मले, तो कार्य नीपजे तेम उत्तम जीव अरिहंत सेवन परिणम्या प्रभु मल्याना हर्षे संसार समुद्रने गोपदसमान माने छे ॥१॥ इति प्रथम०॥

द्रव्यसेव वंदन नमनादिक, अर्चन वली गुणग्रामो जी॥ भाव
अभेद थावानी इहा, परभावें नि कामो जी॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ ते सेवना चार प्रकारनी छे १ नामसेवना, २ स्थापनासेवना,

३ इव्यसेवना,४ नावसेवना तेमा नाम तथा स्थापना, ए बे सेवना तो सुगम ठे अने इव्य निक्षेपाना बे नेद ठे एक आगमथी इव्यनिक्षेपो, अने बीजो नोआगमथी इव्यनिक्षेपो, तिहां जे आगमथी इव्यनिक्षेपो, तेतो जे सेवनापदनो अर्थ विधि जाणे, पण ते कालें ते अर्थनो उपयोग नथी, ते आगमथी इव्यनिक्षेपो कहियें । अणुवउगो दव्व । इति अनुयोग द्वारवचनात् हवे बीजो नोआगमथी इव्यनिक्षेपो, तेहना वली त्रण नेद ठे एक ज्ञशरीर, बीजु नव्यशरीर, त्रीजु तद्व्यतिरिक्त शरीर तिहां जे जे सेवना नावरूपें परिणम्या हता, पण प्राणमुक्त थया, तेहना शरीर, ते ज्ञशरीर इव्यनिक्षेपे ठे,ए पहेलो नेद. तथा जे जीव हमणां तो सेवनापणे परिणम्या नथी. पण अनागत कालें नावसेवनापणे परिणमशे, ते नव्यशरीर इव्यनिक्षेपो कहियें. ए सर्व इव्यनिक्षेपो ते नैगमनयने मतें ठे, ते बीजो नेद तथा जे सेवनानी प्रवृत्ति अंतरग नावसेवनाने कारणपणे वरते, ते तद्व्यतिरिक्त इव्यनिक्षेपे सेवना कहियें, ए त्रीजो नेद कह्यो

तेमाहे जे यागनी वंदन नमनादिक प्रवृत्ति, ते व्यवहारनयें इव्यसेवना. अने जे अंतरंग विकल्पें बहुमानादिक, ते ऋजुसूत्रनयें इव्यसेवना ए रीतें इव्यसेवनानु स्वरूप कह्यु, एटले जे अरिहंतना चार निक्षेपरूप कारण दृष्टिगोचर, श्रवणगोचर, स्मरणगोचरपणु पामीने जे जीव वंदन, करजोडन, नमन, मस्तक नमाववु, इत्यादिक अन्युत्थान अंजलि, आधीनतादिकरण, चंदन पुष्पादिक करीने, अर्चन, वली गुणग्राम जे मुखथी मधुर ध्वनियें गुण कहेवा, ते इव्यसेवा जाणवी, अने जे आत्मा संसार पराङ्मुख अरिहंतना गुणनु अत्यंत बहुमान, असंख्यात प्रदेशें अरिहंतनी अरिहंततानु आश्चर्य, अनुतता, तथा अरिहंतनिमित्तना विरह अक्षमता, अने अरिहंत ईहारूप परिणाम तेथी अनेदपणे थवानी नावपणे निपजाववानी ईहा, ते इव्यसेवा लेखे ठे, परंतु नावरुचिपणा विना इव्यप्रवृत्ति ते बालजीना समान ठे, तेमाटे इहां कह्यो जे नाव तेथी अनेद थवानी ईहा सहित जे सेवा ते इव्यसेवा जाणवी, इव्यप्रवृत्ति विना एकला नावधर्मने पण तत्त्वार्थटीकामा आचार्यें साधन कह्यु ठे तथा सम्मतिग्रंथे । चरण करण प्पहाणा, ससमय परसमय मुक्कवावारा ॥ चरणकरणस्स सार, नछिय सुध्द न याणंति ॥ १ ॥ नाणाहि ववरतर, हीणोवि हु पवयण पनावंतो ॥ नयडुक्क

र करंतो, सुहुवि अप्पागमो पुरिसो ॥ २ ॥ इत्यादिक वचनें नावधर्म ते मुख्य ठे द्रव्य विना पण नाव ते गुणकारी ठे, पण नाव साध्यरुचि विना एकलु द्रव्य ते कामनुं नथी, ए परपरा ठे वली परनाव जे आत्मधर्मथी अन्य पुण्यबध शुनकर्मनो विपाक तेहनी कामना अभिलाषा विना जे द्रव्य सेवना, ते कामनी जाणवी ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

नावसेव अपवादे नैगम, प्रनुगुणने संकल्पें जी ॥ संग्रह
सत्ता तुल्यारोपे, नेदानेद विकल्पे जी ॥ श्री० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हवे नावनिक्षेपाना बे नेद ठे, ते कहे ठे एक आगम नावनिक्षेपो, बीजो नोआगम नावनिक्षेपो तिहां नावसेवनाना पदना अर्थने जाणतो थको तेवा उपयोगे प्रवृत्ते, ते पुरुषने आगमथी नावसेवना कहिए, ए आधाराधेयनो अनेद ग्रही, निक्षेपो कह्यो, तथा जे जीव नावसेवना ये परिणम्या, तेहनी नक्ति, साधना, परिणति, ते नोआगमथी नावसेवना कहिये इहां मूल वस्तुधर्म विचारता आत्मद्रव्यने विषे सेव्यसेवक नाव नथी, सत्तायें सर्वद्रव्य समान ठे, अने कोइ द्रव्य कोईनो धर्म लेता तथा देता नथी, पण जे ससारी जीव ते अनादिनो अढार पापस्थानकें परिणम्यो, विनावनावितथको कर्ममयी थईने, ससारी पुजलनो निखारी तत्त्वनो चूक्यो, मोहने बदीखाने दुखमयी थयो ठे, ते जेवारे स्वरूपने पामे, तेवारें सिद्ध परमेश्वर थाय तेतो श्री अरिहत नि कर्मा तत्त्वनोगीने पूज्यपणे अविलबतां नीपजे, माटे स्वकार्य करवाने जे परमात्मा निष्पन्न सिद्ध तेहने निमित्त कारणपणे अवलबीने अतरगपरिणतिथी सेवे, ते जिहा सुधी एनी शुद्धसत्ता सपूर्ण पर्दे न थाय, तिहा सुधी ए सेवक अने सपूर्ण सुधानदमयी थया, ते सेव्य जाणवा, ए निमित्तावलबी सेवा, ते अपवाद सेवा, अने ते सेवा करता पोतानु साध्य निपजाववु, ते उत्सर्ग सेवा कहियें ॥ उक्त च ॥ उक्कोसो उस्सग्गो, जस्स सपुत्र ममजसप्नावो ॥ अववाउ तस्साहण, तबुढिकरो अणेगविहो ॥ इति ॥ १ ॥

जे जेहनो उत्कृष्टो सपूर्ण निर्मल निर्दोषस्वनाव थयो, जेथी आगल बीजी अवस्था काहि नहीं, ते उत्सर्ग कहियें, अने ए उत्सर्गने निपजाववा माटे कारणरूप जे मार्ग अगीकार करवो, ते अपवाद कहियें इहां सेवा

मध्ये जे आत्मसाधन थयु, ते उत्कृष्ट अने ते आत्मसाधन निपजाववा ने जे कारण अविलंब्या जोइए, ते सर्व अपवादें जाणवु तेमा अरिहंत नी सेवना ते आत्मसाधननु कारण छे, तेथी ए अपवाद सेवना छे, ते सात नयें करी सात भेदें छे, ते सात नयनु संक्षेपें स्वरूप बतावे छे.

१ अनेके गमा संकल्पारोपांशाश्रयाद्या यत्र स नैगम । जिहा अनेक नामादिक गमा मार्गवाचे तथा संकल्पे,आरोपे, अने अंशे पण वस्तुने माने, ते नैगमनय कहियें.

२ संगृह्णाति वस्तुसत्तात्मक सामान्यं स संग्रह । जे सर्वने संग्रहे, सर्वनु ग्रहण करे, वस्तुनी छती सामान्यपणे ग्रहे, ते संग्रहनय कहिये

३ संग्रहगृहीतं अर्थविशेषेण विभजतीति व्यवहार । संग्रहनयें ग्रह्यु जे सामान्य, तेहने अंश अंशभेदें जुदु जुदु वेहेंचे, ते व्यवहारनय कहियें

४ ऋजु अतीतानागतवक्रत्वपरिहारेण ऋजु सरल वर्त्तमान सूत्रयती ति ऋजुसूत्र । जे ऋजु सरल वर्त्तमान अवस्थायें ग्रहे, अतीत अनागत नी वक्तव्यताने लेखे नहि, ते ऋजुसूत्रनय कहिये

५ शब्दार्थरूप तत्त्वधर्मरूपपरिणति इति शब्द । प्रकृति प्रत्ययादि क व्याकरण व्युत्पत्तिए सिद्ध थयेलो शब्द, तेहमा जे पर्यायार्थ बोले, ते प णे परिणमे, वस्तुने वस्तु माने तत्त्वार्थवृत्तौ शब्दवशादर्थप्रतिपत्तिरिति शब्दनयः शब्दानुरूप अर्थमिच्छति । ते शब्दनय कहियें

६ सम्यक् प्रकारेणार्थपर्यायवचनपर्यायता सकलभिन्न वचन भिन्ननि ष्ठार्थत्वेन तत्समुदाययुक्ते ग्राहक इति समभिरूढनय । जे वस्तुना विद्य मान पर्याय तथा जे नामना यावत् वचनपर्याय छे, ते सर्व शब्दे भिन्न छे यथा घट कुंभ इत्यादि. जे शब्दे भिन्न तेहनो अर्थ पण तद्भावरूपपणे भिन्न छे, ते सर्व वचनपर्यायरूपपरिणमती वस्तुने वस्तुपणे ग्रहे, ते सम भिरूढनय कहियें

७ सर्व अर्थपर्यायें स्वक्रियाकार्यपूर्णत्वेन एव यथार्थतया भूत एवं भूत ॥ सर्व अर्थपर्याय अनंता ते स्वधर्में संपूर्ण पोतानी क्रिया कार्यपूर्ण जे वस्तुनो धर्म छे, ते तेम संपूर्णपणे थयो, ते एवंभूत नय कहियें

ल्हा श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणें १ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजु सूत्र ए चार नयने द्रव्यार्थिकपणे द्रव्यनिक्षेपे मान्या छे,अने शब्दादिक त्रण

नयने पर्यायार्थिकरूपणे भावनिक्षेपे मान्या छे तथा सिद्धसेन दिवाकरें आदिना त्रण नयने द्रव्यार्थिकरूपणे कह्या छे, तथा ऋजुसूत्रादिक चार नयने भावपणे कह्या छे, तेनो आशय कहे छे जे, वस्तुनी अवस्था त्रण छे, १ प्रवृत्ति, २ संकल्प, ३ परिणति, ए त्रण भेद छे तेमा जे योगव्यापार संकल्प, ते चेतनाना योग सहित मनना विकल्प, तेने श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण प्रवृत्तिधर्म कहे छे तथा संकल्पधर्मने उद्देक मिश्रपणा माटे द्रव्यनिक्षेपे कहे छे, अने मात्र एक परिणति धर्मने भावनिक्षेपो कह्यो छे

अने सिद्धसेनदिवाकरे विकल्प ते चेतना माटे भावनय गवेष्यो छे, अने प्रवृत्तिनी सीम, व्यवहारनय छे, अने संकल्प ते ऋजुसूत्रनय छे, तथा एक वचनपर्यायरूप परिणति ते शब्दनय छे,अने सकल वचन पर्यायरूप परिणति ते समभिरूढनय छे,तथा वचन पर्याय अर्थ पर्याय रूप संपूर्ण ते एवंभूत नय छे, माटे ए शब्दादिक त्रण ते विशुद्धनय छे, भावधर्ममध्ये मुख्यभावने उत्तर उत्तर सूक्ष्मताना ग्राहक छे, ए रीतें नयनो अधिकार संक्षेपे कह्यो हवे ए साते नये करी अपवाद भावसेवनाना सात भेद कहे छे

१ श्रीअरिहंतरूप स्वजाति अन्यद्रव्य तेहना स्वरूपने चिंतववे जे चेतनानो अंश प्रभुना गुणने अनुयायी संकल्प पहेला केवारें न थयो हतो, ते संकल्पविषयादिकथी निवारीने प्रभुगुणे जोडयो, ए निमित्तावलंबी पणा माटे अपवाद अंतरंग परिणाम ते भावसेवना संकल्परूप एक गमे माटे नैगमनयें अपवाद भावसेवना जाणवी ए आत्मसिद्धि नीपजाववानु कारण छे

२ श्री अरिहंतदेवनी निष्पन्न असंख्यात प्रदेशे निरावरण सर्व स्वशक्तिने चिंतववे पोतानी सत्ता पण तेहवी विचारे, उभयनो तुल्यारोप करे, अने अणनिपनानो पश्चात्ताप करे, निपनानु परमात्मधर्मनु बहु मान करे, तथा भेद कहेता द्रव्यथी, क्षेत्रथी, कालथी, भावथी, श्रीप्रभुजी तथा माहरु द्रव्यभिन्न छे, अने सत्तासाधर्मे अभेद छे, एहवा सापेक्षपणे जे बहुमान युक्त सत्ता प्रगट करवानी रुचिवंत एवो विकल्प ते संग्रहनय अपवाद भाव सेवना कहियें ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ

व्यवहारे बहुमान ज्ञान निज, चरणे जिनगुण रमणा जी॥ प्रभु
गुणआलंबी परिणामे, ऋजुपद ध्यानस्मरणा जी॥ श्री० ॥ ४ ॥

३ अर्थ –पोताना क्षयोपशमभावि जे ज्ञान,दर्शन, चारित्र, वीर्य,तेमध्यें प्रतिसमयें शासन श्रीअरिहंतनी शुद्धस्वरूप संपदा, केवल ज्ञानादिक अने उपकारसंपदा जे देशनाधर्मकथन. ते शुद्धउपकारीपणुं छे. तथा चोत्रीश अतिशय. पांत्रीश वचनातिशय, आठ प्रातिहार्यरूप संपदा, तिहांज उपयोग राखे, अने केवारें श्रीप्रभुजीनी प्रभुता विसारे नहीं बहुमानमध्ये श्रीवीतराग ते सर्वथी अधिक मोटापणे सद्दहे. वीर्य ते जिनभक्तिने विषे फोरवे. तथा चरण कहेतां चारित्र ते श्रीअरिहंतना गुणने विषे रमण एकत्व तन्मयता पणुं पामीने रहे. इहां जे क्षायोपशमी आत्मगुणनी प्रवृत्ति भावनादिक ते सर्व श्रीअरिहंत अनुयायी थइ. ते माटे ए व्यवहार नयें अपवाद भावसेवना कहियें.

४ प्रभु श्रीपरमात्मा अयोगी अलेशी, तेना गुणने अवलंबीने आदरीने परिणाम जे अंतरंग आत्मद्रव्यनी क्षयोपशमी परिणति सामान्यचक्रभाव रूप. तेमध्यें तन्मयपणे जे नहीं वीसरे, एवा स्मरणपणे तदुपयोगें रहे, ते जिहां सुधी धर्मध्यानरूपे आजरी साधे, तिहां सुधी. ऋजुसूत्र नयें अपवादभावसेवना कहियें ए पण आत्मसाधनरूप उत्सर्गभावसेवा तेनुं कारणपणुं छे, तेथी ए अपवादसेवा कही ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

शब्दे शुक्ल ध्यानारोहण, समभिरूढ गुणदशमे जी ॥ वीय शुक्ल अविकल्प एकत्वें, एवंभूत ते अममे जी ॥ श्री० ॥ ५ ॥

५ अर्थ –हवे श्रीप्रभुरूप शुद्धद्रव्यने आलंबीने जे जीव भावमुनितत्त्वरुचि थइ दर्शन ज्ञान,चारित्र,ए रत्नत्रयीमयी परिणमीने जे पृथक्त्ववितर्क सप्रविचाररूप शुक्ल ध्यानपणे परिणम्यो. तेवारें ए जीव शब्द नयें भावसेवनावंत थयो, एटले ऋजुसूत्रनयमां तो प्रशस्तवेदक सहित अरिहंत गुणनी इष्टतादिक परिणामने सहकारें हतो, अने जिहां शब्दनय थयो, तिहां प्रशस्तानवनीनुं कार्य पडे नहीं साधक जे भव्यजीव, तेहना गुण ते सर्वप्रभुगुणथी एकत्व थइ स्वरूप एकत्वता पाम्या शुक्लध्याननी शुद्धताने परिणम्या तेवारें शब्दनय. अपवाद भाव सेवना कहियें इहां पण निमित्तपूर्वक भमाण छे, तेमाटे अपवादें भावसेवना करी अथवा साधनपणा माटे अपवाद करि योजाय्यो

६ जेवारें साधक जीव दशमें सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे चढ्यो शुक्लध्या

नना प्रथम पायाने अंतें आव्यो, परमनिर्मलनाव वध्यो, ते वेलाए जेटली आत्मगुणनी साधना करतां योगवीर्यनी सहायें साधकता थाय, ते सर्व अपवादें छे, अने उत्सर्गमार्गे तो योगधर्म पण आत्माने तजवा योग्य छे, ते पण तेकालें साधनारूप छे, तेमाटे इहा कारणिक ग्रह्यो, पण स्वरूपमध्यें नहि अने जेटलु कारणरूप लहियें, ते सर्व अपवाद छे, माटे दशमे गुणगणे समनिरूढनये अपवाद नावसेवना छे, ए पण साधकनां आसन छे

७ जेवारे शुक्लध्यानने बीजे पाये एकत्ववितर्क अप्रविचाररूपें चड्यो नावमुनिपणानी निर्विकल्प समाधि वध्यो, स्वरूपएकत्वे परिणम्यो, तेवारे साधनानु पूर्णपणु थयु ते माटे एवनूतनय सेवना थइ तो कोइ पूछे जे अयोगी गुणगणा सुधी साधना छे तो इहा क्षीणमोहगुणगणे सेवनानो एवनूत केम कह्यो छो? तेने उत्तर कहे छे जे अयोगी सुधी तो उत्सर्गसाधना छे, अने इहा तो अपवादसाधनानो अधिकार छे, तेथी अपवादसाधना इहा पूरी थइ वली कोइ पूछे जे अमम निर्मोह अवस्थामा शु अपवादपणु छे? तेहने उत्तर जे शुक्ल ध्याननो बीजो पायो पण हजी सेवनानु एक आत्मधर्म राखवु, ते प्रयोग छे हजी सयोगवीर्य उदेकानुगतनु सहाय छे, तथा श्रुतज्ञाननु आलंबन छे अने क्षयोपशमी श्रुत ते उत्कृष्ट उत्सर्ग मूल आत्मिक वस्तुधर्म नथी अने तेहनु आलंबन छे तिहा सुधी अपवाद छे ते माटे निर्मोही बारमे गुणस्थानके एवनूतनये अपवादें नावसेवा जाणवी ए अपवाद नाव सेवनाना सात नयें करी सात नेद कह्या ॥५॥ इति पचम०॥

उत्सर्गे समकितगुण प्रगट्यो, नैगमप्रभुता अंशे जी॥ सग्रह आतम सत्तालंबी, मुनिपद नाव प्रशंसे जी॥ श्री०॥ ६॥

अर्थ – हवे उत्सर्गमार्गे नावसेवनाना सात नयें करी सात नेद कहे छे इहा जेटलु आत्मधर्मरूप स्वकार्य नीपजे छे, ते उत्सर्गसेवा कहियें, एटले करवा योग्य जे कार्य ते उत्कृष्ट करवु, पण तेमा जेटली कणता होय, तेमाटे नयफलाववा जोइये, ते फलावी देखाडे छे

१ जेवारें आत्मानो शंकादिपांच अतिचार रहित क्षायिक आत्मिक तत्व निर्धाररूप शुद्धसमकितरूप गुण प्रगट्यो, तेवारें ए साधक आत्मानो एक अंश प्रभुतानो गुण प्रगट्यो, तेथी आत्मानु एक अंश कार्य थयु, तेमाटे नैग

मनय उत्सर्गभावसेवा थइ. इहां कोइ पूछशे जे गुण निपन्यो तेने सेवा केम कहो छो ? तेने उत्तर. जे तन्मयपणे थइ रहेवु एज सेवनानो अर्थ छे ते इहां तन्मयपणुं थयु छे, अथवा जो पण गुण तो प्रगटयो पण हजी आत्माना अनंता गुणनो साधक छे माटे अने सेवना कही छे जेटलुं उपादानकारण पणुं तेटलु उत्सर्गसाधन छे, तेमाटे एने उत्सर्गभावसेवा गवेषी छे, उक्तं च ॥ आप्तमीमांसाया ॥ उवयाए उस्सग्गो । निमित्तमववाय सुद्धदेवोत्ति ॥ ए टीकामध्यें छे, तेथी उपादाननिष्पत्ति ते उत्सर्ग सेवा जाणवी. इहां आत्माना अनंत गुण छे, तेमांथी एक समकित गुण प्रगटयो, ते आत्मानो एक अंश प्रगटयो, तेथीज ए नैगमनयें उत्सर्ग भावसेवा थइ, अने एहीज उत्सर्ग आत्मगुणप्रभुता पण प्रगटी

२ जेवारें ते भावमुनियें यद्यपि पोतानी आत्मसत्ता आवरी छे,तो पण जे छती हती तेने निर्धार करीने भासनगत करी, ते हवे स्वसत्ताजवी शुद्ध धर्म मयी थया, तेहीज आत्मसत्ताभासन रमण, एकत्वसत्तासन्मुख थको रहे, एटले ए जीव आज सुधी स्वसत्तालवी थयो हतो नहीं, ते थयो एटलु उपादान समखु, माटे संग्रहनय उत्सर्गभाव सेवा कहियें

३ जेवारें ते साधक जीव, अप्रमत्तमुनिराज अवस्था पामीने उपादान कारणता सर्वस्वरूपाजवी करी, ते अवस्था आत्मानी परिणामप्रवृत्ति ग्राहकता व्यापकता, भोक्तता, कर्तृता आदिक सर्व स्वरूपें वलगी, तेवारें अंतरंग वस्तुगत जे व्यवहार, ते वस्तुसरूपे थयो, ते व्यवहारनय उत्सर्ग भावसेवना कहियें ए मुनिपदनो जे भाव, तेहने प्रशस्ते कहेता वखाणे॥६॥

ऋजुसूत्र जे श्रेणिपदस्थे, आत्मशक्ति प्रकासे जी ॥ यथा
स्यात पद शब्दस्वरूपें, शुद्धधर्म उल्लासे जी ॥श्री०॥७॥

४ अर्थ –जे आत्मा क्षपकश्रेणिपदें रह्यो थको पोतानी आत्मिक शक्ति प्रकासें एटला प्रगट करे, तेने ऋजुसूत्रनय उत्सर्गभाव सेवना कहीयें

५ जेवारें आत्मानें यथाख्यात क्षायिकचारित्र प्रगट थयु, तेवारें जे चारित्र सहकारी आत्मशक्ति प्रगटे शुद्ध अकषायी, असंगी, निस्पृहरूप शुद्ध धर्म उल्लास पामे, चारित्र सहकारी जे वीर्यादिक ते पण जे कषायानुयायी फरता हता, ते सर्व आत्मरमणी थया, ए धर्म जेटलो उल्लास पामे, ते

सर्वसंवरनये उत्सर्गे भावसेवना जाणवी इहां सरूपरमणी असहायी थयो, ते जेटलुं अन्यअसहायीपणु नीपन्युं, तेटलुं उत्सर्गसेवन जाणवुं ॥७॥ इति

भाव सयोगी अयोगीशैलेसें, अंतिम दुग नय जाणो जी ॥ साध
ननाए निजगुण व्यक्ति, तेह सेवना वखाणो जी ॥ श्री० ॥ ८ ॥

१ अर्थ —जे वारे ए आत्माये चारे घनघातिकर्म क्षय करीने अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, ए चार मोटा अनंतक प्रगट कर्यां, ए चार गुणने साकार तथा सत्कारे जे बीजा वक्तव्य तथा अवक्तव्य अनंता सर्वगुण प्रगट थया, आत्मिक आनंदी थया, तेवारे सामनि स्तनदे उत्सर्गभावसेवा थई

२ ए वारे शैलेशीकरण करे, आत्मप्रदेशनो घन करे, अयोगीकेवलीपणु पामे, ते वारे उत्सर्गभावसेवना जाणवी. इहां कोइ पूछे के साधने शिवे कर्म रह्यां नथी ? तेने उत्तर जे मुक्त आत्मा तो सिद्ध छे, तेने तो कांइ नीपजाववुं नथी, अने अयोगीने तो सिद्धता नीपजाववी छे, माटे तेटलुं कार्य अधुरं, तेटलुं साधन करीये अने जे साधना ते सेवा छे, माटे साधनाना अंत अयोगीकेवली गुणठाणे छे, एटले साधनानो अंत अयोगी करनी छे, तथी उत्सर्गभावसाधना ते अयोगी केवली गुणठाणे कही, अने सिद्धना ... ते मुक्त आत्मा छे ए रीते साधना टेकवारी ए उत्सर्गे सेवनाना सात नय कह्या

हवे एनु सकळ स्वरूप कहे छे, ते ए साधनता करतां साधना करतां जे निजगुण केवळ ज्ञानादि आत्माना गुण तेनुं व्यक्ति करतां प्रगटपणु तेह सेवना करतां उत्सर्गसेवना, वखाणी कही कह्या, एटले जेटली साधना तेटली अपवाद ... जाणवी अने ते साधना करतां करतां जेटली जेटली नवी आत्मशक्ति ... प्रगटे ते उत्सर्ग भावसेवा जाणवी, अने शुद्ध निर्मल सिद्ध आत्मा ते साध्य छे, वली जे प्रगटरूप आत्मने ... आत्मगुणनाने कारणपणे थती सेवा, ते उत्सर्गभावसाधना जाणवी, ते उत्सर्गभावसाधना ते कार्य छे, अने निमित्तथी अपवाद ... ते कारण छे, जेह सर्व व्यवहारनानु कारण छे ए रीते सातनयार्थ कर्य कहेवा ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थ ॥

कारणभाव तेह अपवादें, कार्यरूप उत्सर्ग जी॥ आत्मभाव
ते भावद्रव्य पद, बाह्यप्रवृत्ति निसर्ग जी ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थ—इहां जेटलो कारणभाव, ते सर्व अपवादें जाणवो, अने जेटलु कार्य जे स्वगुणनिष्पत्ति, तेटलो उत्सर्ग जाणवो ए उत्सर्ग तथा अपवादनां लक्षण तथा फलावणी सर्व बृहत्कल्पनाष्यमाथी तथा तेनी टीकाथी विस्तार पणे जोइ लेजो, अने जेटलो आत्मिकभावधर्म प्रगट्यो, ते भावनिक्षेपो जाणवा अने जेटलु बाह्यप्रवर्त्तन ते द्रव्यनिक्षेपो जाणवो ए द्रव्यभावनो निसर्ग कहेतां सहज जाणवो एहवी श्रीचंद्रप्रभस्वामीनी सेवायें जे हुन्निया, ते आत्मधर्म संपूर्ण वरे ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थ ॥

कारण भाव परंपर सेवन, प्रगटे कारजभावो जी॥ कारज
सिद्ध कारणता व्यय, शुचि परिणामिक भावो जी ॥श्री०॥१०॥

अर्थ—हवे कारणभाव जे श्रीअरिहंतदेव तेहनी परंपरायें द्रव्यसेवना करता थका भावसेवा प्रगटे, अने भावसेवाथी उत्सर्गधर्म प्रगटे, अने उत्सर्गधर्म प्रगट्या,तेवारें पोतानु कार्य शुद्धस्वरूप अनुभवरूप प्रगटे, अने कार्य जे शुद्ध सिद्धतारूप ते सर्व केतां नीपजे, ते कार्य नीपने कारणता जे हती तेहनो व्यय केतां नाश थाय कम के कार्यनी कर्णतायें कारणता छे, परंतु कार्य नीपने कारणधर्म रहे नहीं, तेवारें शु रहे ? ते कहे छे जे शुचि केतां पवित्र भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रूप हेतुसद्भावरूप मल रहित जे आत्मानो पारिणामिक भाव छे,जे पणे एनु मूल लक्षण छे, सद्द्रव्य, सत्क्षेत्र, सत्काल, सद्भावरूप तेपण रहे, परमानंद, अविनाशी अवस्था वरे ॥ १० ॥ इति ॥

परमगुणी सेवन तन्मयता, निश्चय ध्याने ध्यावे जी॥ शुद्धा
तम अनुभव आस्वादि, देवचंद्र पद पावे जी॥ श्री० ॥ ११ ॥

अर्थ—ए रीतें परम केतां उत्कृष्ट गुणी जे श्रीअरिहंत शुद्धदेव तेहना सेवा अति उत्तम छे, ते पामीने तेहमांहे तन्मय थईने जे जीव निश्चय केता निर्धारे, अथवा निश्चय केतां पोताने स्वरूपध्याने एकत्वता रूपे जे ध्यावे, ते जीव, शुद्धनिष्कलंक जे आत्मा चिदानंद घन, तेहनो जे अनुभव केतां यथार्थ ज्ञान वेद्य संवेद्य पद सहित तेहने आस्वादिने देव जे निर्ग्रंथ अथवा

भवनपति प्रमुख चार निकायना, तेहमां चंद्रमा समान भाव उद्योत समता शीतलताना कारण जे अरिहंत ते रूप पदस्थानक ते प्रत्यें पामे, एटले अहो भव्यजीवो ! जो तमें पोताना आत्मसुखना इच्छक थया छो, अने शुद्धानंदने विलसो, एवी अभिलाषा जो तमने छे, तो श्रीचंद्रप्रभस्वामी शुद्धदेव, अशरणना शरण, जगदाधार, जगत्जीवना परमोपकारी, मोह तिमिरनो ध्वंस करवाने भावसूर्य जेहवा, कर्मरोगना परम वैद्य, माहा माहण, माहा गोप, माहानिर्यामक, माहासार्थवाह, सम्यक् दृष्टिजीवना प्राण, देशविरतिने तो माहामंत्रनी पर जपवा योग्य, साधु निर्ग्रंथ जेहनी आज्ञायें चाले छे, उपाध्यायना हृदयरूप सरोवरना हंस, आचार्यजीना नाथ, गणधरना साक्षात् मोक्षहेतु, अने स्याद्वादधर्मना उपदेशक, एहवा श्री अरिहंतदेव तेनी सेवा करो, एहज आधार छे, ए श्रीचंद्रप्रभनी सेवा जिहां सुधि अमारी संपूर्ण सिद्धता न थाय, तिहां सुधि असम रहेजो, एहीज सार छे ॥११॥

॥ अथ नवम श्री सुविधिनाथजिनस्तवनं ॥

थारा महेला उपर मेह झरुखे वीजली हो लाल ॥ झरुखे० ॥ ए देशी ॥

दीठो सुविधि जिणंद, समाधिरसे भर्यो हो लाल ॥ स०॥
भास्यो आत्मस्वरूप, अनादिनो वीसर्यो हो लाल ॥अ०॥
सकल विभाव उपाधि, थकी मन ओसर्यो हो लाल ॥ थ०॥
सत्तासाधन मार्ग, भणी ए संचर्यो हो लाल ॥ भ० ॥ १ ॥

अर्थ —हवे श्री सुविधिनाथ परमात्मानी स्तुति करे छे कोइक भव्य जीव अनादिकालनो मिथ्यात्व असंयम कषाययोग रूप बंधना हेतुपणे परिणम्यो, एकेंद्रिय सूक्ष्म बादर, तथा बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री, पंचेंद्रीपणे अनंता भव सुधी भवचक्रमां फरतां अनेक कुदेवनी वासनायें वासित थका कुदेवने देवबुद्धियें मानतो अथवा सुदेव जे श्रीवीतराग तेहने कर्तृत्व प्रमुख दोषें मानतो थको कोइ वारें श्रीवीतराग प्रभुनी प्रभुता दीठी नहीं, ते केवारेक भवस्थितिना परिपाक करी, काइक पुण्यना उदय श्रीसुविधिनाथ परमेश्वरनी मुद्रा दीठी, न पण अम्हारी अनंतगुण प्रभुना पणे श्रद्धान भासन गोचर थई ते श्रीअरिहंतनी प्रभुता देखीने विस्मितचित्त ते भव्यजीव श्री

वीतरागनी उपकारता पाम्यो, तेवारें ते प्रीतें हर्षथी बोले छे, जे दीठो के ता नासनपणे प्रतीत सहित सुविधिनाथ प्रभुजी दीठो, पण ते केहवो दी ठो ? जे समाधि केतां आत्मगुणनु विपरीतप्रवर्त्तन, ते उपाधि अथवा विष य कषायने अनुयायि जे प्रवर्त्तन, ते पण उपाधि, तथा जे तप शुद्ध वक्र ता परिणामादिक, सर्वविनाव ते पण उपाधि तेने निरूने सकलगुण स्वरूप परिणामी थये जे आत्मगुणनी वस्तुगतें स्थिरता ते समाधि तेहनो रस, ते णे करी नयो केता संपूर्ण एटले परमसमाधि मयी श्रीसुविधिनाथ दीठो, ते दीठाथी एक मोटो लान्न थयो, ते शु लान्न थयो ? तोके नास्यो केता जा णपणामा आव्यो, पोताना आत्मानु स्वरुप ते शुद्धचिदानंदलक्षण जाणुं, जे अनादि अतीत कालनो विसखो नूली गयो हतो, ते श्रीप्रन्नु दीठा ना स्युं, तेथी सकल केतां सर्व जे विनाव दोष आत्मिक अशुद्धतारूप जे उ पाधि तेहथकी मन केता चित्त उलखो केतां पाठो हट्यो, जे ए विनाव प रिणति हु नहीं, तथा विनाव परिणतिनो हु कर्त्ता पण नहीं, ए मुने कर वु नोगववु परिणमवु घटे पण नहीं, ते जेटली क्षयोपशमी आत्मपरिण ति ते सर्व राग द्वेष असयमथी निवृत्तवा लागी, अने सत्ता केतां जे अनं तगुणरूप आत्मानी सत्ता तेहना साधननी रीत केता चाल (मार्ग) ते स म्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यग्चारित्ररूप जे आत्मिक कार्य, ते मार्ग न णी ए नव्यजीव परिणम्या, एटले जेथीआत्मसत्ता प्रगट थाय, ते मार्गन णी ए आत्मा सचखो केतां प्रवर्त्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

तुम प्रभु जाणंग रीति, सर्व जग देखता हो लाल ॥स०॥
निजसत्ताये शुद्ध, सहुने लेखता हो लाल ॥ स० ॥ पर
परिणति अद्वेष, पणे उवेखता हो लाल ॥ प० ॥ नोग्य
पणे निजशक्ति, अनंत गवेखता हो लाल ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थ –वली हे प्रभुजी ! तुमें जगत्षड्द्रात्मक तेने केवल ज्ञान, तथा के वलदर्शने करी देखो छो, पण जाणग रीतें एटले राग द्वेष रहित जे एक आत्मानो जाणग गुण छे, तेथी सर्वनाव जाणो छो, परंतु तेमां शुन्नपरिणा मी वस्तुना ग्राहक नथी, अने अशुन्नपरिणामी वस्तुना द्वेषी नथी, यथा र्थ रीतें जगत्ना जाण छो, कर्त्तापणु नोक्तापणु ग्राहकपणु स्वामिपणु एट

ला वाना टालीने अहंबुद्धि रहित सर्वभावना जाणग छो, वली हे प्रभुजी! तुमे केहवा छो? जे सर्वद्रव्यने पोताना सत्ताधर्मे शुद्ध, निर्दोष, निःसंग देखो छो, एटले पंचास्तिकायमा त्रण अस्तिकाय तो परसंग विना छे, अने पुद्गलनु संयोगीपणु ते भेदसंघातधर्म छे, पण कर्त्तापणे नथी, जाते स्वसत्ताने लोपतो नथी, अने जीवने यद्यपि अनादि विभाव छे, परंतु सत्तारूपे मूलधर्मेज छे, ते प्रभुजी! तुमे जीवपणु मूलसत्तायेज देखवो छो, तेमां परपरिणति भावअशुद्धता, ज्ञानावरणादि कर्म, कामक्रोधादिक सर्वने अद्वेषपणे आत्मधर्मथी भिन्न माटे उवेखो छो, तेनो आदर करता नथी द्वेषी पण जे तजे, तेने त्याग कहिये, ए समता माटे त्याग वर्णव्यो छे, केम के द्वेषीपणु तो परपरिणति छे वली हे प्रभु! तुमे भोगपणे पोतानो भोग भोगवो छो, निजशक्ति जे अनंतगुणपर्याय रूप, परमचैतन्यरूप, परमानंदरूप, सहजसुखरूप, एवी जे अनंती तत्त्वविलासता तेने भोग्यपणे गणो छो, स्वधर्मनेज भोग्य जाणो छो, माटे हे सुविधि परमेश्वर! तमे परमात्मतारूप परम धर्मना भोगी छो जी॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

दानादिक निज भाव, हता जे परवशा हो लाल ॥ ह० ॥
ते निजसन्मुख भाव, ग्रही लही तुझ दशा हो लाल ॥ग्र०॥
प्रभुनो अद्भुत योग, सरूप तणी रसा हो लाल ॥स०॥ वा
से भासे तास, जास गुण तुझ जिसा हो लाल ॥जा० ॥३॥

अर्थ – दानादिक आत्मधर्म जे क्षयोपशमी छे, ते सर्व परानुयायी छे, पुद्गलानुयायी छे, ते अनादि परवश थई रह्या छे, ते सर्व, हे प्रभु! ताहरी शुद्ध वीतराग दशा लही केता पामीने ते क्षयोपशमीभाव सर्व आत्मसत्ताने सन्मुख पणे ग्रहे, आत्मावलंबनी थाय, एटले अरिहंतावलंबनी थया पछी एहीज सर्वगुण ते स्वरूपावलंबनी थाय, गुणावलंबनी थाय अने हे प्रभुजी! ताहरी योग केता रत्नत्रयीना सरूपनी रसा केता भूमिका ते अद्भुत छे निर्विकार, निःसहाय, निःप्रपंच, निर्मल, निरंतर, सकलभावनो धर्म जाणपणु ते ज्ञान अने यथार्थ सर्वसापेक्ष अदूषित पणे सकल पदार्थने निर्धार करतो ते दर्शन तथा नीराग, निश्चल, निरामय, तत्त्वैक थिरतापरिणाम रूप ते चारित्र धर्म, ए रत्नत्रयी ते अनंत सद्भाव अनंत

पर्याय उत्पाद, व्यय, ध्रुव भेदाभेद, अस्ति नास्तिरूप स्वरूपने लीने वर्ते
छे, एहवी रत्नत्रयी, हे परमेश्वर ! ताहारे विषे परिणमी छे,तेहनी प्रतीत ते
वासना तथा उळखाण ते भासन ते तेहने थाय, जेहने तुझ केता तुमा
रा जेवा गुण प्रगट्या होय, एटले हे नाथ ! हे सर्वज्ञ ! हे त्रैलोक्यदीपक !
ताहरी रत्नत्रयी ते तुझ समान गुणी होय, तेहनाज भासनमां आवे ॥ ३ ॥

मोहादिकनी घूमि, अनादिनी उतरे हो लाल ॥ अ० ॥ अ
मल अखंड अलिप्त, स्वभावज सांभरे हो लाल ॥स्व० ॥
तत्त्वरमण शुचि ध्यान भणी जे आदरे हो लाल ॥ भ० ॥
ते समतारस धाम, स्वामिमुद्रा वरे हो लाल ॥ स्वा० ॥४॥

अर्थ – हे प्रभु ! ताहरी मुद्रा ते परम समतानु धाम छे, एवी बीजा
कोइनी न होय केम के एहवी सकल परभाव रहित परिणति, तो जेणें
एम कखु होय, तेनेज निपजे, पण जे मोहें मुज्या परिणाम, तेहनी घूमि
जे स्वरूप अग्राहकता, परभावग्राहकता, परभावरमणतारूप विभावता ते
अनादि कालनी आत्माने विषे छे,

इहां प्रश्न जे ए विभावता अनादिनी छे, ते आत्मानो स्वपरिणाम छे
किंवा परपरिणाम छे ? जो स्वपरिणाम छे,तो विभाव शा वास्ते कहो छो ? अने
जो परपरिणाम छे तो अनादि केम कहियें ? तेहने उत्तर जे आदि केतां
पहेलो जीव अने पछी कर्म कहियें तो पेहला सिद्ध पछी कर्म लागे, अथवा
पहेला कर्म अने पछी जीव, एम कहिये तो कर्त्ता विना कर्म केम संभवे ?
... पछ उपजे, ते माटे अनादि सहजातसंयोग छे तिहां कोइ पूछे जे उभय
...योग एकठा कह्या, तो कारण कार्यनो संबंध केम रहे ? तेहने उत्तर जे उ
...दान धर्में एक समयमां एकठीज कार्यकारणता छे, जेम सम्यग्दर्शन, स
...ग्ज्ञानने छे, तेनी परें इहां पण श्री विशेषावश्यकथी जाणवु,
...यडुक्त ॥ गाथा ॥ नय कम्मस्स य पुव्व, कत्तुरभावे समुब्भवो जुत्तो ॥
...कारणउ साविय, तह जुगवमुप्पत्ति भावे य ॥ १ ॥ इत्यादि गाथाथी जा
... काइ पूछशे जे अनादिनो मळेलो तेनो वियोग केम थाय ? तेहने
...वे ॥ गाथा ॥ जह चेह कंचणोवल, संयोगो णाइ संतय गउवि ॥ वुच्छ
...ावाय, तह जोगा जीव कम्माण ॥१॥ इति पूज्यवाक्यात् एटले ए वि

नावपरिणाम यद्यपि अनादिनो छे, पण प्रकृतिक छे, स्वरूप नथी, माटे एनो वियोग ते कीधो थाय तेवारें कोइ कहेशे जे ए विनावनुं कर्त्तापणुं केम छे? तेने केहे छे जे आत्मा स्वरूपकर्त्ता तेहने स्वरूपआवर्णें परनावसयोगे परकर्त्तापणु थयु छे, ते विनावमोहनी घूमि उतरे, मिथ्यात्व नी नूल टले, तेवारे अमल केता राग द्वेष रहित अखम केता केवारें स माय नहीं, अलिप्त केता परसगना लेपरहित एहवो पोतानो सहजस्वनाव सानरे, नासन गोचरमा आवे, यद्यपि कर्मलेपाणो छे, तो पण स्वनावे अलिप्त छे, निरामय छे, कर्मसबध छे पण कर्मथी न्यारो छे, नि सग छे, एहवो आत्मा जेवारे उलखाणमा आवे, पछी तेहज साधक आत्मा पोतानु तत्त्व जे शुद्धनिश्चयनयथी वस्तुस्वनाव तेहमा रमे, अनादि पौद्गलिक अशुद्धवर्णादिरमण तजिने, पोताना ज्ञानादि अनतगुणमा रमे, एहज तत्त्व चारित्रता प्रगटे, पछी शुचि केता पवित्र निर्मल ध्यान ते प्रथम अरिहतादिक गुणीना गुण स्वरूपमा तन्मयता रूप धर्मध्यान ध्यायीने पोताना अनता पर्यायनी परिणति प्राग्नाव अनुनवैकत्व सत्तागत तिरोनावीनु नासन एकत्व शुक्लध्यान नणी जे पुरुष आदरे, केता अगीकार करे, ते पुरुष सर्व विनाव क्षय करीने परम समतारसना धाम एहवा स्वामी श्री जिनेंद्र देव, तेहनी मुद्रा पामे, एटले वीतरागावस्था पामे, निर्मल पूर्णानदी थाय॥४॥

प्रनु गो त्रिनुवन नाथ, दास हु ताहरो हो लाल॥ दास०॥
करुणानिधि अनिलाप, अछे मुज ए खरो हो लाल॥अ०॥
आतमवस्तु स्वनाव, सदा मुज सानरो हो लाल॥स०॥
नासन वासन एह, चरण ध्याने धरो हो लाल॥च०॥ ५॥

अर्थ – हवे प्रनुथी विनति करी पोतानो मनोरथ कहे छे, हे प्रनु! तमें त्रिनुवनना नाथ गो, सम्यग्दर्शनादि गुण पमाडवाना तथा रखवालवाना परम कारण गो, अने हु तमारो दास छु, इहा श्री वीतरागनु दासपणु तो समकेती, देशविरति, तथा सर्वविरतिने विषे छे, पण इहा तो नइकपणानु उपचार वचन छे, माटे हे करुणानिधि! हे करुणाना समुद्र! मुजने ए खरो अनिलाप छे, ते कहु छु, जे माहरो आत्मानो वस्तुस्वनाव "सेण दीहेण हस्सेण वट्टेण तंसेण चउरसेण परिमंडलेण किण्हेण नी

सेण लोहीएण हालिद्देण सुक्लिलेण सुरहिण दुरहिण तित्तेण कडुएण कसाएण अंबिलेण महुरेण कक्खडेण मउएण गुरुएण लहुएण सीएण उण्हेण णिद्धेण लुक्खेण काऊण रूहेण संगेण इत्थीण पुरिसेण अन्नहापरिएसए उवमाणविघती अरूवी सत्ता अपयस्स पयं नत्थी सेण सद्देण रूवेण गंधेण फासेण इति आचारांगोक्त " तथा शुद्धस्वसत्ता सरूपी, अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अनंत स्वरूपकर्त्ता, स्वरूप नोक्ता, स्वरूपपरिणामी, असंख्यप्रदेशी, प्रतिप्रदेशें अनंतपर्यायथी नित्यानित्यादि अनंतस्वनावी. एकीयकारक चक्रपरिणामीरूप माहारो स्वनाव, ते सदा निरंतर मने सांजरो, नासनमां रहो, वासना, प्रतीत, नासन, ज्ञान, चरण, तेमांहे रमणध्यान तेहज स्वनावमां तन्मयता थरो ए मनोरथ सदा माहारो वे, साधकनावें साध्य करीने सिद्धावस्थायें सिद्धरीतें सदा रहेजो ए अनिलाप वे ॥ ५ ॥ इति ॥

प्रजुमुद्राने योग, प्रजु प्रनुता लखे हो लाल ॥ प्र० ॥
द्रव्यतणे साधर्म्य, स्वसंपत्ति उंलखे हो लाल ॥ स्व० ॥
उंलखता बहु मान, सहित रुचि पण वधे हो लाल ॥ म० ॥
रुचि अनुयायी वीर्य, चरण धारा सधे हो लाल ॥ च० ॥ ६ ॥

अर्थ —इहां कोइ पूछे जे तुं ताहरा आत्मधर्मनो रुचिवंत थयो, तेवारें प्रनुजीनुं शुं काम वे ? तेने उत्तर जे आत्मस्वनाव विसरी परनावरंगी थइ, ए माहारो आत्मा शरीरसंगी, ध्यानसंगी धनसंगी, कुलिंगी, तथा लिंगी पणें ममतालिंगी थइ रह्यो वे स्वसत्ता धर्म विसरी गया वे ते हवे अनंतज्ञानी, परम अमोही, प्रनुनी मुद्रा, थापनानिक्षेपरूप तेहनो योग मले, तेवारें अनंतगुण रूप, सकल ज्ञायक, शुद्धात्मरूप एवी श्रीप्रनुनी प्रनुता तेने लखे, केता उंलखे, ते उंलख्या पढी जीवद्रव्यपणाना साधर्मे केता सरखापणे जे सिद्ध थया, ते पण जीव अने हुं पण जीव माटें सत्तायें सरिखा छयें, गुणपर्याय स्वनावें तुल्य छयें तो जेवी संपदा श्री सुविधिनाथ परमेश्वरने प्रगट थई वे, तेटलीज संपदा माहरी सत्तामां पण वे, तेथी हुं पण ते परमेश्वर जेटली संपदानो धणी वुं, एम उंलख्या पढी ते संपदा उपर बहुमान आवे, तेथी ते संपदानी रुचि प्रगटे, जे एहवी संपदा माहारे केवारें नीपजशे ? अने जेनी रुचि होय, तेहनो उद्यम थाय,

तेवारें वीर्यगुणनु स्फुरण ते पण रुचिने अनुयायी छे,अने जे दिशें वीर्य स्फुरे, तेहमाज रमण थाय एटले तेहनुज नीपजवानु आचरण थाय, एटले प्रभु दीठे प्रभुनी प्रभुता भासे, ते प्रभुता पोतामा जाणे, पछी ते प्रगट करवानी रुचि उपजे,तेथी रुचिनु वीर्य तथा चारित्र जे रमण,ते पण ते दिशें सधे, तेवारें ते सिद्धता प्रगटे, तेथी जिनमुद्रानो योग ते वडु साधन छे, ए मार्ग कह्यो ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

क्षायोपशमिक गुण सर्व, थया तुझ गुणरसी हो लाल॥थ०॥
सत्ता साधन शक्ति, व्यक्तता उल्लसी हो लाल ॥ व्य० ॥
हवे संपूरण सिद्ध, तणी शी वार छे हो लाल ॥ त० ॥
देवचंद्र जिनराज, जगत आधार छे हो लाल ॥ ज० ॥ ७ ॥

अर्थ –पछी क्षायोपशमिगुण चेतना वीर्य, दानादि सर्व, जेवारें तुझकेता तारा गुणना रसी थया, तेवारे ते निष्पन्नगुण रसी चेतना थवाथी अनतगुणरूप सत्ता तेहनु साधन निपजाववानी आत्मशक्ति ढकाणी हती, ते व्यक्त केता प्रगटपणे उल्लसी केता उल्लास पामी हवे निमित्त कारण मले उपादान कारण प्रगटे, आत्मिक रुचि तात्त्विक, तत्त्वालबी थाय, तो संपूर्ण अविनाशी सिद्धता निपजता शी वार छे? एटले पुष्टकारणे नियमा कार्य निपजे, तेमाटे देवचंद्र स्तुति कर्त्ता, अथवा सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान ते जिनराज, श्रीवीतराग, ते सर्वजीवना आधार छे, एटले जिनमुद्राने आलबनें अनत जीव सिद्धि वरचा, तेथी अरिहतालबने सिद्धता निपजे, ए नियामक छे,वास्ते अरिहतस्मरण, वदन, नमन, स्तवन, ध्यान करा हे भव्य जीवो! तमने एहीज आधार छे ॥ ७ ॥ इति श्रीसुविधि जिनस्त०॥

॥ अथ दशम श्रीशीतलनाथजिन स्तवन ॥

॥ आदर जीव क्षमागुण आदर ॥ ए देशी ॥

शीतल जिनपति प्रभुता प्रभुनी,मुझथी कहीय न जाय जी॥
अनतता निर्मलता पूर्णता, ज्ञान विना न जणाय जी॥शी० १

अर्थ —हवे दशमा परमेश्वर श्रीशीतलनाथजीनी स्तवना करे छे श्री शीतलनाथनी अनंत अविनीश्वर आत्मिक प्रभुता ते प्रत्यक्ष तो केवलीने गम्य छे, अने सम्यग्दृष्टि तत्त्वरुचिने तो श्रद्धामां छे, ते कहे छे हे शीतल जिनपति ! तुमने कषाय, तृष्णा, नोकषाय, तापरहित परम वीतरागता, निरपृहता, परम परभाव अनाग्यता रूप, शीतलता प्रगटी छे अने पति केतां क्षीणमोही प्रमुखना पति तेनी प्रभुता ठकुराइ अनंत सहज संपदा ते मुज अल्पज्ञानीथी तो कही न जाय,केम जे सिद्धना अभिलाप्य,अनभिलाप्य, सर्वपर्याय निरावरण प्रगट थया छे, तेमां अनभिलाप्य पर्याय श्रीकेवलीजाणे, पण वचनें अगोचर छे, माटे कहि शके नहीं अने अभिलाप्य पर्याय अनंता छे, ते पण वचननो क्रम प्रवर्तन छे माटे, मित आउखे कहेवाय नहीं तिहां अनंता जीवद्रव्य, ते एकेका द्रव्यना प्रदेश असंख्याता छे, ते वली एकेका प्रदेशें ज्ञानादि गुण अनंता छे, ते वली एकेका गुणना पर्याय अनंता छे,तेमध्ये स्वभाव अनंता छे ॥ उक्त च ॥ जीवापुग्गल समया, दव्वपएसा य पयरा चेव ॥ थोवाणंताणंता, विसेसमहिया दुवेणंता ॥ १ ॥ इति ॥ तथा निर्मलता ते ए सर्वपर्याय निरावरण, नि:संग, नि:स्वभाव छे अने पूर्णता केतां सर्व शक्ति प्रगट भावे पूर्ण छे, ते सर्व केवलज्ञान विना जणाय नहीं ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

चरम जलधि जल मिणे अंजलि, गति जीपे अतिवाय जी ॥
सर्व आकाश उलंघे चरणें, पण प्रभुता न गणाय जी॥शी०॥२॥

अर्थ —त्यां दृष्टांत जेम चरम केतां छेल्लो जेनी सात्विक तीन रत्न, वाह्य परिधि छे एहवो जलधि केतां स्वयंभूरमण समुद्र तेहनुं सघळ जल, तेने कोइ अंजलिये मापी शके अथवा कोइ एहवो पण होय जे अत्यंत प्रलय कालना मोहोटा वायरानी गतें चाले, तथा कोई अनंता लोकालोक मली सर्व आकाश तेने चरणे केता पगे करी उलंघे एहवो तो कोइ होय नहीं, परंतु दृष्टांत मात्र दीधा छे, जे एहवा शक्तिमतथी पण निष्पन्न श्रीसिद्धपरमेश्वरनी जे प्रभुता ते क्षायोपशम शक्तिवालाथी गणी जाय नहीं, अने श्रीवीतराग सर्वज्ञनी प्रभुता संपूर्ण ज्ञानी जाणे, परंतु ते पण वचनयोगें कहि शके नहीं, तेमाटे अनंत छे॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

सर्वद्रव्य प्रदेश अनंता, तेहथी गुणपर्याय जी ॥ तास वर्ग
थी अनंत गुण प्रभु, केवल ज्ञान कहाय जी ॥ शी० ॥ ३ ॥

अर्थ – हवे ते अनंतता कहे छे सर्व जीवद्रव्य तथा अजीवद्रव्य अनंता छे, तेथी सर्वद्रव्यना प्रदेश अनंता छे, तेमां आकाश प्रदेशनी अनंतता अति मोटी छे, तेहथी वली गुणनी अनंतता घणीज मोटी छे, तेहथी वली पर्याय अनंत गुणा छे, ए अधिकार अल्प बहुलपदथी जोइ लेजो, यद्यपि पर्याय जे छे, ते मूलधर्मे गुणथी भिन्न नथी, वस्तुमां पर्याय परिपाटी छे, ते पर्यायनो समूह मली एक कार्य करे, ते प्रवृत्तिने गुण कहे छे, परंतु पर्यायनीज प्रवृत्ति छे, अने द्रव्य ते आधार छे, परंतु संज्ञा, संख्या, लक्षण, कार्यभेदे पर्यायथी गुण भिन्न छे, ते माटे गुणनी भिन्न व्याख्या उत्तराध्ययनादि सूत्रे छे ॥ उक्तं च ॥ दव्वाण य गुणाण य, पज्जवाण लक्खण ॥ लक्खणं नाणेहि दंसियं ॥ इति ॥ पुनः ॥ गुणाणमासओ दव्व, एगदव्वस्सिया गुणा ॥ लक्खणं पज्जवाण तु, उभओ निस्सिया भवे ॥ १ ॥ इत्यादिकथी भिन्न व्याख्या छे, तिहां पन्नवणासूत्रे कह्युं छे ए सेण भंते जीवाण पुग्गलाण सव्वदव्वाण सव्वपएसाण सव्वपज्जवाणय कयरे कयरे हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा सव्व थोवा जीवा पुग्गला अणंतगुणा अद्धा समया अणंतगुणा सव्वदव्वा विसेसाहिया सव्वपएसा अणंतगुणा सव्वपज्जवा अणंतगुणा ॥ इति गणधरवाक्यात् ॥ एटले श्रीप्रभुजीनो केवलज्ञानगुण तेनी अनंतता ते आवी रीतें छे के छ द्रव्यना गुण पर्याय सर्व अस्तिपणे रह्या छे, ते सर्वने जाणे, तथा तेनो परस्परनो अर्थ करतें नास्तिपणुं अनंतुं रह्युं छे, ते सर्वने पण श्रीप्रभुनो केवलज्ञानगुण जाणे, तथा ए सर्वथी अनंत गुणा वली बीजा भाव होय, तो तेने पण जाणे, एम अनंती शक्ति छे, तेम दर्शननी पण तेटलीज शक्ति छे, तेमाटे द्रव्यना प्रदेश पर्याय तेना वर्ग करियें, तेहने वली अनंतगुणो गुणाकार करियें, एम्ज हे प्रभु' हे परमात्मनो' तमारु केवलज्ञान कहेवाय छे ते श्रीनन्दीसूत्रे ॥ अनंतं नाणं केवलिस्स ॥ एम कह्युं छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

केवल दर्शन एम अनंतु, ग्रहे सामान्य स्वभाव जी ॥ स्वपर
अनंतथी चरण अनंतु, समरण संवर भाव जी ॥ शी० ॥ ४ ॥

अर्थ – एटला सर्व विशेष भाव ते सर्वसामान्य युक्त छे. ते सर्व केवलज्ञानगम्य छे, अथवा सामान्याश्रयी छे, जे विशेष ते सामान्य विना नहिं, अने सामान्य ते विशेष विना नहिं सर्वपदार्थ सामान्यविशेष रूप छे ॥ न सामन्न तउ नत्थि,विसेसो खपुप्फ ग ॥तथाच॥सम्मतौ॥ दव पज्जव वि उअं, दव विउत्ता य पज्जवा नत्थि ॥ उप्पायठिइ भंगा,हुवइ दविय लक्खण एव॥ १ ॥इति॥ तेमाटे सर्वद्रव्यने विषे सामान्य धर्म अनंता छे, ते सर्व केवल दर्शनगुणें देखे छे तेथी पण अनंत गुणा सामान्य धर्मने देखी शके एवी शक्ति छे, तेथी एटला पर्यायमयी केवल दर्शन गुण छे

उक्तं च विशेषावश्यके ॥ यावन्तोहि ज्ञेयस्य पर्याया स्तावन्तस्तद्वनात्कत्वेन ज्ञानस्याप्येष्टव्या ॥ तथा भगवत्यंगे ॥ अणंता दंसणपज्जवा इति ॥ वास्ते केवल दर्शन पण अनंतु छे, ए दर्शन, सर्व पदार्थना अस्तित्व सत्व वस्तुत्व प्रमेयत्वादि सामान्य द्रव्यास्तिकने देखे छे एम चारित्र गुण ते पण अनंतपर्यायी छे, पोताना आत्माना सर्व पर्याय ते सर्वस्व धर्म छे, तथा पोताथी भिन्न अनंता जीव द्रव्य तथा सर्व अजीव द्रव्य तेहना धर्म ते परधर्म छे, एटले सर्वस्वधर्ममां रमण, परधर्ममां अरमण,ए सर्व पर्याय चारित्रना छे, एटले स्वरूपरमण, परभावनिवृत्ति, ए चारित्रनी परिणति छे, अने अनादिनु जे पररमणीय पणु मूलथी थयु हतु, ते निवारीने स्वशक्ति चेतनावीर्यादिकनी परिणति, ते परभावथी रोकीने स्वरूप विषे गवेषी छे, ए सवरभाव ते चारित्रनी अनंतता छे ते सयमश्रेणी श्री व्यवहारभाष्ये कही छे जे सर्वजीवथी अनंत गुणा चारित्रना उपाडा विभागनी एकवर्गणा करियें, तेवी असख्याती वर्गणाय एक स्पर्द्धक थाय तेहवा असख्यात स्पर्द्धकें एक सयमस्थानक थाय ते सर्वजघन्य सयमस्थान ते वली असख्य षट्गुणरीतें असख्यषट्गुण करतां सर्वोत्कृष्ट असंख्यातमु सयमस्थान थाय ए चारित्रनी अविभागिनी अनंतता देखाडी, ते सर्व चारित्रगुण हे प्रभु! तमारो निरावरण छे, तेमाटे चारित्र अनतु छे ॥इति॥

द्रव्य क्षेत्र ने काल भाव गुण, राजनीति ए चार जी॥ त्रास
विना जड चेतन प्रभुनी, कोइ न लोपे कार जी॥ शी० ॥ ५॥

अर्थ – एम वीर्यादिक गुणनी स्वधर्मे अनंतता जाणवी, एवी अनत

स्वगुण संपदामयी हो, वली हे नाथ! हे परमेश्वर! तमें जगत्मां जीव तथा अजीव तेहना जे गुण, स्वभाव, पर्याय, ते सर्व १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ए रीतें चार परिणमनपणे छे, अने तमारा ज्ञानादिक गुण, ते पण द्रव्यादिक चार परिणमने परिणमे छे, अने सर्व स्वपररूपधर्मनुं जाणपणुं करे छे, ते पण चार प्रकारे परिछेदन करे छे ते चार प्रकार कहे छे १ समुदाय, ते द्रव्यधर्म जाणवो २ आधारता ते क्षेत्रधर्म जाणवो ३ वर्त्तना उत्पादव्ययरूपभाव, ते कालधर्म जाणवो, निश्चे विचारता तो काल द्रव्य भिन्न नथी, केम के पंचास्तिकायनी वर्त्तना ते कालधर्म छे, ए तत्त्वार्थ तथा धर्मसंग्रहणी अने विशेषावश्यकमध्ये घणी चर्चा छे अनपेक्षित द्रव्यास्तिकनये एहने द्रव्य कह्युं छे, परंतु भावें द्रव्यास्तिकपणुं एमां नथी, तेथी द्रव्यनी वर्त्तना ते काल, ४ तथा द्रव्यनो मूलधर्म ते भाव, ए रीतें सर्वपरिणमन छे, ए श्री वीतराग निष्पन्नतत्त्वी प्रभुनी राजनीति चार प्रकारनी छे, वली श्रीप्रभुनी आज्ञा सर्व द्रव्य माने छे, एटले स्तवनापदें आरोपमाटे कहे छे, जे अन्य राजानी आणा कोईक माने, कोइ न माने, पण हे प्रभु! जे रीतें तमो तमारा ज्ञानमां जाणो छो ते रीतें तमारुं ज्ञान परिणमे छे, ते रीतें सर्व द्रव्य परिणमे छे, जे रीतें तमे प्ररूपणा करो छो, तेज रीतें सर्व द्रव्यनी परिणति छे, माटे तमे कोइने कहेता नथी, तथा कोइने त्रास करता नथी, भय पमाडता नथी, परंतु ते तमारा ज्ञाननी परिणति लोपी चालता नथी, आज्ञा लोपता नथी, एहवी सहज आणा सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिने इष्ट छे, माटे नि प्रयास असंभ्रम आणा छे ॥ इति ॥ ५ ॥

शुद्धाशय थिर प्रभु उपयोगे, जे समरे तुझ नाम जी ॥ अव्याबाध अनंतुं पामे, परम अमृतसुख धाम जी ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ —हवे प्रभुसेवानुं फल कहे छे जे साधक जीव, शुद्ध निर्दूषण आशा करीने क्षुद्रादिक आठ दोषने टालिने एटले क्षुद्रादिक दोष सहित जे करे, ते कार्यनो साधक थाय नहीं, श्रीहरिभद्रसूरियें कह्युं छे ॥ श्लोक ॥ क्षुद्रो लोभरतिर्दीनो, मत्सरी भयवान् शठः ॥ अज्ञो भवाभिनंदी च, निष्फलारंभसाधकः ॥१॥ तथा दग्धादिक दोष रहित तथा विषयानुष्ठान जे इह लोक फलनी आशा, अने गरलानुष्ठान जे परभवें इंद्रियसुखनी वांछा, वली अन्यो

न्य अनुष्ठान ते साध्य शून्यतापेक्षता विना जे करवु,इत्यादि दोष टाली जिन आज्ञा प्रमाणे. विधि सहित, प्रीति, नक्ति, वचन, असगरीतें तद्हेतु तथा अमृत अनुष्ठानें तिहां तद्हेतु ते. जे एक तेहीज साधु करवाने अर्थे मोक्ष निपजाववा माटे साधन अने अमृत ते त्रिकरण योगनी एकता सर्पतहित त न्मयपणे निरामय साधन ए रीतें थिर थईने शकादि चपलता रहित श्रीप्रनु जीना सजाति स्वजातिकगुणें करी उपयोग प्रनुगुणें जोडीने जे नव्यजीव आत्मार्थी थइने श्रीशीतलनाथ परमसमतामयी प्रनुनु ध्यान करवाने तेह नु नाम समरे केता सनारे. ते जीव अनुक्रमें गुणीने आलवने आत्मोपा दानी थईने निष्कर्मा थाय, तेवारें ते अनतु आव्याबाध सुख परसग रहि त अध्यात्मिक सुख पामे ते सुख केहवु छे ? तोके परम उत्कृष्ट अमृत अविनाशी सहज ज्ञानानदादिक अनत सुखनु धाम छे ॥ उक्त च ॥ सिव मयल मरुय मणत मरकय मवावाह मप्पुणरावित्ति सिद्धगइ नामधेय वा ण सपत्ताण ॥ तथा समतिग्रथे ॥ अह सुहय सयल जगसिहर मरुव नि रुवम सहाव सिद्धिसुह ॥ अनिहण मवाबाह तिरियणसार अणुहवति ॥१॥ एहवो सुख पामे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

आणा ईश्वरता निर्नयता,निर्वांछकतारूप जी॥ नावस्वाधी
न ते अव्यय रीतें, एम अनतगुण नूप जी॥ शी० ॥ ७ ॥

अर्थ —तथा प्रनुताना लिंग आणादिक छे, ते कहे छे बीजानी आज्ञा तो स्वार्थे तथा नयथी कोइ माने, अने प्रनु श्रीअरिहतनी आज्ञा तो सहेजें कोइ इव्य लोपतु नथी, तथा जे लौकिक प्रनुताना धणी, तेतो पौद्गलिक मानोपेत सपदाना धणी छे, अने श्रीतीर्थंकर तो जगदुपकारी अनत सह ज सपदाना ईश्वर छे, तेथी ईश्वरता अद्भुत छे बीजा राजादिक तो मात्र पो ताना सेवकोथीज नय पामे नहीं, परतु परचक्र तथा मरणादि नय सहित छे अने माहारा परमेश्वर निर्मलानद कारण शुद्ध देव तो सर्वकाल सर्वन य रहित छे, स्व असंग अविनाशी सपदा परमनिर्नयतावत छे, तथा ज गत्मां इन्द्र, चन्द्र, चक्रवर्ती, ते तृष्णाने उदये इछादोषमयी छे, इछाथी सपदा अपूर्ण छे, अने श्रीवीतराग तो स्वसपदापूर्ण प्राग्नावना नोगी छे, तेथी समस्त परसपदाने अवांछे, माटे निर्वछकतामयी छे वली श्रीप्रनु प

रमात्मा तेहना जे नाव केता नावधर्म शुद्धचिदानदादिक, ते सर्वस्वाधीन छे पराधीन नथी वली ते श्रव्यय केतां श्रविनाशीपणे व्ययरहित छे ए री तें श्रनतगुण जे पूर्वें कह्या तेना राजा छे ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थ ॥

अव्याबाध सुख निर्मल ते तो, करणज्ञानें न जणाय जी॥ ते हज एहनो जाणग नोक्ता, जे तुम समगुण राय जी॥शीo॥८॥

श्रर्थ –हे प्रजुजी ! जे श्रव्याबाध श्रतींद्रिय सुख ते श्रनतु स्वनोगीप णे तमे नोगवो छो, ते श्रव्याबाध सुखनु ज्ञान केतां जाणपणु ते करण केतां इंद्रियोने श्राधीन जे मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान छे, तेणें करी जणाय नहीं तथा श्रवधि मन पर्यवज्ञान ते यद्यपि इंद्रियोने श्राधीन नथी, तो पण ते रूपीनावना जाणग छे,पण जीवस्वरूपने जाणी शके नहीं,जे माटें क्षयो पशम ज्ञानें श्रव्याबाधनु स्वरूप जाण्यु न जाय, पण जे जीव तुऊ समान गुणना राय केतां स्वामी थया, तेहज परमात्मा, ए श्रव्याबाध गुणनु स्व रूप जाणे, तथा नोगवे, बीजाने प्रगट नथी, केम के श्रात्मधर्म श्रतींद्रिय छे माटे तेहना नोगी सिद्ध नगवत छे, बीजाथी ए नोगवाय नहीं ॥८॥इति॥

एम अनत दानादिक निजगुण,वचनातीत पमूर जी॥ वासन नासन नावें डुर्लन, प्रापति तो अति दूर जी॥ शीo ॥ ए॥

श्रर्थ – एम श्रनता दानादिक केतां दान, लान, नोग, उपनोग, वी र्य, सिद्धत्व प्रमुखगुण, हे प्रजुजी ! ताहरे प्रगट छे, ते वचनने गम्य नथी, पंडूर केतां मोहोटा छे, एहवा श्रात्मगुणनी वासन केतां श्रद्धा, नासन केतां जाणपणु, ते पामवु डुर्लन छे, तो प्रगटपणे एहवी सिद्धता पामवी सिद्धतानी प्राप्ति थवी तेतो घणीज वेगली छे ॥ ए ॥ इति नवम गाथार्थ ॥

सकल प्रत्यक्षपणे त्रिनुवनगुरु, जाणु तुऊ गुण ग्राम जी॥ बीजु कांईं न मागु स्वामी, एहिज छे मुज काम जी ॥ शीo ॥ १० ॥

श्रर्थ – हे त्रिनुवनगुरो ! ताहरी गुणसपदा श्रनती ते सर्व हु प्रत्यक्षप णे जाणु एहीज मागु हु,एहीज इछा छे,माहरे एहीज काम छे, जे ताहरी स पदा ते केवलीने प्रत्यक्ष छे, माटे केवल ज्ञान मागु हु परंतु हे प्रजुजी ! हु बीजु कांईं पण मागतो नथी ॥१०॥ इति दशम गाथार्थ ॥

एम अनंत प्रभुता सद्दहता, अर्चे जे प्रभु रूप जी ॥ देवचंद्र प्रभुता ते पामे, परमानंद स्वरूप जी ॥ शी० ॥ ११ ॥

अर्थ –एम अनंती प्रभुनी प्रभुता, परमात्मता, सर्वप्रदेश निरावरणता, अनंत पर्याय, निरावरणता सकलज्ञानादि गुण निरावरणता, तेने सद्दहे तो समकित गुण प्रगटे, ते प्रभुना गुणनी बहु मान सहित प्रतीत करतो जे जीव श्रीशीतलनाथना गुणने योगें प्रभुने अर्चे, ते प्रभुने अर्चवानो अधिकार श्रीरायप्पसेणी सूत्रमध्यें कह्यु छे.

॥ अहेगइया वदणवत्तियाए पूयणवत्तियाए सक्कारवत्तियाए सम्माणवत्तियाए सुध सुणिस्सामो वागरण पुछिस्सामो अहे गइया जिणभत्तिए धम्मोत्ति अहेगइया जीय मेयंति ॥ ए आलावानी टीकामां अर्थ कह्यो छे, तथा प्रभुजीनो योग न मले तो प्रभुनी स्थापना ते पण प्रभु समान छे जे श्रीअरिहंतने वांदवानु फल सूत्रे कह्यु छे ॥ हियाए सुहाए निस्सेसाए अणुगामियत्ताए ॥ अने जिनप्रतिमाने वांदवानु फल पण एहीज आलावे कह्यु छे, तथा साधुने अधिकारें माहामत पालवानु फल पण एहीज कह्यु, एम सूत्रे अनेक अधिकार कह्या छे, तेमाटे प्रभुना रूपने पूजवानो मोटो लाभ छे, कोइ द्रव्यहिंसा देखीने भय पामे, तेणें उपयोग देवो जे सूत्रें परजीवनी दयानु फल शातावेदनी कह्यो छे, अने आपणो आत्मा ज्ञानादिकगुणें जोडीयें, तो भावदया थाय ते मोक्षहेतु छे, अने भावहिंसा ते हिंसा छे, तथा द्रव्यहिंसा ते भावहिंसानु कारण छे, परतु हिंसा नहीं इहां श्रीभाष्यकारनु वचन लखे छे ॥

एवमहिंसा भावो, जीव घणति नयतजितनिद्दिर्प ॥ सझोवद्दय मजीर, न मजीर घणतितो हिंसा ॥ १ ॥ नन्वेव सति लोकस्यातीव पृथिव्यादिजीव घनत्वात् हिंसाऽभाव सयतैरपि अहिंसाव्रतमिति निर्वाहयितुमशक्यमिति माटे पांच थावर बादरनी बहुलतायें साधुने पण आहार, वदन, विनय, वैयावच्चादिक करतां, अहिंसाव्रत केम रहे ? इयां कहे छे जीवाकुले लोके अवश्यमेव जीवघात संभाव्यते जीवोभ्र भ्रम कथंहिंसको न स्यादिति ? उत्तर. न य घायउत्ति हिंसो, घायतोवि निछिय महिंसो ॥ नविरलजीवमहिंसो, न य जीव घणति तो हिंसो ॥१॥ अहणतोवि हु हिंसा, दुहत्तणउं मउं अहिमरो

य ॥ वाहिंतो नवि हिंसो, सुद्धत्तणुउं जहा विझो ॥ २ ॥ नहि घातक इ त्येतावता हिंस नवा भन्नपि निश्चयमतेन हिंस्र , नापि विरलजीवमित्येता वन्मात्रेणाहिंस्र पुन ॥ असुनो जो परिणामो.सा हिंसा सोउं बायरनिमित्त॥ कोवि अवेखि ऊनवा, ऊम्हाणे गित्तिया वक्र ॥ १ ॥ असुन परिणाम हेऊ, जीवाबाहो तितो मया हिंसा ॥ जस्स उ नसो निमित्त, सतोविन तस्स सा हिंसा ॥ २ ॥ जीव वधा अशुनपरिणाम हेतु तदा हिंसा यदि अशुनप रिणामहेतुर्न तदा हिंसा न इति ॥ सद्दादउं रइफज्जा, नविय मोहस्स नाव सुद्धाउं ॥ जह तह जीवानावो, न सुद्धमणसोविहिंसाए ॥ इति ॥

एम आगमप्रमाणें इव्यहिंसा ते कारणरूप छे, ते विषयकपायना अ र्थीने हिंसा छे, परतु जिन गुणनु बहुमान करनारने जिनपूजा कालें पु ष्पादिकनी हिंसा ते हिंसानु कारण नथी, श्रीनगवतीसूत्रे पण क्रियाने अधिकारे एमज कह्यु छे,वनस्पति हणवाना पञ्चरकाणीने पृथ्वी खोदतां थकां वनस्पति हणाय तो पञ्चरकाण नांगे नहीं, तो जिनपूजाए जिनस्वरूप अ वलंबन करता आत्मगुण निर्मल करे, गुणीने स्मरणे अनेक गुणी थया छे, तेमाटे मुनिने अनुमोदवा योग्य जिननक्ति, रायप्पसेणीसूत्रे सूर्याने ना टक कह्यु परतु गौतमादिक श्रमणगणे दीतु, ते सज्झाय जेटलो लान हतो, तो ते स्थानकें बेठा रह्या, तेथी जिननक्ति ते मोक्षसाधन छे, एम जे प्राणी जिनना रूपने अर्चे,पूजे, ते सर्वदेवमा चइमा समान श्रीअरिहत देव तेहनी प्रनुता पूर्णानंदमय सपदा पामे, एवु परमानंदनु कारण श्रीशीतल नाथ प्रनुनु सेवन छे, ते सर्वजीव करो, अने स्तुतिकर्त्ता पण देवचइ छे, तेणे पोतानु नाम पण सूचव्यु, ए शीतल प्रनु अनत गुणी छे,परतु नइक पणायें जे जे गुण जाण्या, ते ते गुणनी स्तवना करवी॥१०॥ इति शीत०॥

॥ अथ एकादश श्री श्रेयांसजिन स्तवन ॥

॥ प्राणी वाणी जिनतणी, तुमें धारो चित्त मजार रे ॥ ए देशी ॥

श्रीश्रेयांस प्रनुतणो,अति अद्भुत सहजानंद रे॥ गुण एक
विध त्रिक परिणम्यो,एम गुण अनंतनो वृंद रे ॥ मुनि च
दजिणंद अमद दिणंद परें, नित्य दीपतो सुखकंद रे ॥१॥

अर्थ – श्रीश्रेयास प्रभु परमेश्वर निष्पन्न निरावरण सस्वरूपनोगीनो अति केतां अत्यत उत्कृष्ट अद्भुत केतां आश्चर्यकारी सहजानद केतां अकृत्रिम सहज स्वनावनो आनद छे श्रीश्रेयांसप्रभुजी ते जीवद्रव्य छे, साधनरत्नत्रयी परिणमीने सिद्ध थया छे, ते सिद्धपणे असख्यात प्रदेशी छे, अनत गुणी छे, अनतपर्यायी छे,ते प्रभुनो एक एक गुण ते त्रण त्रण परिणतिरूप छे, सर्वद्रव्यनु अर्थ क्रियाकारीपणु ते गुणपरिणतियी छे, तेमध्ये असाधारणपणु विशेषगुणनी मुख्यतायें छे अने साधारण गुणनी परिणति पण कर्त्ताद्रव्यनी कर्त्तानें हाथ छे, कर्त्ता करे तो प्रवर्त्ते,कर्त्ता न करे, तो न प्रवर्त्ते पाच अकर्त्ता द्रव्यनी गुणपरिणति सदा परिणमे छे, ए रीत छे, अने जीवद्रव्यनी गुणपरिणति, सिद्ध अवस्थायें सदा प्रवर्त्ते छे, पण कारक चक्रना वर्त्तनथी प्रवर्त्ते छे, तेमाटे आत्मद्रव्यना ज्ञानादिक जे गुण छे, ते त्रिविधे परिणमे छे ए रीतें त्रिविधता ते करण, कार्य, अने क्रिया, ते गुणनी तेहीज गुणमां छे. ए त्रण परिणामनो कर्त्ता ते आत्मा छे, तिहा उपादानपणे प्रकृष्ट कारण ते करण अने ते करणनु फल साध्य ते कार्य तथा ते परवारूप प्रवृत्ति ते क्रिया, कर्त्तानो व्यापार ते सिद्धअवस्थाये अभेदरूप छे, जेम ज्ञानगुण ते करण जाणवु, अने ते ज्ञानगुणथी जे ज्ञेय पदार्थोनु ज्ञान थाय ते एनु साध्य फल छे माटे ए कार्य जाणवु तथा ते कार्य जाणवाने जे ज्ञाननी स्फुरणा एटले प्रवृत्ति ते क्रिया जाणवी,ए त्रणे अभेद छे, ए त्रिविधपरिणामे परिणम्या, एवा अनंतगुणना वृंद छे, ए श्रीश्रेयांस प्रभुना सर्वगुण व्यक्तपणे स्वकार्यताने करे छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ ज कज्ज कारणाई, पयाया वत्थुणा जउ तेण ॥ अन्नेणन्नेण मया, तो कारण कज्ज नयणेक्का ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥

एम कारण कार्य क्रियानी अभेदता पण छे, तथा भेदता पण छे, कारणे अभेदता छे सत्व, प्रमेयत्वे अभेदता छे, अने सज्ञा सख्या लक्षणे भेदता छे, माटे एवी व्याख्या छे ॥ मुनिचद केतां मुनि जे त्रिकाल अविपयी तत्त्वरमणी तेमांहे चद्रमासमान अथवा मुनिचद जिणद ते जिन सामान्यकेवलीमां चद्रमा समान, वली अमद केतां देदीप्यमान दिणद केतां सूर्य तेनी परे दीपतुं छे,तेज जेनु तथा सुखकद केतां सुखनो समूह छे जेने एहवा श्री श्रेयास प्रभु तेहना सर्व गुणव्यक्तपणे स्वकार्यने करे छे ॥ १ ॥

१०

हवे आतमाना अनंता गुण छे,तेमाहे मुख्यगुण ते उपयोग छे॥ सव्वाउ लद्धिउसागरोव उत्तस्स उववज्जंतो अणगारो वउत्तस्स इति॥ ते उपयोगमां प्रथम ज्ञान गुण छे. माटे प्रथम ज्ञानगुणनी त्रिविधता कहे छे ॥ इति॥

निजज्ञानें करी ज्ञेयनो, ज्ञायकज्ञातापद ईश रे॥ देखे नि
जदर्शन करी, निज दव्यसामान्य जगीश रे ॥ मु०॥ २ ॥

अर्थ –लोकालोकमां जे वर्त्तमान छे, तथा अतीतकाले हतु, अने आगमिककाले थाशे, ते सर्व पोताना तथा परना भावप्रमेयत्वपणा माटे ते ज्ञेय छे, एटले जाणवा योग्य छे, तेहनु जाणवु ते आत्माना असंख्यात प्रदेश निष्ठित ज्ञानगुण छे, ते ज्ञान, आत्मानो स्वधर्म छे, सर्वविशेषनो जाणग छे, तेथी निज केता पोताना ज्ञानगुणे करीने जाणे एटले ज्ञान ते जाणवारूप कार्यनु कारण थयु, उपादानकारण कार्यता एक समय छे, अने ते जाणवारूप कार्यनी प्रवृत्ति, ते वीर्यने सहकारे क्रिया थाय छे, जो गुणनी प्रवृत्ति विना जाणवा रूप कार्य मानीये, तो दर्शनोपयोग कालें ज्ञानगुणनु निरावरणपणु छतु छे,पण क्रिया विना उपयोग नथी, तेमाटे कारणभूत ज्ञानें करी सर्वज्ञेयने जाणो छो, पोताना ज्ञानगुणे करी सर्वज्ञेयना ज्ञायक केता जाणनार छो, तेथी हे प्रभु ! तमे जाणगपणा माटे ज्ञातापदना ईश छो, स्वामी छो, ज्ञानमयी छो, सर्व जाण छो, तेथी ज्ञाता छो

हवे दर्शनगुणनी त्रिविधता कहे छे हे प्रभुजी ! तमें पोताना दर्शनगुणे करीने निज केता पोताना दृश्य केता देखवा योग्य जे सर्व अस्तिकायनी सामान्यता, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्वादि, नित्यत्वाऽनित्यत्वादि, सामान्यपणे जे जगीश केता संपदा एटले आत्माने विषे अनंती सत्त्व द्रव्यत्वादि सामान्यसंपदा छे, तेने दर्शनगुणें देखे, ते “दर्शनेन दृश्यभावानां दर्शन करोति आत्मा” इहां आत्मा ते देखणहारो दर्शन गुणें करणभूतें देखवा योग्य जे पदार्थ, ते सर्वने देखे छे, एटले देखवु ते कार्य, दर्शनगुण ते कारण, दर्शनगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, देखणहारो आत्मा ते कर्त्ता, ए दर्शनगुणनु त्रिविध परिणमन जाणवु ॥२॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

निजरम्यें रमण करो, प्रभु चारित्रे रमता राम रे॥ भोग्य
अनंतने भोगवो, भोगे तेणे भोक्ता स्वाम रे॥ मु० ॥३॥

अर्थ—हवे चारित्रगुणनी त्रिविध परिणति कहे छे हे प्रभुजी! हे परमेश्वर! हे परमानंद पूर्णानंदी! ताहरो अनंत आत्मधर्म ते तमने रम्य छे, रमवा योग्य छे, ते शुद्धात्मपरिणतिरूप निजरम्यविषे तमें रमण करो छो चारित्रगुणे करीने एटले चारित्र गुण करणे स्वरम्यने विषे जे रमण ते रूप कार्य अने चरणगुण प्रवृत्तिरूप क्रिया तेने करो छो, तेमाटे हे प्रभुजी! तमे रमता राम छो, पोताना स्वरूपमा रमता छो, तेथी स्वरूपरमणी स्वरूपानुभवी स्वरूपविश्रामी छोजी ॥

हवे भोगगुणनी त्रिविधता कहे छे भोग्य कहेतां भोगववा योग्य जे प्रगट आत्मस्वरूप अनंतज्ञानादि गुण, तेहने तमे भोगगुणे करी भोगवो छो, ते केम? जे भोगांतराय कर्मनो क्षय तमने प्रगट थयो, ते भोगगुण तेणें करीने तमें पोतानी भोग्ययोग्य जे अनंतात्म संपदा तेहने भोगवो छो, माटे हे स्वामी! तमे भोक्ता छो, जे बीजा जीवक्षयोपशम भोगी पुद्गलादि अशुद्ध परिणतिने भोगवे छे तेतो अशुद्धभोक्ता छे. अने तमें शुद्ध भोक्ता छो, एटले भोगगुण करणें करीने निजभोक्तापणारूप कार्यने करो छो, भोगगुणनी प्रवृत्ति, ते क्रियाने करवे करीने छे अत्ता सद्भावनाई, ते असद्भावाउ अत्तपरिणामा ॥ इति वाक्यात् ॥ माटे भोक्ता गुणना स्वामी छो ॥३॥ इति तृतीय॥

देय दान नीत दीजते, अतिदाता प्रभु स्वयमेव रे ॥ पात्र
तुमे निज शक्तिना, ग्राहक व्यापकमय देव रे ॥ मु०॥ ४ ॥

अर्थ—हवे दानगुण. जे दानांतराय कर्मना क्षयथी प्रगटयो छे माटे ते दान गुण तथा लाभगुणनी त्रिविधपरिणति कहे छे इहां दान ते सिद्धतामां स्वगुणना प्रवर्त्तनने स्वकीय क्षायिक वीर्यनी सहकारतानुं देवुं, ते दान अने सहकारतानी प्राप्ति जे गुणने थई ते लाभ. ए बेनें दान तथा लाभ गुण प्रवृत्ते छे, देय कहेता देवा योग्य जे गुण तेहने सहकार ते दान. ते दान नित्य केता सदा दीजें, तेथी हे परमेश्वर! तुमें अति दाता छो, अनंतगुणनें सहकाररूप अनंतु दान दीधो छो, स्वयमेव कहेता पाताथीज पाताने आपा छा एटले दानगुण ते करण, अने दानगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया तथा सहकाररूप दान दीधुं ते कार्य, ए सर्वनो स्वामी आत्मा ते दाता छे, आत्माने ए शुद्ध दान छे, तथा शुद्ध लाभ छे, अने जे परभावनुं

देखु तथा लेखु तेतो विभाव छे,ते आत्माने घटतो नथी, वली हे स्वामी ! तुमे निज कहेतां पोतानी शक्ति अनंतगुणपर्यायरूप तेहना पात्र केतां आधार छो, तथा ते आत्मशक्तिना ग्राहक तुमे छो, अने ए आत्मशक्तिना व्यापक तन्मयता रूप अवस्थावंत पण तमेज छो ॥४॥ इति चतुर्थ गाथार्थ

परिणामी कारज तणो, कर्त्ता गुण करणे नाथ रे ॥ अक्रिय
अक्षय स्थितिमयी, निकलंक अनंती आथ रे ॥ मु०॥५॥

अर्थ –वली हे देव ! हे परमेश्वर ! तमारा अनेक अनभिलाप्य तथा अनभिलाप्य गुण सर्व प्राग्भाव थया, तेहनी त्रण परिणति कहे छे पारिणामिक पणे जे अव्याबाधादिक अनंतु कार्य, तेहना कर्त्ता छो, गुणरूपकरणे करीने एटले गुण ते करण अने ते करणनु जे फल ते कार्य, तथा गुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, ए करण, कार्य, क्रियाना कर्त्ता हे नाथ ! तमे छो, जे तुमारु सर्व पारिणामिकपणु तेहना तुमेज कर्त्ता छो, बीजा द्रव्यमा कर्त्तापणु नथी, वली हे प्रभुजी ! तमें अक्रिय छो, क्रिया ते चलयोगी पणे छे, अने सिद्ध तो अचल छे तेथी अक्रिय छो, वली हे प्रभुजी ! तमे अक्षय स्थितिमयी छो, जे आवखानी स्थिति तेतो सयोगीभावनी छे, अने श्रीसिद्धभगवत तेतो सहजगुणी छे, तेथी अविनाशी स्थिति तुमारी छे वली निकलंक केतां सर्व कर्मकलंक रहित छो, तथा निरावरणी एवी जे अनंती आथ केतां संपदा तेना तमें धणी छो ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थ ॥

परिणामिक सत्ता तणो, आविर्भाव विलास निवास रे ॥ सहज
अकृत्रिम अपराश्रयी,निर्विकल्पने नि प्रयास रे ॥ मु० ॥ ६ ॥

अर्थ –हवे कदाचित् कोई कहेशे जे कोइ गुण अधुरो हशे ? माटे तेने पूर्णता कही देखाडे छे परिणामिकपणु ते सत्ता कहेता हती तेहनो आविर्भाव कहेता प्रगटपणु एटले प्राग्भाव ते अनंतगुणपर्याय निरावरण सकल पुद्गलसंग रहित थये संपूर्णसत्ता निरोभावी हती, ते प्रगट थइ छे, ते प्राग्भावी सत्ताना विलासना अनुभवनो हे प्रभुजी ! तू निवास केतां घर छो स्वगुणभोगी छो, स्वस्वभावना अनुभवी छो,वली हे प्रभु ! तुमें सहज केतां स्वभावनो जे मूलधर्म तेना अकृत्रिम ते पण अपराश्रयी केता परवस्तुना

आधार विना, ते वली निर्विकल्प केतां मनोचिंतना विना, ते वली नि प्रयास केतां प्रयास उद्यम विना जे आत्मधर्म, तेहनो अनुभव ते तमें भोगवो छो॥६॥

प्रभु प्रभुता संभारता, गाता करतां गुणग्राम रे ॥ सेवक साधनता वरे, निजसंवर परिणति पाम रे ॥ मु० ॥ ७ ॥

अर्थ--एहवा प्रभुनी सेवनानुं जे फल थाय, ते कहे छे प्रभु जे श्री श्रेयांसना निष्पन्नतत्त्वी, निरामयी, निरावरणी, तेहनी प्रभुता अनंतज्ञान मयी, सर्वसंवरी अनंतानंदरूप परमेश्वरता, असहायता, सर्वशक्ति निरावर णता, अनंतपर्याय स्वकीयकार्य कर्त्तापणारूप नि कर्मता, नि संगता, प्रभु त्व, विभुत्व, ग्राहकत्व, व्यापकत्व, आधारत्व, कारकत्व, कारणत्व, कार्यत्व, इत्यादि प्रभुता एक एक प्रदेशें अनंतगुण पर्याय प्रागभाव परिणमन रूप स्वरूपसंपदाने संभारता, चित्तमां स्मरण करता, तथा गाता केता, स्वरयोगें गावता गुणनो ग्राम समूह करता थकां, सेवक तत्त्वरुचि आत्मसिद्धता नो अर्थी ते निष्पन्न परमेश्वरना बहुमानथी जीव अनादिनो बाधक, स्वरू पपराङ्मुख थइ रह्यो छे, ते जीव साधनता ते आत्मस्वरूप निरावरण करवा रूप साधन अवस्था, उत्सर्ग अपवाद समकितथी मांडी अयोगी चर्म समय रूप गुणस्थानारोहण, दोषत्याग, गुणप्रागभाव अधिक गुणनी रुचि, पूर्ण तत्त्वनी ईहारूप साधनापणुं पामे, ते निज कहेता पोतानी संवरपरिणति ने पामी करीने एटले प्रभुगुणउपयोगे वर्त्ततो थको चेतना गुणीना गुणने अनुयायी थाय, तेवारें स्वरूपईहारूप दर्शनगुण परिणमे, तेथी पोतानी संवरपरिणतिने पामे, ते जीव तत्त्वताने साधे, अने साध्यरसीनी जे साध कता ते परमानंदनुं कारण छे ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थ ॥

प्रगटतत्त्वता ध्यावता, निजतत्त्वनो ध्याता थाय रे ॥ तत्त्व रमण एकाग्रता, पूरणतत्त्वें एह समाय रे ॥ मु० ॥ ८ ॥

अर्थ – तेहीज भावना कहे छे के आत्माने पोतानी जे संपदा तेता कर्म आवृत छे, ते भासनमां आवरी दुर्जन छे अने निष्पन्न परमेश्वरनी तत्त्वता तो प्रगट छे, ते श्रुतोपयोगें भासनमां आवे, तेमाटे प्रगटतत्त्वी जे श्रीअरिहंत सिद्ध, तेनी निरावरण आत्मसंपदा तेने ध्यावता थकां, जीव पो

तानी सत्तागत द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक तत्त्वतानो ध्याता थाय छे, द्रव्यत तुल्यता माटे इति ॥ एम स्वतत्त्वने ध्यावतो तत्त्वरमण तथा तत्त्वनी अनुभूति करे, तत्त्व जे सद्गुणपर्यायरूप ते मध्ये एकाग्रता तन्मयता थाय, तेवारें ए सेवक जे श्रेयांस प्रभुनो गुणावलंबी, तेहज पूर्णतत्त्वरूप तत्त्वी थई, पूर्णानंदनिरावरण स्वस्वभावनी पूर्णताने पामे, पोतानी पूर्णप्रा ग्भावी तत्त्वतामा सिद्ध बुद्ध थाय एहज मोक्षनो उपाय छे इहां भावना कहे छे, के अनादि मिथ्यात्व असंयम कषाययोगहेतुपरिणति गृहीतकर्म विपाक भाव्यमान निसत्त्वात्मशक्तिमतने अनेकांत शुद्धात्मस्वरूपनु श्रव ण करवु ते पण डुर्लभ छे, ते जीवने श्रीजिनसेवनथी, जिननु स्वरूप ळख खाय, तेथी स्वरूपरुचि उपजे पछी स्वधर्मपणा माटे रुचिवंत जीव ते धर्मे वर्त्ततो आत्मधर्म निपजावे, अनुक्रमे निर्विकल्प समाधि भजी, शु द्धात्म पूर्णता पामे एहीज मोक्षमार्ग छे ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थ ॥

प्रभु दीठे मुझ सांभरे, परमातम पूर्णानंद रे ॥ देवचंद्र जिनराजना, नित्य वंदो पय अरविंद रे ॥ मु० ॥ ९ ॥

अर्थ – ते माटे प्रभु दीठें एटले प्रभुनो स्थापनानिक्षेपो दीठे मुने सांभरे केता स्मरणमा आवे, शु स्मरणमा आवे ? तो के परमात्मा, सिद्ध, भगवान्, अचल, असंगी, अभोगी, अयोगी, तेहनो पूर्ण अनंतपर्यायी त्रिकालअविनाशी आनंद केता गुणानंदादिक ते सांभरे, अने जे प्रभु स्वरू पाश्रित चेतना करवी, तेहज पोतानी आत्मा साधवानो परम उपाय छे, तेमाटे देव जे निर्भयादिक तेमा चंद्रमासमान जे जिनराज वीतराग श्री श्रेयांस परमेश्वर, तेना पदरूप अरविंद केता कमल तेने नित्य वंदो, सदा प्रणमो, तथा स्तुतिकर्त्तानु नाम पण देवचंद्र छे, ते पोताने पण कहे छे, जे श्रीअरिहंतना चरण नित्य सेवो, अरिहंतसेवन तेहज संसार महासमु द्र मोहावर्त्त अज्ञानाधकार मिथ्यात्वकर्दममग्न जीवने निस्तार पार करवा नो पुष्ट उपाय छे, अरिहंत आलंबने अरिहंत प्रतिमाने आलंबने अनंत जीव पूर्णानंदी थया, वली जे यथार्थ ओळखाणे पुद्गलाशंसा रहितपणे श्री अरिहंतनु सेवन करशे, ते परमसुख पामशे एहज शरण त्राण आधार छे ॥ ९ ॥ इति एकादश श्रीश्रेयांसजिन स्तवन संपूर्ण ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादश श्रीवासुपूज्यजिन स्तवनं ॥

हवे प्रभुसेवन जे पूजना तेहना द्रव्यभाव भेदस्वभाववारूप बारमा प्रभु श्री वासुपूज्यजी तेनी स्तुति करीयें छैयें. तिहां निक्षेपा चार लखीयें छैये १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ भाव तिहां नामनिक्षेपानु लक्षण गाथाथी कहे छे पज्जा याणनिमेयं, जियमणछे तयच्च निविरक ॥ जा इछिय च नामं, जाव दव च पायेण ॥ १ ॥ तथा थापनालक्षण ॥ गाथा ॥ ज पुण तयच्च सुन्न, तयनि प्पाएण तारिसागार॥ कीर इव निरागार, इत्तर मियर च सा ठवणा॥२॥ द्रव्य लक्षणं॥ गाथा ॥ दवए छवएदो खवयवो, विगारो गुणाण सदावो ॥ दव भव भावस्स, भुयभाव च ज जोग ॥३॥ अथवा यच्च कारण तत् द्रव्य ॥ भूतस्य भाविनो वा, भावस्य हि कारण तु यल्लोके तत् द्रव्य, इत्यादि ॥ भावलक्षण हरिभद्रसूरयै ॥ भावो विवक्षितक्रियानुभूतियुक्तो हि विधि समाख्यात सर्व इंरिंद्रादिव छदनादिक्रियानुभवात् ॥ इति ॥

ए रीतें चार निक्षेपा छे तथा कोइक नामादि निक्षेपा उपचारें माने छे, तेहने कहियें जे भिन्न वस्तुने नामादिक करिए,ते भिन्न छे,परंतु पोता पोता नी वस्तुना नामादि चारे ते वस्तुमांज छे, तेमाटे कह्यु छे, श्रीजिनभद्रपूज्यै ॥ इह भावोच्चिय वत्थू,तयत्त सुनेहिं किच सेसेहिं ॥ नामादउ विभावा, ज तेवि हु वत्थुपज्जाया ॥ इति ॥ यदस्मात् तेपि नामादयो वस्तुन पर्याया धर्मा स्तथा ह्यप्रविष्टइइवस्तुन्युच्चरिते नामाद्योपि भावविशेषा ॥ एव वली कह्यु छे भावनिक्षेपाने अर्थे तदेव भिन्नवस्तुपु विशेषतश्चिंत्यमानानां नामा दीनां प्रधानेतरभावोदर्शित सामान्यत पुनश्चिंत्यमानानां सर्ववस्तुपु प्रत्ये क चतुर्णामप्यमीषा सद्भाव प्राप्यतएवेति दर्शयन्नाह ॥ अहवा वत्थुभिहा णं, नाम ठवणा य जो तयागारो ॥ कारणयासेदव, कज्जय वन्न तय भावो ॥ १ ॥ ए गाथायें चार निक्षेपा एक वस्तुमां कह्या, तथा वली ना मादि नयने परस्पर विवादे मिथ्यात्वीपणु पूज्ये कह्यु छे ॥ एव विवयति नया, मिछाभिनिवेसउ परोप्परउ ॥ इतिवचनात् ॥ वली पूज्यनुज वचन छे जे, नामाइत्तेयसद्दय, बुद्धिपरिणामभावउ नियय ॥ ज वत्थुअत्थिलोए, च उपज्जाय भयं सव ॥ १ ॥ इति ए रीतें नामादिक चारे निक्षेप ते वस्तुना स्वपर्याय छे,एम श्रद्धा करवी. ए निक्षेपानु स्वरूप विस्तार श्रीविशेषावश्य कमां कह्यु छे. तिहांथी ए गाथा लखी छे ॥ इति प्रशस्ति ॥

॥ पथिडो निहालुं रे बीजा जिन तणो रे ॥ ए देशी ॥

पूजना तो कीजे रे बारमा जिन तणी रे, जसु प्रगट्यो पूज्य स्वभाव॥ परकृतपूजा रे जे इछे नही रे, साधक कारज दाव ॥ पू० ॥ १॥

अर्थ – हवे बारमा श्री वासुपूज्य स्वामीनी स्तवना करे छे हे भव्य जीवो ! तमारे जो आत्माने सुखी करवानु मन छे, तो बारमा जिन वीतराग श्रीवासपूज्य पुरुषोत्तमनी पूजना कीजें, एटले सकलगुणनिरावरण, परमचारित्री, परमज्ञानी, अयोगी, अभोगी, अलेशी, असहायी, अकषायी, अरूपी, शुद्धस्वरूपी जे सिद्ध, सकलपरभाव अभोगी, पुद्गलोपचाररहित एहवो पूज्यस्वभाव जेहनो प्रगटयो छे, तेहनी पूजा कीजें, जे भक्तिना रागी नहीं, अने द्वेषी नहीं, एहवा सर्वज्ञ तेहीज पूजवा योग्य छे ॥ उक्त च आप्तमीमांसायां ॥ देवागम नभोयान, चामरादिविभूतय ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते, अत स्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥ सूक्ष्मांतरितदूराथ, प्रत्यक्षा कस्यचित् यथा ॥ अनु मे तत्त्वतोज्ञान, मिति सर्वज्ञसंसिर्त ॥ २ ॥ अइसय पाडिहेरा, सव कम्म उदयसभूआ ॥ तेण न विम्हउ मे, विम्हउ वीयरागत्ते॥ १ ॥ इत्यादि ॥

वली प्रभुनु पूज्यपणु कहे छे जे परकृत देवता मनुष्य गुणरागी थका अनेक प्रकारनी भक्ति, पूजा करे छे, परतु परमेश्वर, कोइनी पूजा इछता वांछता नथी, इछादोष रहित छे, माटे परभावना सग, तथा परकृतपूजाने वांछता नथी, ते पूज्य जाणवा अने साधक जे मोक्षना अर्थी, मार्गानुसारी, समकेती, देशविरति, सर्वेगपक्षी मुनिराज, तेहनु कार्य, जे सपूर्णसिद्धता, तेहना दाव केता उपाय छे, तेहीज निमित्त योगे अनत सिद्ध निपिना, माटे पोते पूजाना अवांछक, अने पूजे तेहने परमानद पूर्णता निपजे ॥१॥ इति

द्रव्यथी पूजा रे कारण भावनु रे, भाव प्रशस्तने शुद्ध ॥ परम इष्ट वल्लभ त्रिभुवन धणी रे, वासुपूज्य स्वयं बुद्ध ॥ पू० ॥ २॥

अर्थ –ते पूजाना वे भेद छे, एक द्रव्यपूजा, बीजी भावपूजा, तिहां न्हवण विलेपनादिक जे बाह्य उपचार, योग समारवाने करियें, ते द्रव्य पूजा जाणवी तिहा अढार पापस्थानक छे, ते सर्वे आत्माने दुखहेतु छे, ते

सर्वे पलटाववाने पूजामां प्रशस्त राग करियें,ते आत्माने तज्जातीयतजवायोग्य जे कर्म ते कर्म निर्जरवानी नीति छे,माटे जिनपूजा ते संवर छे, तेथी अवश्य करवा योग्य छे, तेमां बाह्यथी जे फूल. केसर प्रमुखनी पूजा, ते द्रव्यरूप छे, ते भावपूजा जे गुणगुणी एकत्वता रूप तेहनुं कारण छे, माटे द्रव्यनिक्षेपो ते तेहनेज कहियें, के जे भावनुं कारण होय हवे भावनिक्षेपें पूजा ते बे प्रकारनी छे प्रथमप्रशस्तभावनिक्षेपें पूजन, बीजुं शुद्धभावनिक्षेपे पूजन, ते हमां भाव ते आत्मानी परिणति, अने प्रशस्त ते गुणी ऊपर राग जाणवो ॥ उक्तं च ॥ गाथा ॥ अरिहंते सुयरागो, रागो सुसुणीसु पवयणेसु य ॥ ए सुप सत्थो रागो,इति वचनात् ॥ तथा चउसरणपयन्नामां कह्युं छे ॥ सुकयाण रा य समुप्पन्न, पुन्न पुजयं कुरु कराजो ॥ इति वचनात् ॥ हवे प्रशस्तनुं स्वरूप लिखे छे तेमां जे विषय परिग्रह उपर राग छे, तेथी तो कर्मबंध उपजे, अने अनुकंपा ते शातावेदनीनी हेतु छे, तेतो सर्वनिर्गुणी जीव उपर पण छे, तथा गुणी उपर अनुकंपा करवी,ते निंदामां रहेवा योग्य छे ॥ उक्तं च आवश्यके ॥ सुहिएसु अ दुहिएसु अ, जा मे असंजएसु अणुकंपा ॥ रागेण व दोसेण व, तं निंदे तं च गरिहामि ॥ १ ॥ इति वाक्यात् ॥ तथा जे अरिहंतादि पंच परमेष्ठी अने आगम, साधर्मिक उपर पक्षपात विना गुणीर णा माटे जे राग, ते प्रशस्त राग जाणवो ते यद्यपि पुण्यबंधनो हेतु छे, त थापि छता आत्मगुणने स्थिर थवानो तथा नवा प्रगट करवानो हेतु छे गुणानुबंधी पुण्यनो हेतु छे, ए श्री हरिभद्र पूज्ये पंच वस्तुग्रंथमां कह्युं छे॥ गाथा ॥ नाणाइ गुणरुइ खलु,तारसीय गुणसपयं सपत्तो ॥ धन्नो गुणसपत्तो पसछराग तिहि कुणई ॥ १ ॥ गुणरुइ मूल एयं, तेण गुणवुड्ढिहेवंध न णियं ॥ जह इलाइपुत्तो, पसछरागेण गुणपत्तो ॥ २ ॥ इति वचनात् ॥ इ, हां कोइ पूछे जे, श्री गौतमस्वामीने त्रिभुवन दयाल, त्रिशलानंदन, श्रीवीर परमात्मा उपर राग हतो, ते केवलज्ञाननेरोधक केम थयो? तेहने उ त्तर कहे छे जे श्रीगौतमनो प्रशस्त राग, क्षयोपशम रत्नत्रयीनो तो दीपक हतो, पण श्रीवीर विद्यमान छतां, रागनी मंदता थइ नहीं, केम के छते का रणें राग टलवो दुःकर छे, पण जेवारें कारण मट्युं तेथी रागनी अवस्था अटकी, तेवार श्रेणी थई, तेम प्रशस्त राग सर्वे जीवोने क्षयोपशमी रत्न त्रयीनो विरोधी नथी, क्षायकतानी ईहायुक, क्षायकताने नजीक करे, पर

तु क्षायकरत्नत्रयी थवा दीये नहीं ॥ उक्तं च श्रीसंविज्ञमुख्यैः श्रीजिनेश्वर सूरिपूज्यैः सवेगरंगसालायां ॥ सिद्धे रत्तो तग्गुण, ईहाए लभए गुणे सव्वे ॥ नेण अरिहंताई, सुगुण सुराग समाहिउं ॥ १ ॥ ते माटे प्रशस्त भावपू जा ते पण साधकतामां छे हवे शुद्धभावपूजा ते, जे आत्मानुं सामान्य चक्र, विशेषचक्र, क्षयोपशमी चेतनावीर्य, ते सर्व, श्रीअरिहंतपरमात्माना क्षायकसिद्धत्वादिगुणानुयायी प्रवृत्ते, ते शुद्धभावपूजा जाणवी, एटले गुण रागी थईने गुणबहुमानी थवुं पछी स्वस्वरूपमां तन्मयथये थके स्वरूपपूर्ण ता निपजे,ए मोक्षनो मार्ग छे हवे प्रशस्त भाव पूजानुं स्वरूप कहे छे श्री अरिहंत वासुपूज्य स्वामी, स्वयं केतां पोतानी बुद्ध थया, एहवा त्रिभुवन नाथ ते परम केतां अत्यंत इष्ट केतां रलियामणा वल्लभ केता वाल्हा लागे, ते प्रशस्तरागरूप भाव पूजा जाणवी ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

अतिशय महिमा रे अति उपगारता रे, निर्मल प्रभु गुणराग ॥
सुरमणि सुरघट सुरतरु तु छते रे, जिनरागी महाभाग ॥ पू०॥३॥

अर्थ —वली प्रशस्तरागीपणुं ओलखावे छे जे श्री अरिहंतअतिशयना महिमा उपर अद्भुतता आश्चर्यता तथा आठ प्रातिहार्यनी विस्मयता इत्यादि देखीने अथवा सांभलिने जे राग उपजे, ते सर्व, प्रशस्तराग जाणवो, तथा जगतूना जीवोने माहामोहांधकार निवारवारूप धर्मदे शना देईने विस्तरी गएलो जे आत्मधर्म, तेने देखाडे सर्व संदेह टाले ए उपगार, भावआजीविकाना दातार, तत्त्वथी भूलें पडया जीवोने तत्त्व ना देखाडनार, एहवु उपकारी पणु श्रीअरिहंतनु छे, ते उपकारीपणा उप र जे इष्टता, तथा निर्मल कर्म आवरणे रहित केवल ज्ञान,केवल दर्शन, वी तरागता, असंगता, स्वरूप भोगी प्रमुख गुण उपर राग ते पण प्रशस्त राग कहियें वली सुरमणि केता चितामणि रत्न अने सुरघट केतां कामकुंभ त था सुरतरु केतां कल्पवृक्ष ते सर्व तुच्छ भासे केमके एतो इहलोकसुखना हेतु, तथा भावअशुद्धताना वधारवा वाला छे, तेहने असार जाणीने तुच्छ गणे, अने श्रीअरिहंतनो राग ते परपरायें आत्मसुखनो हेतु छे, आत्मा ना गुणनी वृद्धि करवानु पुष्ट निमित्त छे, ते माटे श्री जिनराज, परमदयाल, स्वगुणभोगी, माहागोप, परमोपकारी, माहारी, तत्त्व संपादना उपदेशक,

ते उपर जे जीवने साची उजखाणें राग प्रगटे, ते जीव माहानाग्यवान्, तथा पवित्र जाणवा, जे जीव कामराग, दृष्टिराग,स्नेह रागनी जोड टालीने, श्रीपुरुषोत्तम, परमानंदी श्रीवासुपूज्य प्रजु उपर रागी थयो, तेने धन्य ठे ते महत् जीव, मोहोटा नाग्यनो धणी जाणवो, ए सर्व प्रशस्त रागनाव पूजा कही ॥ इति तृतीयगाथार्थ ॥ ३ ॥

दर्शन ज्ञानादिकगुण आत्मना रे,प्रजु प्रजुता लयलीन ॥
शुद्ध स्वरूपी रूपें तन्मयीरे, तसु आस्वादन पीन ॥पू०॥४॥

अर्थ – हवे शुद्धनावपूजा कहे ठे तिहां जे आत्माना क्षयोपशमनावी दर्शनगुण, तथा ज्ञानादिगुण, ते सर्व प्रजुनी प्रजुताथी लयलीन थया ठे, बहुमान श्रीअरिहंतनुं ठे,नासन पण अरिहंत गुणनी अनंततानु ठे रमण श्री अरिहंत गुणनां स्वरूप नासननु ठे, अनुनव पण अरिहंत गुणना जाणननो ठे, एम जेटली आत्मशक्ति प्रगटी ठे, ते सर्वअरिहंत गुणने अनुयायी करीने,तन्मयतारुप करे,ते शुद्धनाव पूजा जाणवी ते आवीरीते – प्रजुतानो निरधारनासनजु आस्वादन, ते आनंदताये मग्न रहेवु, शुद्धस्वरुपी परमात्मा तेहनुंस्वरूप जे वस्तुधर्म, तेमध्यें तन्मयी थईने, तेना आस्वादने अनुनवें, पीन केता पुष्ट रहे,ते नावथी नक्ति जाणवी, तथा वंदन नमनादिकले योग नक्ति जाणवी तथा प्रजु उपर इष्टता ते राग नक्ति जाणवी, तथा हुं सद्गुणी मोटा माहरे अरिहंत परमेश्वर जेवो धणी ठे, हुं मोक्षना मार्गने पाम्या, अने पोताना आत्मगुणने प्रजुनी प्रजुताने अनुयायीपणे वर्तावे, एहवो लीन थको रहे, तेहने तत्त्वनक्तिवंत कहिए एहवा समकेति, देशविरति, सर्वविरति, जेणें पातानी मूलपरिणति प्रजुताथी मेलवी ठे, आत्मपरिणतिरूपवत्सगें प्रजुनी प्रजुताने रमावी रह्या ठे, माहानु नाव ठे, ते शुद्धनावपूजा जाणवी ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

शुद्धतत्त्व रस रंगी चेतना रे, पामे आत्मस्वनाव ॥ आत्मा लंबी निजगुण साधतोरे, प्रगटे पूज्यस्वनाव ॥ पू० ॥ ५ ॥

अर्थ – एम शुद्धनिर्मल तत्त्वी श्रीअरिहंतदेव सिद्ध नगवान् तेहनारसें रंगाणी थकी तेहना गुणनी नोगीनवारे चेतना थयी,अन्य विकल्प टाली

अनुभवभावना सहित प्रभुस्वरूपे रसीली थइ तेवारे ते चेतना पोताना आ
त्मस्वभावने पामे, आत्मस्वभावरुचि, आत्मस्वभावोपयोगी, आत्मस्वभाव
रमणी, आत्मानुभवी थयो, एटले उपादानावलंबी अवस्था पामे, अने जे
वारें एभव्यजीव आत्मावलंबी थाय, तेवारे पोताना गुणने साधतो नि
पजावतो, सम्यक् दर्शनादिक गुणने प्रगट करतो, गुणस्थान क्रमें वोध्रनी
हाणी गुणप्राग्भाव स्वरूपएकत्व स्वरूपानुभव थतो थको तल्लीनताने नि
पजावते पोतानो अनादिकालनो सत्तागतपूज्य स्वभावने प्रगट करे, एटले
पहेला हुं परमपूज्य अनंतगुणी छुं, ए निर्धाररूप सम्यक् दर्शन प्रगटे, स्या
द्वादसत्तानुं भासन थाये, पछी जे सत्ता प्रगटी, तेहनो रमण अनुभवरूप
चारित्रगुण प्रगटे, पछी शुक्लध्यान प्रगटे, पछी निरावरण केवलज्ञान नीपजे,
ए परमपूज्य श्रीअरिहंतने पूजवाथी पोतानो पूज्यस्वभाव प्रगटे ॥ ५ ॥

आप अकर्त्ता सेवाथी हुवे रे, सेवक पूरणसिद्धि ॥ निजधन न
दीए पण आश्रित लहे रे, अक्षय अक्षर ऋद्धि ॥ पू० ॥ ६ ॥

अर्थ —श्री वीतराग पोते परजीवना मोक्षना अकर्त्ता छे, केम जे परकर्त्ता
पणुं जीवद्रव्यनो धर्म नथी, तेमाटे पोते परजीवनी सिद्धिना अकर्त्ता छे,
पण श्रीप्रभुजीनी सेवाथी सेवक जे भक्त, तेहने हुवे केता थाय शुं थाय तो
के संपूर्ण सिद्धता निपजे निज केता पोतानो धन जे अनंत ज्ञानादिकगुण
ते प्रभु कोइ बीजाने आपता नथी, एटले कोइ पोतानो गुण बीजाने आपे
नहीं, अने ते गुण पण पोतानी द्रव्यने मूकी बीजामां वर्त्ते नहीं अने कोइ
द्रव्य कोइ द्रव्यनो गुण ग्रहे पण नहीं, सर्व द्रव्य पोतें पोतानी सत्ताना स्वामी
छे, तेमाटे अरिहंत पोते कोइ आपताज नथी परंतु जे अरिहंतनें आश्रित
सेवे, ते निश्चे अक्षय केता जेहना क्षय न थाय तथा जे विनाश नपामे,
तथा अक्षर केता खरवुं झरवुं जेहमां नथी, एवी अविनाशी अक्षर अ
नंत आत्मसंपदा पूर्णानंदादिक ऋद्धि लहे केता पामे, माटे जिनभक्ति
तेहीन सिद्धता नीपजववाना पूर्ण उपाय छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

जिनवर पूजा रे ते निजपूजना रे, प्रगटे अन्वयशक्ति ॥ पर
मानंद विलासी अनुभवे रे, देवचंद्र पद व्यक्ति ॥ पू० ॥ ७ ॥

अर्थ – जे जिनराजनी पूजा नक्ति करवी, ते पोताना आत्मानी पुज
ना करवी छे, आत्मगुण वधारवा छे, आत्मसंपदानी पुष्टि करवी छे, केम
जे जिनसेवनाथको पोताना अन्वयी गुण जे सहजज्ञानानंदादिक अनंत
शक्ति ते पोषे, वधे, प्रगटे, निरावर्ण थाय, ते जीवपरमानंदनो विलासी
थई, अनुनवे केता नोगवे, सर्वदेवमां वड्मा समान जे पद परमात्मता,
पूर्णता, निरावर्णता, निरामयता, तत्वनोगता, सरूपानंदताख्प, तेहनी
व्यक्ति केता प्रगटता जे कर्मावर्णे अनादिनी आवृत्त छे, ते सर्व कर्मक्षये
थये अक्रिय, अनवछिनता, शक्ति प्रगटे, शुद्ध थाये, तेमाटे निष्पन्न जि
ननी नक्ति ते परमात्मता रुप आत्मसिद्धतानु कारण छे, तेमाटे हे मा
क्षार्थी जीवो तमे श्रीवीतराग अरिहानोपूजना ते विधि सहित निरनिशा
दे तत्वसाध्यतायें करो, एहज उत्तमउपाय छे ॥ इति श्रीवासपूज्यजिन०॥

॥ अथ त्रयोदश श्री विमलजिन स्तवन ॥

॥ दासअरदास सीपरे करे जी ए देशी ॥

विमल जिन विमलता ताहरी जी, अवर बीजे न कहाय ॥ लघु
नदी जिम तिम लघीयें जी, स्वयंनुरमण न तराय ॥ वि० ॥ १ ॥

अर्थ –हवे श्री विमलनाथ प्रनुजीनी स्तुति कहे छे हे विमलजिन!
परमेश्वर! ताहरी विमलता केतां तमारी निर्मलता केहेवी छे? जे
[illegible]स्तद्रव्यकर्म नावकर्मपरानुजापीतादि दोष रहित पणेछे एहवी निर्म
[illegible]ता ते अवर केतां बीजा कोइ छद्मस्थ जीवने न कहाय केतां कहि
[illegible]य नहीं, तिद्धसरुपस्य अनंतत्वात् वाचकमपरिमितत्वात आयुष्या
[illegible]त्वात्, तेनवक्तुनशक्यते केन इतिनाप्यवचनात् तेमाटे कहेवाय नही ते
[illegible]पर दृष्टांत कहेछे जेम लघुनदी केतां नान्हीनदी तेने जेम तेम तरीयें,
[illegible]ओतरियें, पण असंख्याता कोडी जोजननो स्वयंनुरमण नामा स
[illegible]ते कोइ पामर जनथी तरी जाय नहीं, अने प्रनुना गुणनो स्वयंनु
[illegible]समुद्रथी पण अनंत गुणा छे,ते सर्व वचने कह्या जाय नहीं॥ १ ॥
[illegible]त पृथवी गिरि जल तरु जी, कोइ तोले एक हाथ ॥ तेह
[illegible]प्रनु गुणगण नणी जी नाखवा नहीं समरथ ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थः—तथा सयल केतां सर्व पृथ्वी, गिरि ते पर्वत, जल ते पाणी, तरुते वनस्पति, ए सर्वने कोइ एक हाथें तोले केतां उपाडे एहवो बलवत पण ते बाल वीर्यवत होय तेथी तेपण प्रजुजी ! ताहरा गुणना गण केतां समूह तेने नाखवा केता केहवाने समर्थ नहीं, कारण तेहमा बालवीर्यनी शक्ति छे, अने तमारुं निर्मल सरूप ते केवलज्ञानी क्षायकवीर्यवतने गम्य छे, तेने पण सर्ववचनें गोचर थायेज नहीं, तो बालवीर्यवतथी केम केहे वाय ! ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥ २ ॥

सर्व पुजल नन्न धर्मना जी, तेम अधर्म प्रदेश ॥ तास गुण धर्म पद्मव सहुजी, तुज गुण एक तणो लेश ॥ वि० ॥ ३ ॥

अर्थः—सर्व पुजल इव्य तथा नन्न केता आकाश इव्य, धर्म केतां ध र्मास्ति काय इव्य, तेमज अधर्मास्तिकायना प्रदेश, एटले ए पचास्तिकाय ना प्रदेश अनता तेहना गुण अनता ते गुणधर्म नित्यत्वादि ते पण अन ता तेहना पर्याय वली तेहथी अनत गुणा छे, ते सर्व मली पण हे प्रजु जी ! ताहरो एक गुण जे केवलज्ञानरूप तेहनो लेशमात्र छे, केम जे ए सर्व पंचास्तिकायना नाव वर्तमान काले छे, अने केवलीतो ए सर्वना अ तीत, अनागत, अने वर्तमान, ए त्रणे कालना पर्याय उत्पाद, व्यय, ध्रु वरूप तेहने एक समयमा जाणे, तथा एथी अनंतगुणा बीजा धर्मने पण एक समयमां जाणे, तेमाटे केवल ज्ञाननी शक्ति अनतगुणी छे ॥ उक्तं चा विशेषावश्यके ॥ ये हि केवलस्य निःशेषज्ञेयगता विषयनूता पर्यायास्ते ज्ञानाद्वैतवादिनयमतेन ज्ञानरूपत्वादर्थापत्त्यैव स्वपर्याया प्रोक्ता ननु प रपर्यायापेक्षया इत्यविशेषकेवलत्वविरोधो नाशंकनीय इति ॥ इति ॥ ३ ॥

एम निजनाव अनतनी जी, अस्तिता केटली थाय ॥ नास्तिता स्वपरपद अस्तिताजी, तुज सम काल समाय ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थः—ए रीतें जेम केवल ज्ञान गुण अनतपर्यायी छे, तेम जे केवल दर्शनादिक निजकेता पोताना नाव गुण पर्याय अनता छे, तेहनी अनत ता केटली थायछे जे स्वइव्य खेत्र काल नाव रूप अस्तिपणु ते अनतु छे, तेम परपर्याय जे बीजा जीवइव्य तथा पुजलादि अजीव इव्य तेहना प्र

देश तेहना स्वभाव तेहना गुण पर्यायनी जे अनंतता ते सर्वनु नास्तिपणु तमारामां छे, ते पण अनंतु छे. ते तस्ससपज्जाया, सेसा परपज्जवा सव्वे ॥ इतिश्री पूज्यपादा तथा च हेम सूरि ये यस्य समवेता स्ते तस्य स्व पर्याया प्रोच्यते. अस्तित्वेन सम्बध्यास्ते च अनंता येच घटादिगता भाव्य पर्यायास्तेभ्यो व्यावृतित्वेन नास्तित्वे सत्वबद्धा इति ॥ ए नास्तिपर्याय ते पण द्रव्यनिष्ठित छे. तेषामपि व्यावृत्तिरूपतया परमार्थिक स्वपर्यायत्वेन विरुद्धपते एटले नास्तिपणु ते पण वस्तुना पर्याय छे, एम नास्तितानी प ण अनंतता छे, ते स्वपदें केतां पोताने पदें ज्ञानगुणना अमूर्तत्व, चेतन त्व, सर्ववेतृत्वाप्रतिपातित्व निरावर्णत्वादय केवल ज्ञानस्यत्वपर्याय एम के वल ज्ञानना स्वपर्यायें अस्तिरूप अनंता छे, हवे केवल दर्शनादि अनंत गु णना जे पर्याय छे, ते सर्व केवलज्ञानमां नास्तिपणे रह्या छे, ते जेम केव ल ज्ञान अस्तिनास्तिपणे छे, तेमज केवल दर्शन तथा चारित्र सुख, अरू पता, अगुरुलघुता, परमदानादि अनंतगुण, ते सर्व पोतानी जाति एक जीवद्रव्य मिश्रित अनंतगुणनी नास्तिताने जीधायका रह्या छे, तेमज बी जा जीवद्रव्य तथा पुद्गलादिक अजीवद्रव्य, ते सर्वना गुणपर्यायनी पण ना स्तिताने जीधायका रह्या छे, एम स्वपदें नास्तिता तथा परपदेपण नास्तिता छे, ते सर्वनास्तितापणु ते द्रव्यमांहेज अस्तितापणे रह्यो छे, नास्तिधर्मनी अस्तिता ते द्रव्यमांज छे, तिहां भावना कहेछे जे जीवने विषे ज्ञानादिक गुणनी अस्तिता तेम वर्णादिकनी नास्तिता छे, ते वर्णादिकपणुं जीवमां नथी पण तेनी नास्तिता जीवमां रही छे, एम तत्त्वार्थमां कह्यु छे ॥ "यदि परनास्तित्वाजीवादिषु न स्यात् तदा जीवादीनां परत्वपरिणति स्यात् इति" माटे जीवमां अस्तिपणु तथा नास्तिपणु ते बेहु अस्तिपणे रह्या छे, उक्त च विशेषावश्यके

"द्विविध हि वस्तुन स्वरूप अस्तित्व च नास्तित्व च तत्रो ये यत्रास्ति त्वेन प्रतिबद्धा स्ते तस्य स्वपर्याया येतु नास्तित्वेन सम्बध्यास्ते तस्य परप र्याया प्रतिपाद्यते इति निमित्तभेदख्यापनपरावेव स्वपरशब्दौ नत्वेकत्रां तत्र सर्वथा सम्बंधनिराकरणपरौ यतो अस्तित्वेन सम्बद्धा इति परपर्याया उच्यंते न पुन सर्वथा ते तत्र न संबद्धा नास्तित्वेन तत्र सबद्धा इति वचनात् "

तेमाटे नास्तिपणानो वस्तुथी सबंध छे, ते स्वपद केतां स्वद्रव्यना

गुणांतरनी विवक्षितगुणमां नास्तिता तथा परपद केतां परद्रव्यना गुणनी नास्तिता ए नास्तिता सर्व वस्तुधर्म पारिणामिक भावे रही छे, ते सर्वनि रावर्णपणे हे श्रीविमल प्रभु ! तमारी परिणामिकतामध्ये तथा कर्तृताम ध्ये भोक्तृतामध्ये समकाले केतां प्रतिसमये समाये छे, एटली अनंतता तमारे विषे छे, हे प्रभुजी तमारी निर्मलता ते समकेति जीवने श्रद्धागोचर छे, तथा पूर्वधरने परोक्षभासन गोचर छे, अने केवलीने प्रत्यक्ष छे, ए रीतें अनिलाप्य तथा अननिलाप्यनी अनंतता छे, ते बीजा कोइथी कहा य नहीं, माटे हे नाथ तादृरू ज्ञान, दर्शन, सुखधर्मनी अनंतता ते जे भ व्यजीवने स्याद्वादोपेत भासन प्रतीत गोचर थइ, ते जीवने पण धन्य छे, तो हे प्रभुजी ! तमारी शीवात कहु तमे तो माहापूज्य छो, मोहोटा छो॥४

तादृश शुद्धस्वभावने जी, आदरे धरी बहुमान ॥ तेहने तेहिज नीपजे जी, ए कोई अद्भुत तान ॥ विο ॥ ५ ॥

अर्थ—हे प्रभुजी तादृशे जे शुद्धनिर्दोष स्वभाव, अनंतानदादि रूप अक्रिय, अक्षय, तेहने जे आदरे केतां अंगीकार करे, वंदन, सेवन, स्मर रण, ध्यानादिकपणे आदरे, वली बहुमान केतां अत्यादरपणे जे ग्रहे, ते साध्यार्थी सेवकनो तेहवोज पोतानो स्वभाव शुद्ध थाय, नि कर्मता नीपजे प्रभुना जेहवो स्वभाव निर्मल थाय, माटे हे प्रभो ! ए कोई अद्भुततान के केतां तंतछे जे अरिहंत प्रभुनु शुद्धस्वरूप चितवतां ध्यान करतां, पोताद्ध स्वरूप नीपजे, एहिज आश्चर्य छे ॥ ५ ॥ इति पचम गाथार्थ ॥

तुम प्रभु तुम तारक विभू जी, तुम समो अवर न कोय॥ तुम दरिसणथकी हुं तर्योजी, शुद्ध आलंबन होय ॥ विο ॥ ६ ॥

अर्थ – माटे हे श्रीविमलनाथ! माहरा प्रभु अधिपति तुमेज छो, वलीमुजने ससारमाथी तारवा वाला परमनिर्यामक परमसामर्थवंत तुमे छो, हेदेव ! हे नाथ ! हे कृपासिधु ! हे ज्ञानभानु तुमसमान माहरे बीजो कोई नथी त्रिभुवनमांहे तमेज दयाल छो, हे जगत्वत्सल ताहरो दर्शन केतां देखवु अथवा दर्शन ते समकित तेने पामे थके हु तर्यो, ससार समुद्रने उलगी पार थयो ईहां कारण पामे थके भक्तिना रूपे उपचार

वचन कह्यु, एम शुद्धनिर्मल स्वरूपनो आलंबी थयो थको हे नाथ! ता हरा स्वरूपने अवलंबें, में माहारु स्वरूप उलख्युं, ते उलखवाथी स्वरूप रुचिरूपनी, पठी स्वरूपविश्रामी अनुनवध्यानी थये तथो ए जावी कार्य नो वर्त्तमानरोप नैगमनयनु वचन ठे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

प्रनुतणीविमलता उलखी जी, जे करे थिरमन सेव ॥ देव
चंद्र पद ते लहे जी, विमल आनंद स्वयमेव ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थ – ए रीतें प्रजुजीनी विमलता केता निर्मलता तेने उलखीने जे प्राणी थिरमन केतां दृढमने सेवा जक्ति करे, ते समकेति, देशविरति सर्व विरति जीव, सर्वदेवमां चंद्रमा समान पद परमात्मपद लहे केता पामे अनादि संततिरूपी जावकर्म उपाधीने क्षय करीने, निर्मल सिद्ध बुद्ध आत्मतत्त्वनी पूर्णता ते पामे, इहां स्तुतिकर्त्तानु नाम पण देवचंद्र ठे, तें सूचव्यु ए पद कहेवु ठे जे मध्ये विमल केता निर्मल आनंद ते स्वय मेव केतां पोतेज ठे. ते पोतानो आनद पोते जोगवे एहवा अनंत धर्म प्राग्जाव रूप श्रीविमलनाथनी सेवना करो, मोक्षार्थी जीवने श्रीअरिहंत सेवना तेहिज मोक्षकारण ठे, अनादिनी ज्ञाति टालवानु पुष्टनिमित्त ठे, ॥ ७ ॥ इति त्रयोदशम श्री विमल जिन स्तवन संपूर्ण ॥

॥ अथ चतुर्दश श्री अनंत जिन स्तवनं ॥

॥ धीरोडा प्रभु दीठो जग गुरु तुज ॥ ए देशी ॥

मूरति हो प्रजु मूरति अनंत जिणंद, ताहरी हो प्रजु ता
हरी मुऊ नयणे वसी जी ॥ समता हो प्रजु समता रस
नो कंद, सहेजे हो प्रजु सहेजे अनुनव रस लसी जी ॥ १ ॥

अर्थ – हवे चौदमां प्रजु श्री अनंतनाथजीनी स्तवना करे ठे हे अ नंतनाथजिणंद ताहरी केतां तुमारी मूरति केता मुद्रा एटले आकार ते माहारा नयणे केतां नेत्रने विषे वसी ठे? ते मुद्रा कहेवी ठे तो के समता जे राग द्वेष रहितपणु ते रूप जे रस तेनो कंद ठे वली सहजे प्रयास विना अनुनव स्वजोगीपणु तेहना रसथी लीन ठे तन्मय ठे ॥ १ ॥

गुण अनत हो प्रभु गुण अनंतनो वृंद ॥ नाथ हो प्रभु नाथ अनतने आदरे जी ॥ देवचद्र हो प्रभुदेवचद्रने आणद ॥ परम हो प्रभु परम महोदय ते वरे जी ॥ ७ ॥

अर्थ –एम ज्ञानादिक अनत गुणना वृद केतां समूह एहवा नाथके तां श्रीअनतनाथ स्वामी तेने जे आदरे, उपादेय करे, ते प्राणी देवचद्र जे स्तुतिकर्त्ता अथवा देवचद्रते चोसठ इद्र तेहने आनंद केता परमानदमयी एवो जे परममहोदयवत मोक्षरूप स्थानक ते नक्किवत जीव वरे केता पामे ए नियामक छे ए प्रभुजीने सेवता कर्म क्लेशथी रहित थाय ॥ ७ ॥ इति चतुर्दश श्री अनत जिन स्तवन सपूरण ॥ १४ ॥

॥ अथ पचदश श्री धर्मनाथजिन स्तवन ॥

सफल संसार अवतार ए हु गणु एदेशी॥

धर्म जगनाथनो धर्म शुचि गाईये, आपणो आत मा तेहवो भाविये ॥ जाति जसु एकता तेह पलटे नहीं, शुद्ध गुणपज्जवा वस्तु सत्तामयी ॥ १ ॥

अर्थ –हवे श्रीधर्मनाथ भगवाननी स्तुति करेछे अने आत्मद्रव्यने सा धनताना बाधकतानो उपयोग आपे छे तहा धर्म एहने नामें पन्नरमाती र्थंकर जगदुपगारी परमतत्त्वी जगतना नाथ, तेहने परमहितकारी धर्म प्र गटचो छे, ते आत्मस्वभावी धर्म छे ॥ उक्त च ॥ धर्मसग्रहण्यां ॥ जो पुण आय सहावो, धम्मोपगिरस इत्यादि अथवा उनयस्कयदेक इत्यादि पुन नावधर्माधिकारे ॥ जीवाण भावधम्मो,कम्माभावेण जो खलु सहावो ॥ इत्यादि ॥ कम्मविम्मुक्कसरूवो, अणिंदियत्ता अचिंतवेसाउ ॥ रुआदि विरहतो वा, अणाइ परिणाम भावाउ ॥ १ ॥ इत्यादिधर्मस्य स्वरूप उक्त ॥

एहवो श्रीधर्मनाथ स्वामीनो धर्म शुचि केतां पवित्र निरावरण परानुभा यी पणारहित तेने गाइयें, वारवार सभारीयें, तत्त्वप्रगटरूप ते स्तवियें, अने पोतानो आत्मापण तेहवोज भावीयें, केता विचारीयें, एटले जेहवो धर्म नाथस्वामीनो धर्म छे, तेहवोज अमारो आत्मानो धर्म छे तथा च निश्चय

मृतटीकाया ॥ जारिसतिद्धसहावो, तारिसभावो हु सव जीवाण ॥ ते
ग्गतरूइ, कायव्वा भवजीवेहिं ॥ १ ॥ तथा च तत्वार्थटीकाया ॥ जीवो
त्तावरूपोसिद्ध इति तेमाटे सिद्धपणुते जीवनी पोतानी अवस्था छे,
कोइ पूछे जे सिद्ध तथा संसारी सकर्मा, समोही, मिथ्यात्वी, असय
वु य केम कहो छो तेहने कहे छे जे वस्तुनी जातीएकता पणे छे, ते
वारें पलटे नही माटे जीव द्रव्यनुं, एहिज धर्मने जे अनादिनो कर्मावर्त
यो तो पण पलटे नहीं स्वजाति मुके नहीं,तो मारी तथा श्रीधर्मनाथ स
मोनी जीवनीजाति एकछे, श्रीठाणागमा कह्यु छे, एगेआया इत्यादि तेमाटे
यपि अत्यंत मोहतीव्र अबोधमा पड्यो तो पण जीवत्वपणु सग्रह नं
तेवाज छे जे शुद्ध निर्मल गुणपर्यायमयी वस्तुनी सत्ता छे, केमके सर्व
द्रव्ये गुणपर्याय संयुक्त छे, उक्तंच तत्वार्थे "गुणपर्याय च द्रव्य ॥ इति ॥"
व पज्जवविउत्त्र, दव्वविउत्ता य पज्जवा नत्थी ॥ उप्पाय ट्ठिइभगाइ, दव्वप
लक्खण एय ॥ १ ॥ इति सम्मति गाथा ॥ उप्पज्जंति चयंति, परिणम
गुणाण दव्वाए ॥ दव्व प्पभवाय गुणा, न गुणप्पभवाएदव्वाए ॥ १ ॥ अ
क्करे जाणणा नत्थी तथा आवश्यकनिर्युक्तौ ॥ गुणाणमासओदव्व ॥ एगदव्व
या गुणा ॥ लक्खण पज्जवाण तु,उभओ निस्सिया भवे ॥१॥इति उत्तराध्यय
ते माटे जीवादिक वस्तुनी सत्ता,शुद्धगुणपर्यायमयी छे, यद्यपि जीव अ
परिणामी छे, अने ज्ञानादिक गुणसर्व, कर्में आवर्त्त छे, तो पण सत्तायें
छे, निरामय छे माटे आपणो आत्मानु स्वरूप, ते श्रीधर्मनाथस्वामी
समान विचारवु एहज तत्वाज्ञवनी थवानो मार्ग छे ॥१॥ इति प्रथम० ॥

नित्य निरवय व वलीएक अक्रियपणे, सर्वगत ते
ह सामान्यभावे भणे ॥ तेहथी इतर सावयववि
शेषना, व्यक्तिभेदे पडे जेहनी भेदता ॥ २ ॥

अर्थ — हवे सामान्य विना वस्तुनी छती आधारता नहीं, अने विशेषवि
ना कार्य नहीं, पर्यायप्रवृत्ति नही, तेमाटे पचास्तिकाय ते सामान्यस्वभाव
अने विशेषस्वभावमयी छे तिहां सामान्य स्वभावनुं लक्षण कहे छे जे
नित्य अविनाशी होय पण आकाशनो परें सावयव होय, अने जे निर
वयव जेहने विभाग अश नथी, तेथी अक्रिय ते पण एकज पण जेमा छे

नहीं स्वजातिमां विभावभाव नहीं, ते एकपणे जाणवारूप, अथवा परस्प दरूप क्रिया करे नहीं,तेथी अक्रिय ते पण कोइपर्यायमा व्यापे,कोई पर्या यमा न व्यापे,तेहवा नही पण सर्वपर्यायमा व्यापेज ए लक्षण जेहमा छे, तेहने सर्वज्ञ देवें सामान्यस्वभाव कह्यो छे ए सामान्यलक्षण श्रीविशेषाव श्यकें कह्यु छे एग निच्च निरवयव, मक्रिय सव्वग्ग च सामन्न ॥ ए गाथाना व्याख्यानथी जाणवो तिहां भावना जे नित्यपणु सामान्य धर्म छे ते पदा र्थमां नित्यपणु सदा छे, ते नित्यपणाने पर्यायप्रदेशरूप अवयव नथी, ते नित्य पणु सर्व एकज छे, अने जाणवादिक काई क्रिया करतो नथी, तेथी अक्रिय छे, ते नित्यपणु प्रदेशमा, गुणमा, पर्यायमा, सर्वमा व्यापक छे, तेथी सर्वगत छे, एटला लक्षणने पहोंचे, तेमाटे नित्यपणु ते सामान्य छे, एम अनित्यत्वादिक पण सर्व सामान्य स्वभावमा जाणवु हवे विशेष स्व भावनु लक्षण कहे छे ते सामान्यथी इतर केता बीजा जे सावयव केता सप्रदेशी अविभागपर्याय सयुक्त अनेक अनित्य सावयव, सक्रिय,ते विशेष स्वभाव जाणवो, पण व्यक्ति जे पदार्थ तथा गुणातर तेहना भेदे जेहनी भेदता केता जुदापणु पडे, एटले सर्वव्यक्तिने विषे विशेषपणु जुदु जुदु छे माटे विशेषनी सर्वत्र जुदायी छे,ते विशेष स्वभावमा ज्ञानादिकगुणना भेद जाणवा ए सामान्यविशेषनु लक्षण कह्यु ए सामान्यविशेषसत्तामयी द्रव्यछे

एकता पिण्डने नित्य अविनाशता, अस्ति निज
ऋद्धियी कार्यगत भेदता, भावश्रुत गम्य अभि
लाप्य अनतता, भव्यपर्यायनी जे परावर्तिता ॥ ३ ॥

अर्थ —ए सर्व धर्मनाथ प्रभुनो धर्म छे हवे सामान्यस्वभावना लक्षण कहे छे १ प्रथम एकता केता एक स्वभाव ते जे पिण्ड केता पिण्डपणु तेद्र व्यना सर्वप्रदेश, गुण, पर्याय, तहनो समुदाय ते एक पिण्डरूप छे, पण, भिन्नरूप वर्त्ततो नथी, तेने एकस्वभाव कहियें

२ बीजो नित्य अविनाशता केता अगुरुलघुपणु ध्रुवपणु तद्भावाव्यय नित्य इति त्वार्थवचनात् ते द्रव्यना बीजो नित्यस्वभाव कहियें

३ त्रीजा सर्वद्रव्यपोताने स्वभावेंछता छे,पण कोई काले पोतानी ऋद्धिने मूकता नथी, ते द्रव्यमा पोतानी ऋद्धियी त्रीजा अस्तिस्वभाव कहियें

४ चोथो भेदस्वभाव ते कार्यगत ठे, एटले जे ज्ञानादिक गुण ते सर्व पोता पोताना कार्यने करे ठे परंतु एकगुण ते बीजा गुणना कार्यने करतो नथी, ज्ञान ते जाणवारूप कार्यने करे ठे, दर्शन, ते देखवारूप कार्यने करे ठे, तथा चारित्र ते रमणतारूप कार्यने करे ठे भोगगुण ते भोगवने करे ठे, इत्यादिक कार्यना भेदें द्रव्यमां चोथो भेदस्वभावपणु ठे

५ पांचमो अनिभाप्य स्वभाव ठे, ते वचनथी कहि शकाय तेहवा पण आत्मद्रव्यमा अनंता धर्म ठे, जे भाव श्रुतज्ञाने करी जणाय माटे श्रुतज्ञाननी शक्तिपण अनिभाप्य भाव सीम ठे,ते पाचमो स्वभाव ठे

६ ठहो सर्वद्रव्यमा पर्यायनी परावर्त्तिता केतां पलटणता ठे, ते भव्य स्वभावकहियें ए ठ स्वभाव. द्रव्यमा, गुणमा, पर्यायमा ठे, माटे ए ठ ने सामान्यस्वभाव कहियें ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

क्षेत्र गुणभाव अविभाग अनेकता, नाशउत्पाद
अनित्य परनास्तिता ॥ क्षेत्र व्याप्यत्व अभेद अ
व्यक्तता, वस्तुते रूपथी नियत अभव्यता ॥ ४ ॥

अर्थ —हवे विशेष स्वभाव कहेठे त्यां पेहेलो अनेक स्वभाव ते जे क्षे
ा अविभाग प्रदेश तेथी पदार्थ अनेक स्वभावी ठे तथा गुणाविभाग
एकएकगुणना अनंता अविभाग ठे, जेम चारित्रना अविभाग सयमश्रे
ा कह्या, वीर्यना अविभाग योगस्थान अधिकार कम्मपयडीमा कह्या
ि माटे गुणाविभागपणे पण अनेक स्वभाव ठे एक एक द्रव्यमां अ
गुण ठे, ते वली एकका गुणमा अनंता गुणाविभाग ठे, ते अनेक
यता ठे, तथा भावाविभागें जे पर्याय धर्म ते ज्ञानादिक गुणना अ
पर्यायनी सूक्ष्मता गहन ठे, ते पण अनेक स्वभाव ठे, एटले क्षेत्रे
ुणें अने पर्यायें सर्व रीतें द्रव्यमां अनेकता ठे
ीनो नाश केता व्यय तथा उत्पाद केता उत्पाद ए परिणति ते
यमां अनित्य केतां अनित्यस्वभाव ठे
ीजा पर कर्ता आपणथी बीजा जे द्रव्य तेहना धर्म ते अन्यद्रव्य
एटले एक द्रव्यना जे धर्म त बीजा द्रव्यमां नपामीयें, ते द्रव्य
ता केता नास्तिस्वभाव ठे

४ चोथो आत्माना सर्व गुणपर्याय ते भिन्नभिन्नकार्य करे छे,परंतु के केता भाजन ते सर्वनो आत्मा छे,माटे गुणपर्यायनी अनंतता छे,पण को मूलद्रव्यने तजी शकतो नथी, एकक्षेत्रे एकाधारपणे व्यापल केता अवग ही रह्या छे ते द्रव्यमा अभेदता केता अभेदस्वभाव छे

५ पाचमो वली वस्तुने स्वरूपें केवल ज्ञानगम्यपणे वचने अगोचर अ नंतधर्मात्मक पणे द्रव्यनु अनभिलाप्यपणुं ते अवक्तव्यस्वभाव छे, उक्त च ॥ श्रीविशेषावश्यके ॥ अभिलाप्ये भावेभ्य अनभिलाप्या अनंतगुणा इति

६ छठो अनेक पर्यायनोपरावर्त्त छे,पण वस्तुना मूलरूपथी पलटे नहीं, ते रूपेज रहे छे, ए नियतपणा माटे वस्तुमा अन्वयस्वभाव छे

ए सर्व स्वभाव सम्मतितर्क तथा धर्मसंग्रहणीना व्याख्यानथी जोवा, ए सामान्यस्वभाव छे ते पदार्थनो द्रव्यास्तिकमूलधर्म छे, एहवा परिणमन पणाथकी सर्व पदार्थ स्याद्वादादि कहेवाय छे, जे समये एक ते समये अ नेक जे समये नित्य ते समये अनित्य, जे समये अस्ति, ते समयें नास्ति, जे समयें भिन्न ते समये अभिन्न, जे समये वक्तव्य, ते समये अवक्तव्य, जे समये भव्यत्व ते समयें अभव्यत्व, इत्यादिक एम वली एक अनेक नित्यानित्यादिक एक एक स्वभावनी सप्तभंगी थायें तेवा अनंता स्वभा वें अनंतीसप्तभंगीयो द्रव्यनेविषे थाय, ते स्याद्वादरत्नाकरावतारिकामा कह्यु छे जे “नित्यानित्याद्यनंतस्वभावभेदतौ प्रतिधर्मे भिन्नाभिन्ना सप्तभंगी एव मनंता सप्तभंग्यो भवति इति ॥” तथा च श्रीजिनवल्लभसूरिवाक्य ॥ बहु विह नयभंग, वत्थुणिच्च अणिच्च ॥ सदसदनभिलाप्पा,लाप्पमेग अणेग॥१॥ इति ॥ ए स्वभाव महोपाध्याय श्रीयशो विजयजी स्वकृतद्रव्यगुणपर्यायना रासमध्यें समर्थ्या छे, तिहांथी जोई लेवा ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

धर्म प्रागभावता सकल गुण शुद्धता, भोग्यता कर्तृ ता रमण परिणामता ॥ शुद्ध स्वप्रदेशता तत्त्वचैतन्य ता, व्याप्य व्यापक तथा ग्राह्य ग्राहकगता ॥ ५ ॥

अर्थ – हवे विशेषस्वभाव कहे छे द्रव्यनो धर्म जे ज्ञानादिक तेहनी प्रागभावता केता प्रगटपणु ते आविर्भावधर्म, बीजो ज्ञानदर्शन, चारित्रा दि, सर्व गुणनी शुद्धताये सर्व स्वगुणनु भोगीपणु ते भोग्यता धर्म तथा

कर्त्ता केता कर्त्तापणु सर्व प्रदेशकार्यानुगत समुदायप्रवृत्ति कार्योत्पादकरु र्द्दत्व ते धर्मास्तिकायादि द्रव्यने प्रदेशे प्रदेशे चलनादिसहायरूप कार्य नो थावो, ते भिन्नभिन्न प्रदेशोंने आश्रयें छे. अने जीवद्रव्यनु जाणवा देखवा रुपकार्य, ते सर्व, असंख्यप्रदेशना मळवाथी छे, तेमाटे जीव द्रव्यने विषे कर्त्तापणु छे ते कर्त्तापणु विशेष स्वभाव छे वळी रमण जे कोईकने विषे रमवु तथा परिणामिकता जे परिणामिकपणु ते शुद्ध स्वप्रदेशीपणु ते पण विशेष स्वभाव छे तथा तत्त्व केतां वस्तुमा मूलधर्म जे चैतन्यता ते पण विशेष स्वभाव छे,व्याप्य व्यापकपणुं तथा ग्राह्य ग्राहकपणु तथा आ धाराधेयपणु संरक्षणपणु स्वस्वामिभावादिक ए सर्व विशेष स्वभाव जाण वा ए रीतें सामान्य स्वभाव तथा विशेषस्वभाव, ते सर्व श्रीधर्मनाथ परमे श्वरना निर्दोष थया, तेहमा पण सामान्यस्वभाव तो निर्दोष सदा हता, परंतु पर संयोगे विशेष स्वभावनो विभावभाव थयो हतो, ते हे श्री धर्मनाथ प्रभुजी तुमे स्वरुपालवनी थई करणगुणें जे ज्ञान, दर्शन, चा रित्र, अने वीर्य, तेहने स्वरूपथी एकत्व करी, स्वरुप प्राग्भाव करी, स्व रुपें वस्या छो, माटे निरामय थया छो ॥५॥ इति पंचम गाथार्थ ॥

संग परिहारी स्वामिनिज पद लह्यु, शुद्धआत्मिक
आनंदपद संग्रह्यु ॥ जदवि पर भावथी हुं भवोद
धि वस्यो, परतणो संग संसारतायें ग्रस्यो ॥ ६ ॥

अर्थ – हवे एहवी अनंत गुण निर्मलता प्रभुजीने जे रीतें नीपनी, ते रीत कहे छे हे देव, हे परमेश्वर! तुमे पुद्गलादिकनो संग सर्वथा परि हार केतां त्याग करयो, तेहथी निज केता पोतानु परमपद अव्याबाधानंद रुप सिद्धावस्थानरूप लह्यु केतां पाम्यो माटे तमे शुद्ध केतां निर्मल आत्मिक केतां जे आत्म द्रव्यनो आनंद अव्याबाधादिकते संग्रह्यु केता लाधो अने हे प्रभुजी! जदवि केता जो पण हुं परभावथी केतां परभाव निमित्त पामीने परभावरूप परिणमीने, वर्त्तमानपरानुयायी भवोदधि केतां भवसमुद्रने विषे वस्यो छुं, भवनिवासी थयो छु, तथी पुद्गलादिकने संगे संसारता भावथी नवु नवु अध्यवसायीपणु पामीने द्रव्यथी चारगतिरूप संसारमां भावपणे करीने ए माहारो आत्मा ग्रस्यो छे एटले ए संसारें

मुफने ग्राम करी लीधो ने माटे हे देव! तुमे असगी, हुं सगी, तुमे मुक्त, हु बद्ध, तुमे अकर्मी हु कर्माश्रित तुमे स्वरूपभोगी, हु पुद्गलभोगी, तुमे स्वगुणपरिणामि, हु पुद्गलाश्रित रागद्वेष परिणामि, तेथी हे प्रभु! माहारे तो माहरी जातथी कोइक नवु जे सत्तामा, कर्त्तापणामा, परिणामिकतामां न हतो ते भीरनो. ए अशुद्धकर्त्तापणु मे कर्यु, तेहथी स्वगुण आवरी ने पुद्गलनो ग्राहक थयो, ते पुद्गलने लेवाथी माहरो आत्मा पुद्गलभोगी थयो, एटले ताहरे माहरे अतर पडीगयो, तेथी हु ससारी हु अने तमे सिद्ध थया छो इति षष्ठ गाथार्थ ॥ ६ ॥

नहवि सत्तागुणे जीव ए निर्मलो, अन्यसश्लेष जि
म फिटक नवि सामलो ॥ जे परोपाधिथी दुष्टपरि
णति ग्रही, भाव तादात्म्यमा माहरू ते नही ॥७॥

अर्थ –ना पण सत्तागुणे द्रव्यास्तिक सग्रह नय ए माहरो जीव निर्मल छे, निराकार छे, असगी छे, अरूपी छे, कोण दृष्टाते? जेम श्यामादिक पुद्गलसयोगे फटिक रत्नना रग श्याम दीठामां आवे छे परंतु फटिक काइ श्याम थया नथी, पण अपरीक्षक ताक तेने श्याम जाणे छे, पण जाते ज हतो हतो तेहवाज छे, तेम कर्मसग आत्मा अशुद्धरूप देखाय छे, परंतु तत्त्वज्ञानी एने जाते निर्मलज जाणे छे तेम यथार्थतपणे निर्मल जाणे छे अने जे परउपाधिथी दुष्टपरिणति कर्मरूप पणाने ग्रहीने तदात्मकभाव मां तादात्म्यसंबंध करी छे, ते सर्व उपाधिकभाव माहरा नथी, सयोग स बध कर्यो छे परंतु समवायसबंधे नथी जलिनारतेलकुंभनिगलवत् परंतु तादात्म्यसबंधे नथी एम भावतु ॥ इति सप्तमगाथार्थ ॥ ७ ॥

तिणे परमात्मप्रभु भक्ति रगी थइ, शुद्धकारण रगे
तत्त्व परिणति मयी ॥ आत्मग्राहकथये तजे पर
ग्रहणता, तत्त्वभोगी थये टले परभोगता ॥ ८ ॥

अर्थ –माटे ए विभावपरिणति तेमाहरा मूल धर्म नथी, नथी एम विचारीने, तो जाणे तेवारे ए माहरो आत्मा स्वरूपानुयायीपण थाय, एम विचारी तेनो उपाय लिखे छे जे ए ससारी आत्मा परमातमपद ग्रहा छ, तदन

जो हमणा स्वरूपथी जोडीए, तो टकी शके नहीं. अने परजातिथी जो एवा परनां बंधने वधारे छे, माटे परस्वजाती जीव जे अमोही, शुद्धज्ञानी तेथी जोडीयें, तो स्वजाति स्वरूप रंगी थाय अने अरिहंतनुं स्वरूप तथा आपणा आत्मानुं स्वरूप तुल्य छे. तेथी तेहना स्वरूपे रसिक थाय. तो पछी क्रमे आपणा पण, आत्मस्वरूपनी रुचि उपजे, ते रुचिथी पोताना स्वरूपनुं ग्रहण, जाणे रमे, प्रथम एक, पश्चात् तजे ए अनुक्रमथी संपूर्ण स्वरूप पामे. तेमाटे परमात्मा प्रभु श्रीधर्मनाथजीनी भक्ति रंगी थइने शुद्ध कारणने सेवे आत्मा तत्त्वपरिणतिमां मग्न थाय, पोताना आत्मस्वरूप जाणे ध्यावे रमावे तथा तेहनेज प्रगट करवाना थाय एक, एवी रीतें करीने आत्मानो प्रगट थाय तेवारें अनादिनी परभावकता टळे, एम जे आत्मस्वरूपना ग्राहक थया, ते परभावना ग्राहक नहीं, एटले आत्मपरिणति आत्मधर्म ग्राहक थइ ते धर्मादिकने टाळे तेवारें तत्त्वपरिणति रुचिथे वळी तत्त्वनाणी थया, परनाणीपणुं टळे, तेवारें आत्मा जागरे ॥ ८ ॥

शुद्ध निःप्रयास निजभाव भोगी यदा, आत्मक्षेत्रे
नहीं अन्यरक्षण तदा ॥ एक असहाय निःसंग निर्द्वं
द्वता शक्ति उत्सर्गनी होय सहु व्यक्तता ॥ ९ ॥

अर्थ — जेवारें शुद्ध पुष्ट कारणे निःप्रयास निजभाव भोगी थया आत्मभावना भोगी थया, तेवारें आत्मक्षेत्रमां अन्य जे ते पुद्गलधर्म तथा रागादिकनुं ग्रहण जेनां रक्षण नथी एटले स्वरूप ग्राहक चेतनानुं वीर्य थाय तेवारें कुन्य वस्ते आत्मक्षेत्र रक्षणकारण कोइ नहीं, सर्वगुणप्रधान आत्मा निःसंगी थाय, एवा सर्वसंग रहित, असहायी निर्द्वंद्व उत्सर्गनी शक्ति प्रगट, व्यक्तता जेतो अनंतता निष्कारणपणुं थाय ॥ इति नवम गाथार्थ ९

तेणे मुज आतमा तुजथकी नीपजे, माहरी संपदा
सकल मुज संपजे ॥ तेणे मनमंदिरे धर्म प्रभु ध्या
इये परमदेवचंद्र निज सिद्धि सुख पाइये ॥ १० ॥

अर्थ — तेथी हे धर्मनाथ प्रभु ! माहारो आत्मा तुज थकी सिद्धि रूपें नीपजे, माहारी शुद्धस्वभाव रूप संपदा सकल माहरी आत्माने सिद्ध थाय, ते

ताहारा स्वरूपने अवलंबे नीपजे, माहरो अनंतगुणपर्यायरूप स्वकर्त्ताप णु स्वभोक्तापणु स्वरूप ऐश्वर्यता सर्व कर्मावर्त्त छे, ते मुने संपजे, एट ले हु माहारी अरूपी सत्तागत तत्त्वसंपदानो धणी तथा भोगी, अवि नाशीपणे थाऊं, ए प्रभुजीनो परम उपकार जाणु, ते कारणे मनमंदिरने विषे श्रीधर्मनाथ प्रभुने ध्याइयें पण बीजो उपाधिचिंतविए नहीं, ए प्रभुना गुण तथा उपगारनु बहुमाने ध्यान करियें, नवा साधकने एहिज आधार छे, तेवारे परम उत्कृष्ट देव जे स्वरूपरमणी मुनि तेहमां चंद्रमा समान जे परमात्मपदरूप निज केतां पोताना सिद्धि केतां निष्पन्नसुख, अव्याबाधा दिक तेन पाइयें केतां पामियें, एहीज मोक्षनो उपाय छे, तेमाटे श्रीअरि हंतनुं सेवन निरनुष्ठानपणे करवु ॥ १० ॥ इति श्रीधर्म जिनस्तवन संपूर्ण ॥

॥ अथ षोडश श्री शांति जिनस्तवन ॥

॥ आगडीयें में आज सेत्रुंजो दीठो रे ॥ ए देशी॥

जगतदिवाकर जगतकृपानिधि, वाहाला मारा समवसर णमां बेठा रे ॥ चउमुख चउविह धर्म प्रकाशे, ते मे नयणे दीठा रे ॥ भविक जिन हरखो रे ॥ निरखी शांति जिणंद ॥ भ० ॥ उपशम रसनो कंद ॥ नही इणे सरखो रे ॥ ए आकणी॥१॥

अर्थ —हवे सोलमा जिन श्रीशांतिनाथ प्रभुनी स्तवना करे छे ते प्रभु केहवा छे ? जगतनेविषे दिवाकर कर्ता सूर्यनी पर ज्ञानकरीउद्योतना करन र तथा करुणा निधि एहवा प्रभुने मुझने परमवल्लभ छे समवसरणमां बिराजमान थका चार मुखे करी चार प्रकारना धर्मने प्रकाशे केतां उपदेश करता थका, एवा तीर्थंकर देव श्रीशांतिनाथ प्रभु ते मे नयण केतां अ मन श्रवण रूप चक्षुए दीठा माटे हे भविकजीवो ! तुमे निर्णद कर्ता सा मान्यकेवलीना इश्रमान एहवा श्री शांतिप्रभुने निरखीने हर्षवंत थाओ उपशम जे परमक्षमा तद्रूप जे रस तेनु ए कंद छे एना तुल्य बीजो कोइ नथी ए प्रभु परम शांतरसमयी छ ॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥ १ ॥

प्रातिहार्य अतिशय शोभा ॥ वा० ॥ ते तो कहिय न जावे रे ॥ धूकवालकथी रविकरभरनुं, वर्णन केणीपरे थावे रे ॥ भ०॥ २॥

अर्थ – वली प्रभुनी जे आठ प्रातिहार्यनी तथा चोत्रीश अतिशयनी शोना ते मुऊ सरिखा व्यामोहि जीवथी कही जाय नहीं, दृष्टांत जेम घूकबालकथी केतां घूवडना बालकथी रविकर केतां सूर्यना किरणोनो नर केतां समूह तेहनुं वर्णन केवी रीतें थाय? अर्थात् नहींज थाय तेम मुऊ सरखाथी पण प्रातिहार्यादिकनी शोना कही जाये नहीं इति ॥ २ ॥

वाणी गुण पात्रीश अनोपम ॥ वा० ॥ अविसंवाद सरूपे रे ॥
नवदुःखवारण शिवसुखकारण, सूधो धर्म प्ररूपे रे ॥ न० ॥ ३ ॥

अर्थ – वली प्रभुनी जे वाणी तेहने विषे उपमा रहित पात्रीश गुण रह्या छे, ते वाणी विसंवादपणाथी रहित अविसंवाद सरूपमयी छे, ते वाणीए करीने नव्यजीवोना नव केतां संसारना दुःख निवारवाने अर्थे अने शिव केतां मोक्षसुखना प्रबलकारणने अर्थे सूधो केतां यथार्थ धर्म नीप्ररूपणा श्रीप्रभूजी समवसरणमां करे छे ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥३॥

दक्षिण पश्चिम उत्तर दिसिमुख ॥वा०॥ ठवणा जिन उपगारी रे॥नसु
आलंबन लहिय अनेके, तिहां थया समकित धारी रे ॥न०॥४॥

अर्थ – ते समवसरणमां पूर्वदिशि सन्मुखना बारणें तो श्रीतीर्थंकर पोते मूलगे रूपें बेसे, अने दक्षिण पश्चिम तथा उत्तरदिशिने बारणे श्री अरिहंतना प्रतिबिंब बेसे, ते प्रतिमारूप ठवणा जिन केतां थापना जिनजे ते उपगारी छे, तेहनुं पण आलंबन पामीने अनेक जन तिहां समवसरणने विषे समकेत धारी थया, एटले मतना लेनार ते पूर्वदिशिना बारणे बेसे, अने बीजो परिषदामध्यें जिनसेवनथी समकितनो लाभ छे, तेथी ए धन्यता छे ते थापनानिक्षेपानो उपगार छे ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥ ४ ॥

षट् नयकारज रूपें ठवणा ॥वा०॥ सग नयकारण ठाणी रे॥ निमित्त
समान थापना जिनजी, ए आगमनी वाणी रे ॥ न० ॥ ५ ॥

अर्थ – हवे वलीविशेष थापनानुं उपगारीपणुं तथा सत्यपणुं कहे छे, तेमध्ये श्रीअरिहंत तथा सिद्धजी पण आपणा आत्मना निमित्त कारण छे, अने श्रीजिनप्रतिमा ते पण आपणा तत्त्वसाधननुं निमित्त कारण

छे, तेह्मां थापना जिनने विषे अरिहंतनिरूपणु छ नये छे, इहां कोइ पूछे जे अरिहंत थया अथवा सिद्ध थय. तेहनी थापना छे, ता सात नय मूकीने, छ नय केम कह्यो छो ? तेहने उत्तर कहे छे जे मूल ता थापनानिक्षेपामध्ये थापना ते त्रण नयें छे "नाम स्थापनाद्रव्यनिक्षेपत्रय नैगमादिनयवर्त्ति इति ॥ " अत उच्यते ॥ हवे इहां नामादि एकेक निक्षेपाना चार चार भेद थाय छे ॥ उक्तं च भाष्ये ॥ नामादि प्रत्येकचतुरूप इति ॥१॥ तेथी प्रथम ए स्थापना एहवु नाम स्थापनामांहे ते स्थापनानो नाम निक्षेपा छे बीजो ए स्थापना ग्रहण हेतु थाय छे,ते स्थापनानो स्थापना निक्षेपो जाणवो त्रीजो समुदायता अनुपयागता ते स्थापनाना द्रव्य निक्षेपो जाणवो चोथो आगारोनिष्पाद ए धर्मने कारणिक थाये ते थापनानो भाव निक्षेपो छे एम थापना चार निक्षेपे छे अथवा नत्थिएहि विहुण, सुत्तोअत्थोयजिणमए किंचि ॥ आसज्जउसोयार,नयनयविसारउ बूया ॥१॥ इति तेथी श्रीअरिहंत तथा सिद्धजीनी स्थापना छे,तेमाटे तेहना नय कहेछे

१ जे स्थापना दीठे अरिहंत सिद्धनो संकल्प स्थापनामा थाय छे. न्यथा असगादि तदाकारता रूप अंश ए स्थापनामा छे.ते नैगमनय थापना

२ अरिहंत तथा सिद्धना सर्वगुणनो संग्रह कल्पनाबुद्धि धरीने थापनाकरी छे, तेमाटे ए संग्रहनय अरिहंत सिद्धरूप स्थापना छे

३ अरिहंतना आकारने वंदन नमनादि सर्व व्यवहार श्री अरिहंतनो थाय छे, तेहनु कारणपणु ए थापनामा छे ते व्यवहारनय थापना कहीयें

४ एप्रतिमारूपथापना देखी, सर्वनव्यने बुद्धिनो विकल्प एहवो उपजे छे, के ए श्रीअरिहंतजीछे ते विकल्पेंज स्थापनाकरी छे ते ऋजुसूत्रनय स्थापना छे

५ अरिहंतसिद्ध एहवो शब्द "ऽदप्रकतिप्रत्ययसिद्ध" इहां प्रवर्त्ते छे, ते शब्दनय स्थापना जाणवी

६ अरिहंतना पर्याय वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर तारक जिन पारगत ऽत्यादिक सर्वपर्यायनी प्रवृत्ति पण स्थापना मध्ये छे, ते समभिरूढनय स्थापना थइ परंतु केवलज्ञान केवलदर्शनादिगुण, उपगारकता ते धर्म, स्थापनामा नथी माटे एवंभूतनयना धर्म,ते ए स्थापनामा नथी तेथी ए करणा केता थापना ते कार्य केता निष्पन्नता, अरिहंत, सिद्धतारूप ते पद केता छ नये छे,

एक एवंभूत नये नथी केम के एवंभूतनय ते श्रीअरिहंत सिद्धने विषेज छे तेमाटे कार्यपणे अरिहंत मध्ये पण ७ नय छे इहां स्थापना निक्षेपमां श्री विशेषावश्यक मांहि त्रण नय कह्या छे अने इहां ७ नय कह्या ते उपचार भावनायें कह्या छे समभिरूढनुं लक्षण, वचनपर्यायवर्त्ति छे, ते लक्षण इहां पामीये छे. तेमाटे ए ७ नय कह्या

हवे ए श्री जिनप्रतिमारूप स्थापना ते समकित देसविरति. सर्वविरतिने मोक्षसाधननुं निमित्त कारण छे ते निमित्त कारण सातनये छे ते कारणना धर्म कर्त्ताने वश छे ते निमित्तकारणपणुं सात नयें छे. ते कहे छे.

१ पहेलो संसारानुयायी जीवने ए जिनप्रतिमा दीठे अरिहंतनुं स्मरण थाय छे. अथवा जिनदर्शनने जीवनी सन्मुखता थाय छे तेवारें सन्मुखताना जे निमित्त ते नैगमनय निमित्त कारण पणुं छे

२ जिन प्रतिमा दीठे सर्वगुणना संग्रह थाय छे साधकतानी चेतनादि सर्वनो संग्रह ते तत्त्वनी अद्भुततान सन्मुख थाय छे ते संग्रहनय निमित्त

३ वंदन नमनादिक साधकव्यवहारनुं निमित्त ते व्यवहारनय निमित्त.

४ तत्त्वसंग्रहरूप उपयोग समारवाना निमित्त ते ऋजुसूत्रनय निमित्त

५ संपूर्ण अरिहंत दशाना उपयोगे ज उपादान ए निमित्तें तत्त्वता धर्मने परिणम्या ते शब्दनय. भावनाना निमित्त छे. समकिती अप्रमत्तगुणठाणे

६ अनेक रीतें चेतनाना वीर्यनी परिणति सर्वसाधनताने सन्मुख थइ ते समभिरूढ स्थापनानुं निमित्त कारण पणुं जाणवुं,

७ ए स्थापनानुं कारण पामी तत्त्वरुचि तत्त्वरमणी थइने जे शुक्लध्यानमां परिणमे ते संपूर्ण निमित्त कारणता पामीने, उपादाननी पूर्ण कारणता नीपनी ते एवंभूत नयनिमित्त कारण पणुं छे, एटले निमित्त कारणता ए धर्म छे ते उपादानने कारणपणे प्रगटे, अने उपादानकारण ते कार्यपणे नीपजे ए रीत छे

एवी जिनप्रतिमा ते मोटुं निमित्त कारण छे, ते निमित्त सात नयें छे तेमां नैगमादिकने [illegible] [illegible] कारण पणुं [illegible] शुद्ध नहि ने व्यवहारनय [illegible] निमित्त कारण पण छे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छो ते [illegible] [illegible] कही छे, तेमानी आदि

नी चार दृष्टि वालाने ऋजुसूत्र नय सीम, निमित्त कारणपणु थाय छे अने पुण्याढयादिकने ए जिनप्रतिमा सपूर्ण एवभूतनयें कारण रूप थइ देखाय छे तेवारे इहा भावनायें ए थयु जे थापनाने विषे तो सपूर्ण सात नयरूप निमित्त कारणता छे पछी कार्यनो कर्त्ता जिहा सुधी एहने नीपजावे, तेटलो नीपजे, तेथी ए स्थापना ते सगनय केता साते नये करी कारणगणी केता निमित्तकारणपणानु स्थानक छे, ते थापना श्रीअरिहत पदना मूल तो द्रव्य अने भाव ए वे निक्षेपावत छे, परतु निमित्तकारणना चार निक्षेपा सातनय सयुक्त छे उक्त च ॥ निमित्तस्यापि सप्तप्रकारत्वनय प्रकारेण निमित्तस्य द्वैविध द्रव्यभावात् ॥ तथोपादानस्यापि सप्तप्रकारत्व नयोपदेशात् "नो अनिहाणमणय" इति वचनात् ॥ नत्थि एहि विहुण, सुत्त अत्थेय जिणमए किंचि ॥ आसज्ज सोयार, नये नयविसारउ बुया ॥ १ ॥ इति ॥ माटेनिमित्तपणे स्थापना केता जिनप्रतिमा अने जिनजी केता श्रीअरिहत ए वेहु समान केता तुल्य छे एटले विचरता अरिहत तथा तेमनी स्थापना जे मूर्त्ति, ते वेहु समान केता वरोवर छे, तेथी विचरता अरिहत तथा तेहनी स्थापना ए वे साधक जीवने निमित्त कारण छे, पण उपादान नथी सर्वमां निमित्तता छे, ए आगम केता सिद्धातनी वाणी छे, जे अरिहतने वांदवानु तथा अरिहतनी प्रतिमाने वादवानु फल सिद्धातमा सरखु कह्यु छे, माटे समान छे ॥ इति पचम गाथार्थ ॥ ५ ॥

साधक तीन निक्षेपा मुख्य ॥ वा० ॥ जेविणु भाव न लहिये रे ॥
उपगारी दुग भाष्ये भाख्या, भाववदकनो ग्रहिये रे ॥भ०॥ ६ ॥

अर्थ –अने, १ नाम, २ स्थापना ३ द्रव्य ए त्रण निक्षेपा ते भावना कारण छे उक्त च भाष्ये ॥ अहवा नामठवणा, दव्वाइ भावमगल गाए ॥ पाएण भावमगल, परिणामनिमित्त भावाउ ॥ १ ॥ माटे ए त्रण निक्षेपा साधक केता कारण छे, ए त्रण निक्षेपा विना भावनिक्षेपो थायज नहीं, अने नाम तथा स्थापना ए वे निक्षेपा भाष्यने विषे उपगारी कह्या छे, ते कहे छे, जे द्रव्यनिक्षेपो छे, ते पिमरूप छे, माटे ग्रहवाय नहीं, अने भावनिक्षेपो तो अरूपी छे, ते थायना नाम तथा स्थापना एवे निक्षेपा विना ग्रहवाये, सेवाये, नहीं. तेमाटे आदिना वे निक्षेपा ते उपकारी

छे वक्त च ॥ वत्थुसरूवं नामं, तप्पच्चय हेउ उ सधम्मव ॥ वत्थु नाणा विहाणा लोक्का जावोविवक्खासो ॥ १ ॥ वत्थुस्स लरकणस्स, ववहारो विरोहसच्चाउ ॥ अनिहाणाहिणाउं, बुद्धिसद्दो अकिरियाय ॥ २ ॥ इति वाक्यात् नाम प्रधानत्व ॥ गाथा ॥ आगारोनिप्पाउं बुध्धीकिरियाफल च पा एण ॥ जह दीसइ ठवणाए, न तहा नामे न दविदो ॥ १ ॥ आगारोच्चि यमर्छ, सद्दवत्थुकिरियानिहाणाइ ॥ आगारमय सव, जमणागारा तया नत्थि ॥ २ ॥ इत्यादि तेमाटे नाम तथा थापना ए वे निक्षेपा उपगारी छे, अने मोक्षनाथवामा सवर निर्जरा करवाने तो वदकनो जाव जे छे ते अ हवो केम जे श्रीअरिहंतनो जावनिक्षेपो तो श्री अरिहंतने विषेज छे, ते जो परजीवने तारे, तो कोइ जीवने ससारमा रहेवु पडेनहीं, तेता थातो नथी परंतु आपणो जाव अरिहंताजवनो थाए, तो मोक्षमार्ग लहियें, तेमाटे प्रजुनी थापना तथा नामना निमित्तथी पण साधकनो जाव समरे तेथी नाम तथा थापना ए वेज उपगारी छे वळीसमवसरणमा विरा जमान श्रीअरिहंत तेहनु पण नाम तथा आकार, सर्व जीवने उपगारी थाय छे, तेहीज ठग्रस्थने ग्राह्य छे, अवजवीर्ये तेमाटे नाम तथा थापना प्रमाण छे, निमित्ताजवी रूपी ग्राहकने श्रीजिन थापना ते पुष्ट निमित्त छे ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥ ६ ॥

ठवणा समोसरणे जिनसेति ॥ वा० ॥ जो अनेदता वाधी रे ॥
ए आत्मना स्वस्वजावगुण, व्यक्तयोग्यता साधी रे ॥ न० ॥ ७ ॥

अर्थ – ते माटे ठवणा समोसरणें एटले मूळगो समोसरण तो श्री जिनराज विचरता हता ते कालें तो ए माहरो जीव, कोइ गत्यांतरमा हतो, ते हमणा आ जवमा समोसरणनी थापना करी, तिहा जिनमुद्रा देखीने, जिनराजना गुणावजंबी चेतना करी पछी ते सेवना करता प्र जुनी सिद्धावस्थारूप परम अनंतगुणीना स्वरूपथी जे माहरा चेतनानी अनेदता एकत्वपरिणामता ते वाधिकता वधी, तेवारे ए आत्माने एहवो अनुमान सध्यो, जे तत्त्वीरेवथी अजेदपणु बहुमानपणे न्त्पु तो एम जाणु वु जे ए माहारो आत्म ससजाव अनंत ज्ञानादिपूर्णानंद गुणनी व्यक्त कर्ता प्रगटतानु थवु तेहनी योग्यता साधि, एम अनुमाने निरधारी,

एटले ए जीव सदा सर्वदा विषयरंगी हतो, ते तत्वी प्रभु निर्विषयीने रंगें रम्यो, तो कोइक अवसरें स्वरूपरमणी थाशे एहवु अनुमानथयु जो कारणथी अभेद थयो, तो कारज नीपजावशे ए पलटवा पणु अनते काले न थयु हतु ते थयु, तो ए द्रव्यमा पलटवानी योग्यता छे, अनादिनी चालथी पलटवु ए भव्यतापणाना लिंगनु अनुमान तो थाय छे, एटले भ व्यपणु जणाय छे, ए भक्तिनी बहुलतायें हरषनु वचन छे ॥ ७ ॥

भलुं थयु मे प्रभुगुण गाया ॥ वा० ॥ रसनानो फल लीधो रे ॥
देवचंद्र कहे माहारा मनना, सकल मनोरथ सीधोरे ॥ भ० ॥८॥

अर्थ – माटे हेप्रभु आज मुजने भलु केता अत्यत रूडु थयु जेमें प्रभु श्रीसोलमा शांतिनाथ परमात्मा परम शांतरसमयी तेना गुणनी स्त वना करी, तेथी में माहरी रसना केता रसेंद्रि जे जिन्हा तेनु रुडूफल लीधु एटले रसनानु सार्थकपणु थयु एहवा हर्षसहित देवचंद्रनामा मुनि कहे छे, जे माहारा मनना जे मनोरथहतो, ते सकल केता सपूर्ण पणे सीधो केता सिद्ध थयो ॥ ८ ॥ इति षोडश श्री शांतिजिन स्तवन सपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तदश श्री कुंथुजिन स्तवनं ॥

॥ चरम जिणेसरू ॥ ए देशी ॥

समवसरण वेसी करी रे, बारह परषद माहे ॥ वस्तुस्व रूप प्रकाशता रे, करुणाकर जगनाहो रे, कुंथु जिने सरू ॥१॥ निर्मल तुझ मुख वाणी रे, जे श्रवणे सुणे ॥ तेहिज गुणमणिखाणी रे ॥ कु० ॥ २ ॥ ए आकणी ॥

अर्थ – हवे सत्तरमा श्रीकुंथुनाथजीनीस्तवना करे छे, जे श्रीकुंथुनाथ जी समवसरणमां त्रिगडे वेसीने बारह पर्षदा मध्यें वस्तु जे छ द्रव्य तेह नां मूलस्वरूपने प्रकाशता, एटले जीवस्वरूप जीवपणे, अजीवस्वरूपने अजीवपणे, उपादानकारणने उपादानपणे, निमित्तकारणने निमित्तपणे, शुद्धकार्यने शुद्धकार्यपणे, उपदेशदेता तथा द्रव्यथी शुभपरिणति ते कारण रूप तथा भावथी शुभपरिणति ते कार्यरूप अनेभाव साधन परिणति ते

कारणरूप तथा भावसिद्ध परिणति ते कार्यरूप उपादेय तेहिज करवो. तेहनी रुचियें रेहेवु एहज साधन छे, एहवो उपदेशकरता तथा करुणाकर केता कृपाना करणहार जगत्रयना नाथ, एहवा श्रीकुंथुनाथ स्वामी, तेहना मुखनी निर्मल वाणी, उपदेशध्वनि, ते जे प्राणी श्रवणे सुणे, तेहिज प्राणी, गुणरूपमणि रत्ननी खाण छे, एहवा कुंथुनाथस्वामीने नमो ॥ इति ॥ २ ॥

गुणपर्याय अनंतता रे, वलिय स्वभाव अगाह ॥ नय
गम भंग निक्षेपना रे, हेयादेय प्रवाह रे ॥ कुं० ॥ ३ ॥

अर्थ – गुण ते जे वस्तुना सहभावि धर्म "द्रव्याश्रयानिर्गुणागुणा इतितत्वार्थे वचनात्" ते तथा क्रमभावि उत्पादितत्व ते पर्याय अने द्रव्य, गुण, पर्याय, ए सर्वमां वर्ते, तेने स्वभाव, कहीयें एटले गुणनी अनंतता, तथा पर्यायनी अनंतता, अने स्वभावनी अनंतता, ए सर्व अगाह केतां अगाध छे, जे अवगाहवाने दोहली छे वलि नय केतां अनेक धर्मात्मक वस्तुने विषे एकधर्मावलंबन ते नय कहियें ॥ यदुक्तं च तत्वार्थे ॥ अनेकधर्मस्वरूपोपेतस्य वस्तुन एकेन धर्मेण उन्नयन अवधारणात्मक निश्चयएव अनित्यएव एवविधनयव्यपदेशमास्कंदति ॥ एहवा मूल नय सात, अने उत्तर नयसात सय प्रमुख विस्तार बहुल ते, तथा गमा गम्य ते, इति गमा अंशभेदेन अन्यधर्मअभेदेन वस्तुनिरूपणात्मकवाक्य गमात्मक उच्यते तथा भंगा नस्याद्वादोपदेशा अस्तित्वादय भंग स्याद्वाद सापेक्ष स्यात् ए अस्तिप्रमुख तथा निक्षेपानामादिक तेहनी अनेक प्रवाह अनेक जातिना वस्तुधर्म उपचारधर्म कारणधर्म स्वरूपें उपदेशे ते वलि हेय धर्मना नय निक्षेपा भागा ते हेयरूप कहेतो अने उपादेय धर्मना नय निक्षेपा, ते उपादेयरूप प्ररूपता, एहवी श्रीकुंथुनाथजीनी देशना छे, वली एक द्रव्यना गुण अनंता, पर्याय अनंता, स्वभाव अनंता, उपदेशे इहां भावना जे गुणपर्यायने आवर्ण छे, स्वभावने आवर्ण नथी, अनित्य नित्यत्वादिक जे छे ते मध्ये विशेषस्वभाव विगडे पण सामान्यस्वभाव छिप टेनहीं, तथा सर्वधर्म नय तथा भंग अने निक्षेपा सहित उपदेशे छे, एहवी श्री कुंथुजिननी देशना छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

कुथुनाथ प्रभुदेशना रे, साधन साधक सिद्ध ॥ गौण मुख्य
ता वचनमा रे, ग्यान ते सकल समृद्ध रे ॥ कु० ॥ ४ ॥

अर्थ – वली श्रीकुंथुनाथ प्रभुनी देशना केहेवी छे जेमध्ये साधक ता रत्नत्रयी पूर्ण अभेदतारूप निपजाववाना उपाय ते जिनमुद्रासेवक मुनिवंदन अनुकंपादिकथी लही शुक्लध्यान पर्यंत कह्या छे, तथा मार्गानुसारीथी लही क्षिणमोही पर्यंत अपवादे अने उत्सर्गे अयोगी लगे साधक जीव जाणवा तेहनु तारतम्य योग कहे छे, पहेलो मार्गानुसारी ते समकेतने साधे, अने समकेतिते विरतिने साधे, विरतिते शुक्लध्यानने साधे तथा शुक्लध्यानी क्षायकगुणने साधे, क्षायकगुणी सिद्धने साधे, ए साधकनो क्रम छे ते सर्व प्रभुदेशनामा कहे, तथा सिद्धपणु संपूर्ण निष्पन्ननिरावर्णता पणु कहे वली कुंथुनाथजीनी देशनामा वचन जे बोलाय ते, अनता गौण धर्म राखीने जे वचनमां ग्राह्य ते धर्मने मुख्य करी कहे एटले एक वस्तुमा अनंता धर्म एकसमयमा परिणमे छे, ते सर्व एकसमयमां जाणे, परतु वचनेकरी जे धर्म मुख्य करी कहेवाय, तेने मुख्य करी कहे बीजा सर्वज्ञानमा गौणपणे जाणे, एम वचनमा गौणपणु तथा मुख्यपणु छे, पण श्रीकुंथुनाथ स्वामीनु केवल ज्ञान ते सकल ज्ञेयने जाणवे करी समृद्धिवान् छे, एटले ज्ञानमा एक हमणा जाणे बीजा पछी जाणशे एम नथी, सर्व भावने ते समये ज जाणे छे, तेथी ज्ञानमा गौणता मुख्यता नथी, अने वचननु धर्मक्रम प्रवर्त्तन छे, ते एक कह्या पछी बीजो कहेवाय, माटे वचनमां गौणता अने मुख्यता छे ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥ ४ ॥

वस्तु अनत स्वभावछे रे, अनत कथक तसु नाम ॥ ग्राहक
अवसर बोधथी रे, कहेवे अर्पित कामो रे ॥ कु० ॥ ५ ॥

अर्थ – वस्तु जे जीवादिद्रव्य ते अनतस्वभावमयी छे. सर्व वस्तु अनंतता युक्त छे, तथा वस्तुनो जीव अथवा पुद्गल एहवु जे नाम छे, ते पण अनतताने कहेतो छे, एटले जीव एवो शब्द उच्चार करता जीवना अनता धर्म छे, ते सर्व बोलाणा एम सर्व स्थानके समजवो माटे जे वस्तुनु नाम ते ते वस्तुना सर्वधर्मना ग्राहक छे, तेथीज नामनिक्षेपामा संग्रह तथा व्यवहार ए बेहु नय मुख्य छे, अने नैगम कारण छे, ए रीत छे, परतु ग्राहक जे

श्रोता तेहनो जेहवो अवसर होये. तथा श्रोतानो जेहवो बोध केता जाणपणु होये तेहवो वचनमां अर्पित करीने उपदेशे, एटले ज्ञान तो सर्वने एक समयमा जाणे छे, परतु उपदेशकाले केवली नगवान् जेहवा श्रोता होय, तेटलो कहे, तेथी केहेवामा अर्पित नय आगल करवानो कामपडे छे. ते अर्पित तथा अनर्पितनु स्वरूप तत्त्वार्थमा कह्यु छे, "अनेक धर्मात्त धर्मातत्र प्रयोजनवशात्कदाचित् कश्चिद्धर्मोवचनेनार्पिते विवक्षिते ततुअर्पिते सन्नपि वचनविवक्षते प्रयोजनाभावात् तत् अनर्पित इति" जे धर्मोपदार्थ, तेहना अनेक धर्म छे, तेहने विषे जे अवसरे जे धर्म,कहेवानु प्रयोजन उपजे, ते अवसरें ते धर्मने वचननेविषे अर्पित करीए,विवक्षा करीने ग्रहिये, ते अर्पित जाणवो अने जे धर्म सत् केता छतोछे तो पण प्रयोजन विना तेने गवेषे नहीं, अक्षामा अपेक्षामाछे, ते अनर्पित कहिये. उप स्थनुं ज्ञान,तथा बोलवो ते अर्पित अनर्पित वे मत्याज शुध थाये.अने केवलीनु ज्ञान तो सर्व एक समयें छे, परतु वचन ते अर्पित मत्या शुद्ध छे ॥ इति पचम गाथार्थ ॥ ५ ॥

शेष अनर्पित धर्मने रे, सापेक्ष श्रद्धा बोध ॥ उनय रहित
नासन होवे रे, प्रगटे केवल बोधो रे ॥ कु० ॥ ६ ॥

अर्थ – जे वचन बोलगाथी शेष रह्या, ते अनर्पित धर्म रह्या, तेहने सापेक्ष श्रद्धा, सम्यक्तसद्दहणा राखवी, बोधज्ञान पण राखवु ए छद्मस्थ समकेती, देशविरति, सर्वविरति, क्षीणमोहिपर्यत एम जाणवु अने उनय केता ए अर्पित अनर्पित वेहुथी रहित जे नासन होवे ते बोध केता केवलीनु ज्ञान ते सर्वनो ज्ञायक समकाले छे, तेथी तेहमा अर्पित अनर्पित पणु नथी, वचनमां अर्पितानर्पित छे, परतु जाणवामा नथी ॥ इति ॥६॥

वति परिणति गुणवर्तना रे, नासन नोग आणद ॥ समका
ले प्रनु ताहरे रे, रम्यरमण गुणवृंदो रे ॥ कु० ॥ ॥ ७ ॥

अर्थ – वली हे प्रनुजी तमारामा ज्ञाननी, दर्शननी, चारित्रनी, वीर्यनी, सुखनी, अरूपत्तानी, इत्यादिक अनता तमारा गुणरूप धर्म, तेहनी छती छ, तेमन अनत पर्यायनी पण छती छे, ते स्वद्रव्यात्कि पणे सदा

सर्वदा उती ठे, तेम स्वनावि गुणपर्यायनी परिणति परिणामिकत्ता द्रव्यने विषे परिणमवु, ते उत्पाद, व्यय, ध्रुवपणे तथा षट्गुण हाणी वृद्धिप णे परिणमे ठे, तथा तेहिज ज्ञानादि गुणपर्यायनी वर्त्तना, ते जे स्वस्वका र्यनो करवापणु ते ज्ञाने जाणे, दर्शने देखे, चारित्रे रमे, कर्त्तापणाथी करे, नोक्तापणाथी नोगवे, एम सर्वगुण पोतपोतानी वर्त्तनाए वर्त्तता पोतपोताना कार्यने करे ठे, ते वर्त्तना जाणवी ए सर्व हे प्रनुजी तमारा मां ठे अने ते सर्वगुण पर्यायनु नासन केता जाणवु ते तमारामां ठे ते सर्वगुणने नोगवो ठो,ते अनता गुणना नोगनो आनद हे प्रनुजी तमारा मां ठे एटले अनत गुण पर्यायनी ठति परिणति अने वर्त्तना तथा नास न नोग अने आनद ते समकार्ले केता एक समयमा ए सर्वपरिणमन ठे, माटे एहवा आनता परमानदना नोगी ठो, माहा सुखी ठो वजी हे प्रनु हे सर्वज्ञ ! हे सर्वानदमयी ! हे नाथ ! हे सुधोपगारी ! तुमे केहेवा ठो ? जे रम्य केतां रमवा योग्य जे अनतात्मस्वरूप तेहमा रमण केतां रमवु ते गुणना तुमे वृद केता समूह ठो ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थ ॥

निजनावें सी आस्तिता रे, पर नास्तित्व स्वनाव ॥ अस्तिप णे ते नास्तिता रे, सीय ते उनय स्वनावो रे ॥ कु० ॥ ८ ॥

अर्थ – हवे सप्तनगीरूपे प्रनुता कहे ठे तिहां कोइक तो सप्तनगी ए कजा पर्यायास्तिक नयनीज कहे ठे, तेतो घटे नहीं, द्रव्यास्तिक पर्यायास्ति क नय द्रव्यमात्र वस्तु ठे, तिहां स्यात् अस्ति, स्यात्नास्ति, स्यात्अवक्त व्य, ए त्रण नांगा सकलादेशी ठे, ते द्रव्यास्तिकनयी ठे, "एव एते त्रय सकलादेशा नाष्यानुसारी एव समद्व्यवहारानुसारीण आत्मद्रव्ये विकला देशा चत्वारि पर्यायनयाश्रया इति तत्त्वार्थे " शेष चार ते विकलादेशी ठे, तेहनो परमार्थ एम ठे जे स्यात्अस्ति ए नांगामां अस्तिपणु वधु अर्पित ठे, बीजो नास्तिधर्म, अवक्तव्यधर्म, ते स्यात्पणामा आव्यो, एटले स्यात्अ स्ति कहाथी वहु द्रव्य ग्रहवाय ठे, तेमज स्यात् नास्ति तथा स्यात् अवक्त व्यं ए नागामां पण वहु द्रव्य ग्रहवाय ठे, अने १ स्यात् अस्ति नास्ति, २ स्यात् अस्ति अवक्तव्य, ३ स्यात् नास्ति अवक्तव्य, ४ स्यात अस्ति ना स्ति युगपत् अवक्तव्य, ए चार नगाते वस्तुना अशने एटले पर्यायने ग्रह

ण करे छे तेहनो नावार्थ ए छे जे प्रथम स्यात् अस्ति स्यात्नास्ति ए चोथोनंग छे, तेमां अवक्तव्यं ए धर्म नाव्यो, तो कोइ कहेशे जे स्यात्पदे अवक्तव्यं धर्म लहीशु तेने उत्तर जे स्यात्पद ते अस्ति तथा नास्ति ए धर्मनी अनेकांततानो ग्राहक छे, परतु अवक्तव्यनो ग्राहक नथी अने स्यात् अस्ति अवक्तव्य, ए पांचमो नगो छे, तेहमां वस्तुनो अस्तिधर्म एकसमयी छे, तेवचनमां कह्या थका उपयोगमां लावतां असंख्याता समय लागे छे, तेमाटे ए अस्तिपणु अनेकांतपणे छे, परतु वचने गोचर नथी एमज स्यात् नास्ति अवक्तव्य, ए छठो नगो पण नाववो,तथा स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्य, ए नगामां स्यात् केतां अनेकांते अस्ति केहेता असंख्याता समय लागे, नास्ति केहेता पण असंख्याता समय लागे, तेमाटे अवक्तव्य छे, नेला छे, पण जे रीतें वस्तुमां परिणमे छे. ते रीतें केहवाता नथी. तेथी ए चार नगामां सर्व धर्मनु ग्रहण न थयुं तेमाटे ए चार नंगा विकलादेशी छे, पण सकलादेशीनथी हवे ए साते नगानु सरूप कहे छे.

१ ए आत्मावर्त्तमान समयें ज्ञान दर्शनादि सपर्यायनी परिणतिपणे अस्ति छे, एटले अतीतपर्याय तो विनष्ट छे, अनागतपर्याय अनुत्पन्न छे, माटे वर्त्तमानपर्याय ग्रहण करवो. इहां स्यात् ते नास्ति अवक्तव्य धर्मनो अनर्पितपतानो द्योतक छे, ए रीतें स्यात् अस्ति ए पहेला नगा थयो

२ तथा स्यात् ते कथंचित् पणे गतिस्थितिअवगाहोपकारी वर्णादि अचेतनादि परद्रव्यधर्म तथा पोताना अनागत पर्याय ते. सांप्रतिक वर्त्तवापणे नथी, ए नास्ति नगा द्रव्यने द्रव्यपणे शाश्वतारूप छे, नहीं ता काइ कालें जीव ते अजीवताने पामे, ए स्यात्नास्ति बीनो नगो थयो

३ तथा अस्तिधर्म पण वचनें अगोचर छे, अने नास्तिधर्म पण वचने अगोचर छे, ते वचनगोचर धर्मथी वचन अगोचरधर्म अनंतगुणा छे, तेमाटे स्यात्कथंचित्पणे द्रव्यमां अवक्तव्यपणु छे, एटले अनंत नय युगपत् अर्पण करतां सर्वपदार्थ अवक्तव्यपणे छे, माटे ए त्रण नगा सकलादेशी ते द्रव्यास्तिक नयपणे जाणवा, एत्रणे नगानां समद तथा व्यवहारनयनी प्रवृत्ति छे, ए स्यात् अवक्तव्यनामा त्रीजो नांगो थयो

४ तथा चोथो नग स्यात् अस्तिनास्ति छे, ते समुदायाश्रयी नइव्यादि पर्यायपर्याना अस्तितापणे तथा तेहिज निरांतयोगपणे ते अतीत अना

गत परिणामिकपणे नास्तिता छे, ए बे धर्म पोतानाज गवेष्या छे
५ तथा जे विवक्षित वचनगोचर द्रव्यार्थे मुख्य आत्मधर्मने अपेक्षा ये अस्ति छे, तेहिज आत्मद्रव्यनो सामान्यविशेष द्वयनी भिन्नप्रवृत्ति धर्म समकालें अंगीकार करता स्यात्अस्ति अवक्तव्य ए पांचमो भंग थयो
६ छठो स्यात्नास्तिअव्यक्तव्य ए एमज पांचमानी पर भाववो, ए पर्या यनी सूक्ष्मता अनंततायहीने कह्यो ए छठो भंग थयो
७ सातमो स्यात्अस्ति स्यात्नास्ति युगपत् अवक्तव्य नामे भंगो छे ते कोइकद्रव्यार्थेविशेष आश्री अस्तिपर्यायविशेषआश्री जे नास्ति तेहीज सर्व्ने भिन्नपणे अवक्तव्य ए सर्वपर्याय ते नयनी प्रवृत्ति छे ए सातमो भंग
ए सप्तभंगी ते नित्य अनित्य भेद अभेदादिक धर्मनी तथा ज्ञानदर्शना दिक गुणनी सप्तभंगी थाय ते भावे छे ज्ञान जेछे ते ज्ञायक परिछेदकादि स्वपर्याये अस्तिछे,तथा दर्शनचारित्रादि ते स्वपर्यायें अस्ति छे,अने जडतादि परपर्यायें नास्ति छे, एम अनंती सप्तभंगी सभजे, ते बुद्धिवंते भाववी, तथा तत्त्वार्थ वृत्तिने विषे वलीसम्मतिवृत्तिने विषे विस्तारथी कही छे, अने स्याद्वादरत्नाकरे एहनु सरूप तथा उपपत्ति, प्रवृत्ति, परिणति, नय सर्व वखाण्या छे तिहांथी जोइ लेजो हवे गाथानो अर्थ लखे छे
निज केता पोताने भावे, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावपणे सीय केतां स्यात् कथंचित्पणे अस्ति छे, अने तेहीज द्रव्य, परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव पणे नास्ति छे, ते नास्तिपणु द्रव्यमां अस्ति केतां छता पणे रह्यो छे, वलीसीय केता स्यात् कथंचित् उभय केता अवक्तव्य स्वभाव एटले आदि भांगो तथा अंतनो भांगो संभारतां साते भंग केहे वाणा, एहवी स्याद्वादपरिणति ते हे परमेश्वर तुमे प्रत्यक्ष ज्ञानें सर्वद्रव्य नी जाणीने उपदेश कर्यो, एहवी ताहरी वाणी छे, ए रीतें शुद्ध अनंतता, एकता, अनेकता, सत्त्वता, साधकतायुक्त श्री अरिहंतनो उपदेश छे ॥ ७ ॥

अस्तिस्वभाव जे आपणो रे, रुचि वैराग्यसमेत ॥ प्रभु सन्मु ख वंदन करी रे, मागीस आत्म हेतो रे ॥ कु० ॥ ए ॥

अर्थ –हवे पोतानो मनोरथ कहे छे एहवो जे अस्तिस्वभाव अनंत ज्ञा न, दर्शन, चारित्र, अव्याबाध, पूर्णानंदतारुप, जे माहारो सत्तागत स्या

क्षाद उपयोगे ग्रह्यो तेह्नी रुचि पीपासा करीने. वैराग जे संसारथी उदासी पणु ए संसारीभाव विनावोपाधि माहरे थयटली छे. तेहने कवारें सर्वथी तज्जु. एम विषभक्षण तथा तप्तलोह पदधृति समान जाणीने उदासीन थयो. मोक्षाभिलाषी केवलज्ञानानंदने अभिलाषे हे प्रभुजी ताहरे सन्मुख उनो रहीने वंदना करीने मागु छु, जे हे तारक ! मुजने तार तार भवभ्रमणथी उगार, ए संसारजनित दुःख मुजथी हवे खमातां नथी जे माहरो अनंतो स्वाधीन आनंद ते पराधीन थयो अने हु पुद्गलग्राही थयो तेथी तत्वभोगी छु, पण तत्वने जाणी शकतो नथी. उदैकभावरूप अशुद्धपर्यायनी श्रेणिमां पडीरह्यो छुं, अने हवे हे नाथ ताहरे सरणे आव्यो छुं माटे मुजने माहरो अस्तिस्वभाव प्रगटे एहवो आत्मानो हित समकेत दर्शनशुक, चारित्रनो प्रसाद करो, एहवो हु जेवार मागीश तेहीज दिन धन्य मानीश एहवो मनोरथ करवो ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थ ॥

अस्ति स्वभावरुचि थयी रे, ध्यातो अस्तिस्वभाव ॥ देव
चंद पद ते लहे रे, परमानंद जमावो रे ॥ कुं० ॥ १० ॥

अर्थ —माटे अहो भव्यजीवो तुमें जो सर्वजीव सुखना अर्थीछो तो जे सत्तागत अस्तिधर्म तेहना रुचि अभिलाषी थयीने जे अस्तिस्वभावनी अनंतता तेहनेज ध्याता ध्यान करतां थका सर्व देवमां चंद्रमासमान जे सिद्धपरमात्मपद ते लहे केतां पामे, अशरीरता, निर्मलानंदता. निःसंगता रूप परमानंद स्वाधीन आत्यंतिक अव्याबाध सुख तेहनोज जहमां जमाव छे, सघन केता एकीपणु छे, एहवुपद श्रीप्रभुनी सेवाथी पामे तमाटे तत्वस्वरूपी,अरूपी,ज्ञानस्वरूपी, एहवा श्रीकुंथुनाथनां चरणनु सेवन करो, हे भव्यजीवो ! एहीज परम सुखना हेतु छें, ॥ १० ॥ इतिकुंथुनाथ० ॥

॥ अथ अष्टादश श्रीअरनाथजिनस्तवन ॥

॥ रामचंदके बाग चांपो मोरी रह्यो री ॥ एदेशी ॥

प्रणमों श्रीअरनाथ, शिवपुर साथ खरोरी ॥
त्रिभुवन जन आधार, भवनिस्तार करोरी ॥ १ ॥

अर्थ –हवे अढारमा श्रीअरनाथ जिननी स्तवना कारणता पणे करेछे प्रणमो केतां वारवार नमस्कार करो, श्रीअरनाथ स्वामीने, एहीज अमो ही परमेश्वर वादवा योग्य छे, शिव केता निरुपद्रव जे सिद्धता, तेहीज उपमाये पुर केतां नगर तिहां पोहोचाडवाने खरो साथ छे, तेथी सार्थ वाहनी उपमा श्रीअरिहंतनेज छे, जे नि स्वार्थ नवअटवीमाथी पार करी ने मोक्षनगरने विषे परमानदपदे पहोचाडे एहवा कारणपणे श्रीअरिहंत जी छे, वली त्रण भुवनना जनने आधार छे, मिथ्यात्व असयम व्यथायें पीडितने आधार उपनारूप छे वली चारगतिरूप नव केता ससार तेहमा थी द्रव्ये तथा भावे निस्तारना करणहार छे ॥ १ ॥ इति प्रथमगाथार्थ ॥

कर्ता कारण योग , कारज सिद्धिलहे री ॥
कारण चार अनूप, कार्यार्थी तेह ग्रहे री ॥ २ ॥

अर्थ – हवे मोक्षकार्य निपजाववा माटे कारण कार्यनी नीति कहे छे सर्व कार्य छे, ते कर्त्ताना कीधा थाये छे, तेमा भिन्नकार्यनो कर्त्ता पण भिन्न, जेम घटनो कर्त्ता कुभकार भिन्न छे, अने अभिन्नकार्यनो कर्त्ता पण अभिन्न छे, जेम ज्ञाननो कर्त्ता आत्मा छे, तेम सपूर्ण सिद्धत्वनो कर्त्ता पण आत्माज छे, ते कर्त्ता जेवारे कारणनी योगवाई पामे, तेवारे कार्यनी सिद्धि नीपजवापणु लहे, एटले एकलो कर्त्ता ते कारण सामग्री विना कार्य करी शके नही, कारण सामग्री मलेज, कार्य नीपजावे ते कारणना चार भेद छे, जे कार्य नीपजाववानो अर्थी थाय, ते चार कारणने ग्रहे इहा घणा शास्त्रोमां तो कारणना बे भेद कह्या छे, एकउपादानकारण, बीजो निमित्त कारण, अने विशेषावश्यकने विषे समवायकारण ए नाम कह्या छे, तथा आप्तमीमासामा कारण त्रण कह्या छे, "समवायसमवायी निमित्तभेदात्" तेमा समवाय कारण ते उपादान कारण अने असमवाय कारण ते नामातर असाधारण कारण कहेवाय छे, तथा निमित्त कारण ना बे भेद करीये तेमा एक तो निमित्त कारण बीजु अपेक्षाकारण ते त त्वार्थ टीकामा वखाण्यु छे, "तथा अपेक्षाकारण पूर्वमित्यनेन उच्यते यथा घटस्योत्पत्तावपेक्षाकारण व्योमादि उपेक्षते इति उपेक्षा" तेमाटे यद्यपि कारण, बे मा चारे अतर्भूत छे, तोपण विस्ताररुचिने निक्षेपयोगी

करवाने चार कारण कह्यां छे एक उपादान, बीजुं असाधारण, त्रीजुं निमि
त्त, चोथो अपेक्षा ए चारे कारण जेवारें कार्यरुचि कर्त्ता मेहे, अने ज वारें
ए चार कारणने कार्यरुचि कर्त्ता प्रवर्त्तावे, तेवारें ते कारण समजवा पण
कर्त्ताना प्रयोजन विना कारणता नहीं एम भावना करवी ॥ इति ॥ २ ॥

जे कारण ते कार्य, थाये पूर्ण पदे री ॥ उ
पादान ते हेतु, माटी घट ते वदे री ॥ ३ ॥

अर्थ –हवे प्रथम उपादान कारणनुं स्वरूप कहे छे जे कर्त्ताना कार्यने
सन्मुख थाय तथा जे कारण तेहीज पूर्णपदें केतां पूर्णता ना अवसर कार्य
रूप थाय तेने उपादान हेतु केतां कारण कहीयें उक्तं च महानाप्ये ॥
तद्दवकारण तं, तदोपडस्सेहजेण तम्मइया ॥ विवरीय मन्नकारण मिउ
चोमादउ तस्स ॥ १ ॥ ए गाथाने व्याख्याने यदात्मक कार्य उत्पद्यते तदि
ह तद्द्व्यकारण उपादानकारण यथा तंतव पटस्य इति एटले जेम तं
तु हता ते कर्त्ताने प्रयोगें पट थयां, ते उपादान कारण जेम घटरूप कार्य
तेहने माटी ते उपादान कारण छे, पछी माटी तेहज घटपणु पामी, ए
टले कारण तेहीज कार्यपणुं पाम्यो, इहां कारण कार्यनुं एक समयरूप
जे व्याख्यान छे, ते पण उपादान कारणनुं छे एम महानाप्ये मतिज्ञाना
धिकारें जमालि न्हवना अधिकारें कह्युंछे इहां कोइ पुछे जे कारण ते
कार्य थाये एम कह्यो छो तो कारण कार्यनुं एकपणुं थाशे ? तेहने उत्त
र जे अभिधान, फल लक्षण, संख्या, संस्थानादिकनो भेद छे तथा
भिन्न जाणवुं जेम प्रथम माटी एहवुं नाम हतुं पछी घटनाम थयुं माटी
मृदुता, द्रव्यतापर्यवत हती. घट ते जलाहरण धर्मवंत छे, माट नि
ना छे, ए प्रथम उपादान कारण बताव्युं इति तृतीयगाथार्थ ॥ ३ ॥

उपादानथी भिन्न,जे विण कार्य न थाये ॥ न हुवे कारजरू
प, कर्त्ताने व्यवसायें ॥ ४ ॥ कारण तेह निमित्त, चक्रादिक
घटभावें ॥ कार्य तथा समवाय, कारण नियतने दावें ॥ ५ ॥

अर्थ – हवे निमित्तकारणनुं लक्षण कहे छे जे कारण उपादान कार
णथी भिन्न जुदुं छे, अने तेना व्यापार विना कार्य थाय नहीं, वळी

तेह्ने विषे जे कारण पणु ते कर्त्ताने व्यवसाये केता कर्त्ताने उद्यमे ठे. ते निमित्त कारण कहियें, जेम घटनावे घटकार्य ठे तेह्ने चक्र, चीवर, दंमा दिक ते निमित्त कारण ठे अने माटी उपादान कारण ठे ते उपादान कारणथी निमित्तकारण जे चक्र चीवरदंमादिक ठे ते सर्व निन्न ठे, अने ए निमित्त मत्या विना माटीनो घट थाय नहीं, तेमन ते चक्रादिक कदापि कोइकालें कार्यपणु पामे नहीं,अने ए चक्रादिकने जेवारें कर्त्ता जे कुंनकार ते घट करवारूप व्यापारे प्रवृत्तावे, तेवारें एने कारण कहीयें, नहींतो कारणतापणु कहेवाय नहीं, ते पण समवायकारण केता उपादानकारण तेह्ने नियतनेदावे केता कर्त्ता जेवारे उपादान कारणने कार्यरूपें करतो होये, तेवारे जे उपगरण कामे लगडवा, ते सर्व निमित्तकारण कहियें, अने तेज उपगरण जेवारें कर्त्ता कार्यने करतो न होय, तेवार तेह्ने कारण कहियें नहीं, कारणनु स्वरूप एह्वुज ठे जे कार्यने करे, ते कार्यांनतर अथवा प्रथम अप्रयुक्तकालें जे दंमादिकने कारण कहे ठे, ते आरोप मात्र नेगमनयमतें जाणवो, परतु स्वरूपें नथी , ते माटे कार्यनो जे कर्त्ता, ते उपादानकारणने कार्यरूप करता तेह्मा जे जे उपगरण प्रवर्त्तावे, ते ते निमित्तकारण जाणवु एटले जे जे कार्यनी नियत जे नियामिकी ठे ते ते कार्यना निमित्त जाणवा जेम घटकार्यने चक्रादिक अने पटकार्यने तुरीव्योमादिक एम सर्वत्र जाणवु ए निमित्तकारण कह्यु इति चतुर्थपंचम० ॥४॥५॥

वस्तु अनेद स्वरूप, कार्यपणु न ग्रहेरी ॥
ते असाधारण हेतु, कुंने थास लहेरी ॥ ६ ॥

अर्थ – हवे असाधारण कारणनु स्वरूप कहे ठे ते वस्तु जे उपादान कारण तेह्थी अनेदस्वरूपें ठे,अने कार्यपणु पामतो नथी, एटले कार्य नीपने ते रहेतो नथी, जेम घटकार्य नीपज्यु तोपण तेमाहे माटीपणु रह्यु ठे, तेनी परे ते रहेतो नथी, ते असाधारण हेतु केता कारण कहीयें, जेम घटरूप कार्य करता स्थास कोश कुसलाकार थायें ठे, ते मृतपिंमरू [illegible] अनेद ठे, परतु घटरूपकार्य नीपने ते रहेता नथी, तेमाटे [illegible] असाधारण कारण जाणवा, उक्त च "प्रमाणनिश्चयेन उपादानस्य [illegible] अवातरावस्थाअसाधारण इति" ॥ इति षष्ठगाथार्थ ॥६॥

जेहनो नवि व्यापार, भिन्न नियत बहुनावी ॥
नूमी काल आकाश, घट कारण सद्भावी ॥ ७ ॥

अर्थ – हवे अपेक्षाकारण कहे छे, जे कारणनो व्यापार प्रवर्त्तन नथी. तथा कर्त्ताने पण ते मेळववानो प्रयास करवो, पडतो नथी, अने कार्य थी भिन्न केतां जुदो छे, तथा नियत केतां नियमां निश्चे ते जोइये, अने बहुनावी केता अनेक बीजा सर्व कार्यमां नावी छे, ए रीतें कारणीक छे, ते अपेक्षाकारण कहीए जेम नूमी तथा आकाश ए विना कोई घटादि कार्य थतु नथी अने नूमी प्रमुख जेम घटनु कारण छे,तेम अन्यद्रीना कार्योनु पण कारण छे अने घटनु कारणपणु पण छतु छे,वळीकर्त्ता जेम उपादान तथा निमित्त कारणनो व्यापार करे छे,तेम एनु प्रवर्त्तन करतो नथी॥७॥

एह अपेक्षाहेतु, आगम माहे कह्यो री ॥
कारणपद उत्पन्न,कार्यथये न लह्यो री ॥८॥

अर्थ –तेथी ए अपेक्षा हेतु केता कारण आगममा तथा तत्त्वार्थादिक ग्रंथोमां कह्युंछे ' यथा घटस्योत्पत्तौ अपेक्षाकारण व्योमादि अपेक्षते तेन विना तदनावानावात् ॥ निर्व्यापारमपेक्षाकारण इतितत्त्वार्थवृत्तौ" ॥ तथा विशेषावश्यकेअवधिज्ञानाधिकारे 'इहां द्वारनृत शिलातलादिद्रव्यानुत्पत्यमानस्यावधि सहकारकारणानि नवति अत्र सहकारकारणगवेष्यं इति ' ए चार कारणनु स्वरूप कह्यु हवे कारणपद केतां जेहमांहे कारणपणु ते छतो मुलगा धर्म नथी,पण उत्पन्न छे,अने ते जेवारें कर्त्ता ते कार्यनो अर्थी थइने जे उपकरण तथा मूलपिंड ते रूपें कार्यपणे प्रवर्त्तावे, तेवारे ते तेहनु कारण करण कहीयें एटले जेम काष्ठमा दंडादिक अनेक पदार्थना थतापणानी योग्यता छे, पण कोइ कर्त्ता,दंडनु कारण उत्पन्न करे,कोइ पुतळीनु कारण उत्पन्न करे, तेमज दंडादिकने कोइ घटध्वंसपणे प्रवर्त्तावे, ने घटध्वंस करे, तथा कर्त्ता जो दंडादिकने घट करवापणे प्रवर्त्तावे तो तेहनु कारण थाय, माटे जे कारणपणु छे ते कर्त्तानु कर्यु थाय छे [illegible] कह्यु छे, ' ये कारका कर्त्तुराधीना इति कारण कार्योत्पादक तन् कार्योत्पत्तौ कारणत्व नचकार्याकरणे" ते माटे कारणपणु ने उत्पन्न न हुव थाई केहेशे जे वस्तुमा कांई कार्यना कारण तो छता छे, ता उत्पन्न छ. एम शावास्ते

कह्यो छो ? तेहने उत्तर जे विवक्षित कार्यनी कारणता उत्पन्न छे, अथवा जे कार्यता जे कालें ते कार्यता कर्त्ताना प्रयोगनी छे, तेमाटे उत्पन्नज छे, पण कार्य निपज्या पछी तेमध्ये कारणपणु न पामीयें, जेम अनादि मिथ्यात्वीजीव यद्यपि सत्तावंत छे, तेमज अभव्य जीव पण सत्तावंत छे, परंतु तेहनु उपादान सिद्धताना कार्यनु करणहार नथी, तेथी कार्य नीपजतु नथी जेवारे कोइक जीवनु उपादान अरिहंतादिक निमित्त पामीने, कारणतापणे परिणमे, ते कार्य करे, माटे ते उत्पन्न छे, अने ते कार्य सिद्ध थया पछी ते कारण रहे नहीं,जो सिद्धतामा साधकतानी छती मानीयें तो, सिद्धावस्थाये पण साधकपणु रह्यु मानवु पडे ते सिद्धावस्थामा साधकपणु तो नथी माटे कार्य नीपजे, कारणता रहे नही, तथा निमित्त जे दंडादिक ते पण कर्त्ता भिन्न कार्यना व्यवसायें कारणता करे, तो ते भिन्न कार्य थाये, परंतु तेज कार्यनी ते कारणता रहे नही, एम धारवु ॥ ८ ॥

कर्त्ता आतमद्रव्य, कारयसिद्धिपणो री ॥ नि
जसत्ता गत धर्म,ते उपादान गणो री ॥ ९ ॥

अर्थ – हवे सिद्धतारूप कार्यना चार कारण देखाडे छे सिद्धतारूप कार्य ते आत्मानु अभेदस्वरूप छे, माटे एहनो कर्त्ता आत्मा द्रव्यपोतेज छे, अने सिद्धपणु ते आत्मानु कार्य छे, जे आत्मा सिद्धताने परमानंदपणे जाणे तथा एहीज माहरु रमणा करवानु कार्य छे,एकार्य करवानी रुचिविना अनंतो काल संसारमा भम्यो स्वरूपभ्रष्ट थयो, माहामोहें ग्रह्यो हवे में माहरो मूलधर्म श्रद्धानासन गोचर कर्यो तेथी ए कार्य करवु एम निर्धार करी तदनुगत चेतनावीर्यें करीने स्वस्वरूप करवानो कर्त्ता थयो, तो सिद्धताना कार्यने निपजावे, ते आवी रीतें जे प्रथम तो अंशेकर्त्ता थाय, पछी गुणवृद्धिथवे, संपूर्ण कर्त्तापणु पामीने कार्य नीपजावे हवे ए सिद्धतारूप कार्यनो उपादानकारण कहे छे, जे पोताना सत्तागत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यादिक, अनंतगुण छे, तेहिज पोतानु सत्तागत धर्म ते सिद्धिरूप थाय छे, माटे तेहीज उपादान कारण जाणवु उपादान ते वस्तुनो मूल धर्म अरूपी सत्ता तेहीज सिद्ध थाय छे, एसिद्धता रूप कार्यनु उपादान कारण देखाड्यु ॥ ९ ॥ इति नवमगाथार्थ ॥

योग समाधिविधान, असाधारण तेह वदे री ॥ विधि आचारणा भक्ति, जिणे निज कार्य सधे री॥ १० ॥

अर्थ – हवे सिद्धतारूप कार्यनु असाधारण कारण केहे छे मन, वच अने कायाना योग तेहने द्रव्यथी तथा भावथी स्वगुणरमणमां अरागी, अद्वेषीपणे प्रवर्त्तावबु, ते आत्मसमाधि कहीये तेनो जे विधान केतां क रवो एटले चोथा गुणठाणथी मांडीने सिद्धपर्यंत जे गुणनी वृद्धि करवी, एटले अभिनव गुणनो कारणपणु ते सर्व ज्ञान, दर्शन, चारित्र, श्रेणीगत ध्यान परिणाम, क्षयोपशमीभाव, विधिसहित आचरणा, तथा भक्ति, अने गुणीनु बहुमान, जेथी पोताना कार्यनी सिद्धि निपजे ते ज्ञानक्रियारूप साधक अवस्थानी तरतमता ए सर्व असाधारण कारण कहेवु ए असाधार ण कारण ते आत्मगुणरूप दाननी भिन्न भिन्न ऊणता पणानी अवस्था छे, सदा पूर्वपर्याय उत्तरपर्यायनुं कारण छे, ते समयेज क्रियाकाल निष्ठा कालनो अभेद छे ए असाधारण कारण कह्यो ॥ १० ॥ इति ॥

नरगति पढम संघयण, तेह अपेक्षा जाणो ॥ निमित्ताश्रित उपादान, तेहने लेखे आणो ॥ ११ ॥

अर्थ –हवे सिद्धतारूप कार्यनु अपेक्षा तथा,निमित्त ए बे कारण कहेछे नरकेतां मनुष्यनी गति पढमकेतां पहेलु संघयण वज्रऋषभनाराच, पचेंद्रि पणु इत्यादि सिद्धतारूप कार्यनु अपेक्षा कारण जाणो इहां कर्त्तानो व्या पार नथी, पण ए निश्चे जोइयें ए पाम्या विना मोक्षरूप कार्यनी साधना थाय नहीं, तेमाटे अपेक्षा कारण कहीयें, पण ए मनुष्य गत्यादिक सर्व जे जीवनु उपादान परिणमन, धर्मार्थीपइने निमित्त जे देव गुरु सिद्धांत तेहने जेणे आश्रयो तो तेहनी मनुष्यगत्यादिक लेखे केता कारणपणे आणजो, अने जेणे निमित्तने आश्रयो नथी, तेहनी मनुष्यगत्यादिक कारण पणामां गणशो नहीं, ते हजी अनादिनी चालमा छे, पलटण करतो नथी, तेमाटे ए अपेक्षा तथा निमित्त ए बे कारण कह्या ॥ ११ ॥ इति ॥

निमित्त हेतु जिनराज, समता अमृत खाणी ॥
प्रभुअवलंबन सिद्धि, नियमा एह वखाणी ॥ १२ ॥

अर्थ — हवे आत्माने सिद्धतारूप कार्य करता निमित्त कारण श्रीजिन राज वीतराग छे, ते वीतराग, सर्वज्ञ कहेवाय छे, समतारूप अमृतनी खाण छे, इष्ट अनिष्टता रहित समताना धणी छे, शुद्ध चारित्र परिणाम तेहीज अमृत छे, तेहनी खाण छे, एहवा प्रभु परमेश्वर परम दयाल, परमात्मा, शुद्धतत्वरूप नोगी, पूर्णानंदी, चिदानंद जे श्रीअरनाथ प्रभु तेहने अव लबवे पोतानो जासन प्रभुना ते गुण जाणवाने जोडी एम अनंता गुण ते सर्वगुणना जासननी रीज तथा ते उपर बहुमान एहवे आज्ञवने रेहवु, तेथी नियमा सिद्ध निरवाण थाय एम आगममा वखाण्यो छे, एहीज मोक्षनु उपाय छे ए निमित्तकारण कह्यु ॥ १२ ॥ इति ॥

पुष्ट हेतु अरनाथ, तेहने गुणथी हलीयें ॥ री
ऊ नक्ति बहुमान, नोगध्यानथी मलीये ॥ १३ ॥

अर्थ —माटे पुष्टकेता नियामक हेतुकेता कारण ते जिनराज श्री अरनाथ प्रभु तेहना गुण जे केवल ज्ञान, अनंतानंदरूप तेहथी हलीये केतां आपणो आत्मा तेदिसे जोडीये, प्रगटगुणोना गुणथी आपणी चेतना जोडवी, रीज केता रागनीमग्नता, नक्तिकेता सेवना, बहुमान, आदर, मोटा इ,नोगकेता आस्वादन, ध्यानकेता चित्तनी एकाग्रता, ते श्रीअरनाथ प्रभुना गुणनी करीने श्रीप्रभुथी एकत्वपणे, तन्मयपणे मलियें साधकने शुद्धदेव तत्वने अवलबवु ते प्रधान छे ॥ इति त्रयोदशगाथार्थ ॥ १३ ॥

मोटाने उत्सग, बेठानेसी चिंता ॥ तिम प्रभु
चरण पसाय, सेवक थया निचिंता ॥ १४ ॥

अर्थ —तथा लौकिक दृष्टांत कहे छे जे मोहोटाने उत्सगे केता खोला मा बेठो तेहने कोइ चिंता नही, ते निचिंत थयो, तेम सेवक पण प्रभुजी निरामय देव तेहना चरणने सेववे, चिंतारहित थयो, जे परमोत्तम, सर्वगु णनोगी, निरालबी, चिन्मयी, अनंत दान, लान, नोग, उपनोग, वीर्य मयी, श्रीजिनेश्वर नि कर्म देवतत्व, परनावना अकर्ता, परनाव अनोगी,प रानुयायीता रहित, एहवो देव जो आदर्योछे,तो मोक्षनु शु जोर छे ? संसा र कोने छे ? कर्मनी बीक कोने छे ? जो परमोत्तम धणीमें माहरे माथे कर्यो छे जेहना ध्यानथी माहारो मोक्ष नीपजे, ते देवनो योग मिल्यो छे, तेमाटे

चिंता नथी ॥उक्त च श्रीजिनवल्लभ पूज्यै ॥ पसरेइ तीयलोए, तावमोह्‍ध यारनमइ जई॥ सिचमताव मिच्छतं, सिज फुरइ फुडफुरताण॥ १ ॥तंनाणस पूरो, पयडमजीयसत्तीजाणसुरो ॥ १४ ॥ इति चतुर्दश गाथार्थ ॥

अर प्रभु प्रभुता रंग, अंतर शक्ति विकासी ॥ देव चन्द्रने आणंद, अक्षय भोग विलासी॥१५॥इति॥

अर्थ –माटे श्री अरनाथ प्रभु अढारमा परमेश्वर जेणे तत्त्वरुचि थइ ने तत्त्वाभिलाषी तत्त्वसाधक तत्त्वध्यानी थइने, तत्त्वप्रगट कर्यु, ते प्रभुनी प्रभुता, शुद्धज्ञायकता, शुद्धरमणता, शुद्धानुभवता, अपौद्गलिकता, असंग ता अयोगिता, सकल प्रदेश निरावरणता, प्राग्भावी शुद्धसत्ताभोग्यता, तेह्नने रंगें जे रंगणा छे, ते साधक सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिनी अंतरंग शक्ति तत्त्वप्राग्भाव करवानी साधक कारकता, साधक कर्त्तापणु, परमसंवर पूर्वक परम सकामनिर्जरा रूप शक्ति, विकस्वर थवे, प्रगट थवे ते शक्तिथी सर्वकर्म विगम थवे, सर्व आत्मिक धर्मने प्रगटवे करी, परमात्मा देवमांहे चन्द्रमा समान श्रीनिष्पन्न परमेश्वर तेह्ननो जे आनंद, अव्याबाध, शिव, अचल, अरुज, अविनाशी, तेह्नु जे अक्षय स्वरूप, तेह्नो भोग के तां अनुभव तेनो विलासी आत्मा थाय, एटले स्वसंपदा तत्त्वता आत्मशु द्धपरिणति, तेह्नने सादि अनंतो काल भोगवे, अथवा देवचन्द्र जे स्तुति कर्त्ता ते अक्षय आनंदना भोगनो विलासी थाय, माटे स्वरूपसिद्ध, अरू पी, चिद्रूप, श्रीपरमेश्वर, तेह्नने सेवा, ध्यावा, नमो, गावा, तेह्ना गुण स भारा, एहीज मोक्ष साधननु पुष्ट निमित्त छे, ए निमित्तें उपादानकारणरूप थइने असाधारण कारणताए चढतो मनुष्यादिगति अपेक्षा कारणपणें करी तत्त्वानंद रूप कार्यने करशे,तेमाटे उपादानादिक त्रणे कारणनी कारणता निमित्तने अवलंबें प्रगटे, तेथी निर्दोषपणे आशातनादि दोष वर्जिने शुद्धनिमित्त ने सेवे, त सेवनथी कर्त्तापणु समरे अने कर्त्तापणु समरेथी स्वकार्य करे,माटे श्री अरनाथजीनी भक्ति ते परमाधार छे ॥१५॥ इति श्री अरजिनस्तवन ॥१८॥

॥ अथ एकोनविंशति श्रीमल्लिनाथ जिनस्तवन ॥

देखी कामिनी दोड के, कामे व्यापियो रे के का० ॥ ए देशी ॥

मल्लिनाथ जगनाथ, चरणयुग ध्याईये रे ॥ च० ॥
शुद्धातम प्राग्भाव, परम पद पाईये रे ॥ प० ॥
साधक कारक षट्क, करे गुण साधना रे ॥ क० ॥
तेहीज शुद्धसरूप, थाय निराबाधना रे ॥ था० ॥१॥

अर्थ – हवे ठंगणीशमा श्री मल्लिनाथ परमेश्वरनी स्तवना करे छे तिहां कारकशक्ति पलटवाथी सिद्धता निपजे छे, ते पलटवानो उपाय श्री अरिहंतनी सेवना छे, तेरूप स्तुति करे छे श्रीमल्लिनाथ, परमेश्वर, परमज्ञानी, ते जग केता लोकना नाथ मोहनो जय एटले अंतरग भावरि पुर्या छोडाववाना परम कारण छे, तेहना चरणयुग केता पदकमलनु जोडु तेहने ध्यायीयें, वार वार संभारियें, एहवा प्रभुने ध्यायवाथी ध्याताने शु नीपजे ? ते कहे छे शुद्ध जे आत्मानो परमात्मभाव अनंतगुण निर्मलतारूप तेहनो जे प्राग्भाव केता प्रगटपणु निर्मल शुद्धतारूप परम पद निर्मल पद ते पामीयें,एटले पोतानी आत्मता निर्मलपणु भजे,ते आत्म सिद्धिरूप कार्य करवाने छ कारक छे तिहां सर्व कार्यमा कारक प्रवृत्तिनी कारणता छे, कारकचक्र विना कार्यनी निष्पत्ति नथी जेम १ कुंभकार ते कर्त्ता, २ घट ते कार्य, ३ मृत्पिण्ड चक्रादिक कारण, ४ माटीना पिंडने, नवा पर्यायनी प्राप्ति ते सप्रदान, ५ पिंड स्थासादि पर्यायनो चय ते अपादान, ६ घटादि पर्यायनु आधारपणु ते आधार, एम घटरूप कार्यमां षट् कारक छे, तेमज आत्माने अनादि कालना ए छ कारक बाधकरूपें परिणम्या छे, ते देखाडे छे

१ आत्मा परविभाव रागादि ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मनो कर्त्ता थयो छे

२ भावकर्म द्रव्यकर्मने जे आत्मा करे, ते कार्य नामा बीजु कारक

३ अशुद्धविभाव परिणतिरूप भावाश्रव अने प्राणातिपातादि द्रव्याश्रव, ए बे कारणथी कर्म बधाये, माटे ए करण नामा त्रीजु कारक

४ अशुद्धतानो तथा द्रव्यकर्मनो लाभ ते सप्रदान नामा चोथुं कारक

५ सरूपरोध, क्षयोपशमनी हाणी, तथा परानुजयायिता ते अपादान

६ अनती अशुद्धविनावता, तथा ज्ञानावर्णादि कर्मने राखवा रूप जे श क्ति ते आधार नामाछु कारक जाणवु ते

ए रीतें ए ठ कारकनु चक्र अनादिनु अशुद्धपणे बाधकतापणे आत्मा ने परिणमी रह्यु छे. ते जेवारें साधक आत्मा, पोतानो स्वधर्म नीपजाववा पणे परिणमावे, तेवारे ए ठए कारक साधकपणे प्रवृत्त्या गुणनी आत्म धर्मनी साधना करे ए रीतें ए ठ कारक साधक पणे परिणम्या कार्य नीपजे शुद्धस्वरूप थाय ए स्वरूपपरिणामिकता रुप स्वकार्य कारण पणु कोने परिणमे ? ते कहे छे जे निराबाध, श्रीसिद्धनगवत, तेहना ठ कारक, ते शुद्धपणे प्रवृत्ते छे. अने बाधक जीवोना बाधकपणे परिणमे छे, तथा सम केत गुणगणाथी मांमीने अयोगी गुणगणा पर्यंत, साधकपणे परिणमे छे, तथा सिद्ध नगवतना शुद्धस्वरूपरूपें परिणमे छे, कारक ते आत्मानामा जे कर्त्तारूप, ड्रव्य तेहनी ए परिणति छे, उक्त च श्रीविशेषावश्यके

कारण व्याख्यानावसरे ॥ गाथा ॥ ठव्विह् कत्ता ३,कारण कम्म च तत्तो य॥ सपयाणा वायाण, तह नासमिहाणाय इति ॥ १ ॥ गाथार्थ ॥ तथा च कारण पोढा ॥यथा॥ कारण महवा ठद्धा, तह सततोत्ति कारण कत्ता ॥ वक पसाहगतम, कारणम्मित्ते पिंमदमाइ ॥ १ ॥ कम्म किरिया कारण, इत्यादि गाथाथी जाणवु ॥ दोइ पमड मोक्खस्स कारण इह यन्मोक्षस्य कारणहेतु तत् प्रशस्तनावकारण उच्यते ॥ इति वचनात्

माटे साधकपणे कारक परिणम्या तो सिद्धतारूप कार्यने करे, तेमाहे निराबाध जे सिद्ध निरावरण अव्याबाध सुखतेमा तेहनो कर्त्तादिक शुद्ध पारिणामिक नाव शुद्धपणे थाय, स्वस्वरूप कर्तृत्वपणे परिणमे ॥१॥इति॥

कर्त्ता आतम ड्रव्य, कार्य निज सिद्धता रे ॥ का० ॥
नुपादान परिणाम, प्रयुक्त ते करणता रे ॥ प्र० ॥
आतम संपद दान, तेह संप्रदानता रे ॥ ते० ॥
दाता पात्रने देय, त्रिनाव अनेदता रे ॥ त्रि० ॥ ९ ॥

अर्थ –१ पहेलु कर्त्ता नामा कारक कहे छे तिहां कर्त्ता आत्मा ड्रव्य ते आत्मशुद्धता निपजाववा रुप कार्य प्रवर्त्तन पाम्यु, पोतानु कर्त्ता छे

२ जे आत्मा पोतानी सिद्धता सर्वगुण पूर्णता नवसनाव स्वरूपाव

स्थानता ते कार्यनामा बीजुं कारक जाणवु, ते कार्य जेणें परिणतिचक्रने प्रवर्त्तवा रूपें क्रियायें नीपजे, ते क्रियानु प्रवर्तावबु ते कार्य ते कार्यने कारकता, नीपजाववा कालेंज छे, नीपना पछी कार्यमा कारकता नथी, उक्त च नाष्ये ॥ तस्मात् बुद्ध्यध्यावसित कार्य अध्यात्मकारणमेष्टव्य इति ॥

३ उपादानपरिणाम आत्मा स्वगुणनी परिणति, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप रत्नत्रयीनी जे परिणति, तत्त्वनिर्धार, तत्त्वरुचि, तत्त्वज्ञान, तत्त्वरमणादिक रूप स्वगुण अहिंसकता, वधहेतु अपरिणमन रुप, स्वरूप यथार्थनासनरूप, परनाव अग्रहणरुप, परनाव अनोक्तारूप, स्वरूपग्रहण, स्वरूप नोगी, परनाव अकरणरूप, स्वरूप एकत्व रुप तत्त्वाराधन, चेतनास्वरूप प्रगटतानुयायी वीर्य, ते उपादान कारण अने द्रव्ययोग समारवा रूप अरिहताजवनादि, यथार्थ आगमश्रवणादि ते निमित्त कारण तेहनु प्रयुजवु आत्मकार्य करवा पणे आत्मानो प्रयोग करवो, ए उत्कृष्ट कारण माटे करणनामा त्रीजु कारक जाणवु, "साधकतम कारण करण" इति वाक्यात् आत्मसिद्धिरूप कार्यनु उत्कृष्ट कारण अने आत्मभक्तिस्वरूपानुयायी तथा गुरुदेव प्रमुख ते करण नामा कारक कहियें

४ आत्मानी सपदा जे ज्ञानपर्याय, दर्शनपर्याय, चारित्रपर्याय, तेहनु दान आत्माने आत्मगुण प्रगट करवारूप देवु, तेहथी जे जे आत्मधर्म निपजता जाय, ते सप्रदान कहियें॥ उक्त च ॥ गाथा ॥ देउं स जस्स त स प याणमिह् तंपि कारण तस्स ॥ होइ तदहित्ताउं,न कीरइ तं विणा जत्तो ॥ इति माटे जे आत्माना अस्तिधर्मनु थवु ते सप्रदानकारक जाणवु इहा दाता आत्मा तथा पात्र पण आत्मा अने आत्माने देय केता देवा योग्य ते पण आत्मधर्म, ए त्रणे नावनी अनेदता छे, एटले गुणनु प्रगट करवु ते देय अने आत्मा दाता तथा आत्मगुणने प्रगट करे ते दातापणु अने गुणनु पात्र पण आत्मा एटले दान, दाता अने ग्राहक, त्रणे अनेद छे ॥ २ ॥

स्वपर विवेचन करण, तेह अपादानथी रे ॥ ते०॥
सकल पर्याय आधार, सबंध आस्थानथी रे॥स०॥
बाधक कारक नाव, अनादि निवारवा रे ॥ अ० ॥
साधकता अवलबि, तेह समारवा रे ॥ ते० ॥ ३ ॥

अर्थ –५ जे आत्मायी समवायें रह्या तेह्ने स्वधर्म आत्मधर्म कहियें अने तेह्थी विपरीत जे मोहादिक कर्म अशुद्ध प्रवृत्ति ते परभाव कहियें, तेह्नु विवेचन करवु, भिन्न करवु, अशुद्धतानो उच्छेद करवो, दोषनो त्याग करवो, एटले जे दोषविश्लेष करवो, अर्थात् अनादिससार कर्त्तापणु तथा भोक्तापणु ते तजीने जे आत्मस्वरूप कर्त्तापणु भोक्तापणु तेहीज प्रगट करवु, ते पाचमु अपादान कारक कहियें

६ सकल केता समस्त सर्वपर्याय तेह्नो आधार ते आत्मा ठे, आत्मा तथा आत्मपर्यायथी स्वस्वामित्वसबध ठे, व्याप्य व्यापक सबध ठे ग्राह्यग्राहक सबध ठे, आधाराधेय सबध ठे, ए सर्वनु आस्थान केता ते कारण रूप क्षेत्र ते आत्मा ठे, ते आस्थानता माटे आत्मा आधार ठे, ए आधारनामा ठहु कारक जाणवु ए ठ कारक साधक पणाना कह्या हवे ए साधकपणु केम पामे ? ते कहे ठे बाधक जे परभाव तेह्ने अनुयायी अशुद्ध कर्त्तादि कारक पणु मिथ्यात्व असयम कषाय रूप भाव अशुद्धतारूप सामान्य चक्र अशुद्धताव्यानुगत अशुद्धकर्त्तापणु तेह्ने निवारवु ते चक्र रोकीने स्वरूपानुगत करवु, तेमाटे ए अनादिनी भूल टालवी, जिहा सुधी कर्त्ता परभावकारक ठे, तिहा सुधी काइ साधकता नथी जिहा सुधी कर्त्ता अशुद्धकार्यानुयायी सामान्य चक्र ठे, तिहा सुधी शुद्धसाधकतानो अश पण उपन्यो नथी, श्रीपूर्वें कह्यु ठे, जे आत्मा तत्त्वकर्त्ता पणे थया विना सर्वेशुन प्रवर्त्तन ते बालकनी चाल ठे, तेमाटे कारकचक्र बाधकताथी वारीने, साधकताने आदरवीने ते कारकचक्रने समारवु स्वरूपानुयायी करवु अने पोताना आत्माने एम कहेवु जे हे चेतन ! तु परभावनो कर्त्ता तथा भोक्ता अने ग्राह्कता नहीं, तुतो सपूर्णानदनो शुद्धविलासी ठो, अने तु जे परभावमा रमी रह्यो ठो, तथा परभावनो भोगी थइ रह्यो ठो ? ए तुजने घटे नहीं, तारुं कार्य, तो अनत गुण पारिणामिकरूप स्वरूपभोक्तापणु ठे, तेमाटे हे चेतन्यहस ! हवे तु यथार्थ जिनवाणीरूप अमृत पान करीने, अनादिविभाव विष वारीने पोतानु तत्त्व सभारी स्वपर विवेचनकारी थइने पोतानो जे सहजानद तेह्ने कर एटोज तारु कार्य ठे, तु तेहनु उपादान कारण शक्तिवत ठो, तेह्नो सेवावालो ठो, तु तारी गुणभपदा तारे प्रदेशे प्रगट करवारूप दाननो सप्रदानी ठो, माटे हे चेतन ! ए अनादि अ

शुद्ध परिणामने तुंहीज त्याग करीश, अने तादृशी सत्तानो आधार पण तु हीज छो, माटे तुहीज तादृश तत्त्वने कर, तादृश तत्त्व तु नीपजावीश एम पोतें पोताना आत्माने कहिने, साधकपणु आदरवु ते आदरतां कारक सम रे, कारकने समरवेथी अनुक्रमें आत्मानु स्वकार्य नीपजे, पछी एहीज आ त्मा सिद्ध थाय, माटे एहीज साधनना मार्ग छे, साधन कीधे कार्यनी सिद्धि थाय, ए क्रम छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

शुद्धपणे पर्याय, प्रवर्त्तन कार्यमे रे ॥ प्र० ॥ कर्त्तादिक परिणाम, ते आतम धर्ममे रे ॥ ते० ॥ चेतन चेतन भाव, करे समवे तमे रे ॥ क० ॥ सादि अनतो काल, रहे निजखेतमे रे ॥ र०॥४॥

अर्थ – पहेलो शुद्धपणे निष्पन्न आत्माना ज्ञानादिक पर्यायनु जा णवा देखवा रूप कार्यनु प्रवर्त्तन, उत्पाद व्ययरूप परिणमन, ते कार्य नो कर्त्ता आत्मा छे, बीजु आत्मगुणनु परिणमन ते कार्य, त्रीजु आ त्मगुणज्ञानादिक ते करण, चोथु आत्मगुणनो लाभ ते सप्रदान, पांच मु परभाव त्यागपरिणति ते अपादान, छठ्ठु अनतगुणनु राखवु, ते आ धार, ए छ कारकनु चक्र ते सिद्धावस्थाने विषे सदा स्वाधीनपणे फरि रह्यु छे, तेहथी शुद्धनिष्पन्नपणे जे स्वपर्यायनु प्रवर्त्तन, तेहने कर्त्तादिक छ कारक तेहनु जे परिणमन ते आत्मधर्ममांहेज छे, एटले सिद्धपणे जे कर्त्तादिक छ कारक ते स्वरूपमध्येज छे चेतन केतां आत्मा ते पोतानो चेतनभाव केता आत्मभाव करे, समवेतमे केतां [समवाय सबधमा छे, एटले आत्मा आत्मभावनो कर्त्ता छे, ए समवायसबधें मूलपणे सादि अनता कालपर्यंत निजखेतम केतां पोताना असख्या ता प्रदेशरूप क्षेत्रमध्यें आत्मधर्ममा निष्पन्न सिद्धपणे रहे, सिद्धनी आदि छे, परतु अत नथी, माटे सादि अनतो काल स्वक्षेत्र स्वस्वरूपमां आत्मा रहे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

परकर्तृत्व स्वभाव, करे ता लगे करे रे ॥ क० ॥
शुद्ध कार्य रुचि भास, थये नवि आदरे रे ॥ थ० ॥
शुद्धातम निज कार्य, रुचे कारक फिरे रे ॥ रु० ॥
तेहिज मूल स्वभाव, ग्रहे निज पद वरे रे ॥ ग्र० ॥ ५ ॥

अर्थ —पर केता जे नावकर्म, द्रव्यकर्म अने नोकर्म, तेहने कर्त्तापणा ने न्नावे करे तिहां सीम तेहनेज करे, एटले ए परकर्त्ता पणु अनादिका लथी करे छे जिहां सुधी परनो रागी, परनो जोगी, तिहा सुधि परकर्त्ता पणु ए आत्मा करे, पण जे वारें शुद्ध, निर्मल, निरावरण, स्वगुण प्रगट करवा रूप, कार्यनी रुचि थाय, तेवारें परकर्त्तापणु आदरे नहीं, शुद्ध आ त्मस्वरूपनु स्याद्वाद रीतें परमानदपणे नासन तथा रुचि तेहीज कारक पलटाववाना बीज छे ते माटे जे सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान ते मोक्षनु मू ल छे, शुद्धात्मअनतज्ञान, दर्शन, अव्याबाध सुखमयी, अरुपी, सहजा नदरूप आत्मधर्म सत्ताप्राग्नाव,सकल परन्नावव्यतिरेकी, अरागी,अद्वेषी, असगी अयोगी, अलेशी, अकषायी, असहायी, एहवु शुद्धानदरूप स्वकार्य, तेहनी रुचि थये थके कारक चक्र फिरे, जिहां सीम परपौद्गलिक सुखनी रुचि छे तिहा सीम परनो कर्त्ता छे तेहथी सर्वकारकनु चक्र ते रूपेंज परिणमे छे, अने जे अवसरें जेदज्ञान धाराथी, आत्मा परविवेंज न करीने पोतानु आत्मस्वरूप एक उपरग धर्म जाणु, तेहनेज हित मा न्यु, तेवारें ते आत्मिक धर्मनीज रुचि उपजे, पछी जेहनी जेहने रुचि उ पजे, ते तेहीज कार्य करे, तेवारें कर्त्ताधर्म स्वकार्यने करे, सर्व कारकचक्र स्वकार्याश्रित थाय, तेवारें तेहीज पोतानो अचल, अखम अविनाशी, नि प्रयासी, स्वरूपपरिणमन रूप जे मूलस्वन्नाव स्वधर्म तेहने ग्रहण करे, केम जे ए कारक मूलधर्मने ग्रहे छे, तेहथी निज केता पोताना परमा त्म, पूर्णब्रह्म, पूर्णानद पदने वरे, पामे, कृतकृत्य, अक्रिय, अकप, अनत, चिछक्ति, अरुपी, अव्याबाधसुखी, एहीज आत्मा थाय ॥ इति ॥ ५ ॥

कारण कार्यरूप, अछे कारक दशा रे ॥ अ० ॥
वस्तु प्रगट पर्याय, एह मनमें वस्या रे ॥ ए० ॥
पण शुद्धस्वरूप ध्यान, ते चेतनता ग्रहे रे ॥ ते० ॥
तव निजसाधक न्नाव, सकल कारक लहे रे ॥ स० ॥६॥

अर्थ —ए छ कारक ते कारण तथा कार्यरूप छे, कार्यने निपजाववा रूप छे, माटे कारणनाज जेद छे, सर्वकार्य कर्त्ताने आधीन छे कर्त्ता जे का र्य करे, ते कारणादि विना थाय नहीं, माटे वस्तु केतां आत्म पदार्थ,तेह

ना ए ठ कारक ते प्रगट निरावरण पर्याय ठे,एम मनमा वस्तु जे कर्त्तापणु तेने आवरण नथी, कर्त्तापणुं विशेष स्वनाव ठे, अने विशेष गुणने तथ पर्यायने आवरण ठे, परतु स्वनावने आवरण नथी,स्वनाव तेह्ना कारण नूत गुण चेतना तथा वीर्य तेने आवरवे कर्त्तापणानी प्रवृत्ति मद पडे, परतु कर्त्तापणु मूलगु अवराय नहीं, ते चेतनावीर्य विपरीत परिणमवे, परना व कर्त्तापणे प्रवर्त्यो, तेह्थी पोतानु स्वरूप अवरायीज गयु, ते अवराणु तेह्थी सस्वनावने करी शके नहीं, अने अक्षरनो अनतमो नाग, चेतना अने योगस्थानरूप वीर्य, क्षयोपशमी रह्यो, परतु ते अनादि चालथी पर नावानुयायीज ठे, तेह्थी स्वरूपकर्त्ता पणु तो थयु नहीं, तेवारे कर्त्तापणे परनावने करतो, आश्रवबधरूप कार्यनो कर्त्ता थयो, एटले अशुद्धकार्य कस्यु, परतु अवराणु नहीं, तेह्थी कर्त्तापणु अनावृत थके कारक पण अव राणां नहीं, जो कारकनु चक्र अवराय, तो आश्रवनाव बंधपद्धति केम करे ? तेह्नो आदाता अनिनवपर्यायनो त्यागी पूर्वपर्यायनो आधार, अशु द्धतानो कोण थाय ? माटे कारक निरावरण ठे,परतु विकारी थया, तेह्थी मूलस्वरूपथी चूक्या एम थयु ह्वे एनु पलटणपणु पण आत्मा करे, तो थाय, ते कहे ठे जे चेतन केतां चेतना जेवारे साकार अनाकारने यथार्थ नासन करीने पोताना शुद्धस्वनावने ग्रहे, नासनप्रतिरुचिनु आचरण पणु अंगीकार करे, तेवारे एह्वीज सकल केता ठए कारक निज केतां पोतानो सा धकनाव जे कर्मविदारण स्वरूप प्रगट करवारूप नाव,तेने लहे केता पामे, एटले एह्वीज कारक ते १ स्वधर्मकर्त्ता ते कर्ता,२ स्वधर्मपरिणमन ते कार्य, ३ स्वधर्मानुयायी गुणपरिणति,चेतनावीर्य शक्ति,ते करण,४ साधनगुणशक्ति नु प्रगटवु, ते सप्रदान,५ पूर्वपर्यायनु निवर्त्तन ते अपादान,६ स्वगुणनु आ धारीपणु ते आधार एम षट्कारक साधकपणु पामीने सिद्धता परमोत्त मतानो उद्धरग समाधि सकल निर्मलता निपजावे ॥ इहां स्वधर्म अवलबवा नी नावना लखे ठे ॥ गाथा ॥ अहम्मिक्को खलु सुद्धा,निम्ममउ नाण दस ण समग्गो ॥ तम्मिठिउ तच्चितो, सव्वेएए खपनेमि ॥ १ ॥ अह आत्मा ज्ञानादि अनत गुणपर्याय रूप, अनतस्वधर्ममयी तथा द्रव्यपणे, असख्य पणे, समुदायपणे एक नु वली निश्चयनयथी शुद्ध नु, यद्यपि अनादि प रनावमा लुब्ध, स्वनाव भ्रष्ट थको अशुद्ध थयो, तो पण स्वजातिथी मूल

धर्मे अनंतज्ञानादि गुणमय, शुद्ध, निष्कलंक, निरामय, निःसंग, निर्दोषी छुं सर्व ममकार परभाव माहारा पणाथी रहित छुं, ज्ञान सकलभासन, परिछेदनरूप, दर्शन सामान्योपयोग तेहिज मयी छु, एहवा भासन रमण, परिणमनरूप, ए आत्मा रह्यो थको सर्व परोपाधिने क्षय करी, स्वशुद्धस्वरूपने ग्रही, सर्व परभाव भेद करी, निर्मलानंद निपजावे ॥ ६ ॥ इति ॥

माहरु पूर्णानंद, प्रगट करवा भणी रे ॥ प्र० ॥
पुष्टालंबन रूप, सेव प्रभुजी तणी रे ॥ से ० ॥
देवचंद्र जिनचंद्र, भक्ति मनमें धरो रे ॥ भ० ॥
अव्याबाध अनंत, अक्षय पद आदरो रे ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थ —एहवी बाधकता परिणम्यो, माहारु कर्त्तादिक कारकपरिणाम ते श्रीअरिहंत परमज्ञाता, स्वरूपरमणी स्वरूपविश्रामी, स्वरूपानंदी, तेहनु स्वरूप जाता, गाता, ते अशुद्ध कर्त्तापणु पलटे, ते पलटवाथी कारक पण पलटे, कारक पलटवाथी कार्यशुद्धसिद्धतारूप, अनंत स्वसंपदारूप नीपजे, तेवारें भव्य जीवने पोतानी तत्त्व नीपजाववारूप शक्ति, ते श्रीअरिहंतजीनी सेवनाथी थाय, तेमाटेज निर्धार कर्यो छे, जे हे प्रभुजी ! माहारो जे पूर्णानंद, पूर्ण अव्याबाध सुख ते प्रगट करवाने पुष्टालंबन केता पुष्ट नियामकी आलंबन केता आधार ते श्रीप्रभुजी भव्य जीवना आधार, मुनिजनना प्राणाधार, आचार्य उपाध्यायजीना परम दयाळ, भावचिंतामणि समान, समकेती जीवना ध्येय, ध्याताने प्रतिछंद रूप अनंत गुणाकर, निर्मल ज्ञानानंदना पात्र, एहवा श्रीजिनराज, माहाराज, सुखसमाज, तेहनी सेवना तेहीज पुष्टालंबन छे, तेमाटे सर्वदेव जे इंद्रादिक तेमध्ये चंद्रमा समान, एहवा जे जिनचंद्र श्रीवीतराग अरिहंत, तेहनी भक्ति, सेवना आज्ञा मानवा रूप, तदनुयायीपणु तेहीज त्राण शरण छे, एहवी भक्ति मनमां धरो, स्थिर राखो, अथ स्तुतिकर्त्तानु संबोधन, हे देवचंद्र ! श्रीजिनचंद्रनी भक्ति केता चरणसेवना ते मनमां धरो, तो अव्याबाध, जिहां परभावनी पीडा नहीं, परमानंदरूप, जेहना अनंत गुण ते गण्या जाय नहीं, अक्षय केता जेहना छेद नहीं, विनाश नहीं, एहवु जे परमस्वरूप पद, ते आदरो, एटले पामो माटे ए आत्मबाधकता तजो । साधकता

मां रमे, सिद्धि थाये, एहीज प्रभुसेवनानुं फल छे, माटे हे सिद्धरुचि जीवो ! तमे श्रीमल्लिनाथ परमपुरुषोत्तम परमेश्वर, निःकारण, जगद्वत्सल, तेहनें गाउं, स्तवो, संभारो, ध्याउं, प्रथमथी साधक जीवने एहीज आधार छे, एहीज जीवन छे ॥ ७ ॥ इति मल्लिनाथजिन स्तवन ॥

॥ अथ विंशतितम श्री मुनि सुव्रतजिन स्तवनं ॥

॥ उलगडी उलगडी सुहेली हो, श्री श्रेयांसनी रे ॥ ए देशी ॥

उलगडी उलगडी तो कीजे, श्री मुनि सुव्रत स्वामीनी रे ॥
जेहथी निज पद सिद्धि ॥ केवल ज्ञानादिक गुण
उल्लसे रे, लहिए सहेज समृद्धि ॥ उο ॥ १ ॥

अर्थ – हवे श्रीमुनिसुव्रत परमेश्वर अद्भुत सरूपी परम अद्दितकनी स्तवना करे छे, मुनि जे निर्ग्रंथ तेहना सुव्रत केतां जला व्रत एहवाश्रीमुनि सुव्रत प्रभु तेहनी उलग केतां सेवा एटले गुणग्राम करियें जेहथी निजपद केतां पोतानुं पद जे परमानंद पद तेहनी सिद्धि केतां निष्पत्ति थाये, वली केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे केता प्रगटे, ज्ञानामृतरसनो जोगी थाय, तथा सहज अकृत्रिम स्वरूपसमृद्धिने पामे, ए प्रभुसेवानुं फल छे ॥ १ ॥ इति ॥

उपादान उपादान निज परिणति वस्तुनी रे, पण
कारण निमित्त आधीन ॥ पुष्ट अपुष्ट दुविध
ते उपदेश्यो रे, ग्राहक विधि आधीन ॥ उο ॥ २ ॥

अर्थ – हवे इहां आत्मसाधन करवामध्यें उपादान ते निज केतां पोतानी परिणति ते वस्तुनो मूलधर्म छे, एटले जे आत्मसत्ता छती छे, ते उपादान कारण छे, पण ते निमित्त कारणने आधीन छे, निमित्त सेवन कर्त्ता उपादान कारण समरे, ते निमित्तकारणना बे भेद छे एक पुष्ट निमित्त, बीजुं अपुष्टनिमित्त, तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्त्ता, ते जे विधें कार्य थाय, ते विधें कार्य ग्रही प्रवर्त्तावे, तो ते निमित्तकारण कार्यनो हेतु थाय पण अविधें ग्रहण करे, तो निमित्त कारण कार्य करे नहीं, जेम कुंभ कार चक्रने फेरवे, तो माटीना पिंमने घटपणे पमाडे, अने नहीं फेरवे तो

न पमाडे. एटले श्रीअरिहंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, परंतु जे रीतें आगममध्यें कह्युं छे, तेविधें आशातना टाली, पुजाशंसा रहित केवलज्ञानादि गुणनी ओळखाण सहित जो सेवे, तो मोक्षनो निमित्त कारण थाय, पण अविधें सेवना, ते कामनी नहीं. माटे ग्राहकने विधि सहित कारण ग्रहवुं, तो ते कार्यने करे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

साध्य साध्य धर्म जेमाहे होवे रे, ते निमित्त अतिपुष्ट ॥ पुष्पमांहे तिलवासक वासना रे, नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ ओ० ॥ ३ ॥

अर्थ — हवे पुष्टनिमित्तनुं स्वरूप कहे छे. साध्य केता करवा योग्य, जे कार्यधर्म, ते जे कारणमां होय, ते तेनुं पुष्ट कारण कहीयें, ते पुष्ट कारण विधियें कार्य करवाने अर्थे ग्रह्यो थको कार्यने करे, पण ते कार्यनो ध्वंसक न थाय. तेहनो दृष्टांत कहे छे जेम तेलने सुगंधवासना करवा रूप कार्य, तेहनुं कारण पुष्प छे, परंतु वासना करवी ते साध्य छे, ते वासना फूलमध्ये छे, अने ते फूल ते तेल तथा तेलनी वासनाना ध्वंसक नथी, तेमाटे ते पुष्टनिमित्त छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यके । कार्यस्य आसन्ननिमित्तं इति तदेव पुष्टं दूरतर कारणनैमित्तिक तत् अपुष्टं ॥ इति ॥ तथा च श्रीसिद्धसेनपूज्यैः ॥ पुष्टहेतुर्जिनेंद्रोयं, मोक्षसद्भावसाधने ॥ इति ॥ तेहथी श्रीअरिहंतदेव ते मोक्षरूप कार्यना पुष्ट निमित्त छे, जेमाटे साध्य जे निरावरण, परमात्मपद ते श्री अरिहंतने विषे छे, माटेज श्री अरिहंत ते पुष्ट निमित्त छे, जो विधियें सेवन थाय, तो एथी मोक्षकार्य निपजे ॥ ३ ॥ इति ॥

दंड दंड निमित्त अपुष्ट घडा तणो रे, नवि घटता तसु मांह ॥ साधक साधक प्रध्वंसकता अछे रे, तिणे नहीं नियत प्रवाह ॥ ओ० ॥ ४ ॥

अर्थ — हवे अपुष्टनिमित्त देखाडे छे, जेम दंड ते घडानुं अपुष्ट निमित्त छे, कारण के जेम फूलमांहे सुगंधवासना छे तेम घटता केतां घट पणुं ते दंडमांहे नथी, कर्त्ताने प्रेरवे कारण छे, ए दंड घटनुं साधक निपजाववानुं कारण पण छे, अने घटनुं प्रध्वंस करवानुं कारण पण छे, जो घट ध्वंसकर्त्ता तेहीज दंडने घट ध्वंस करवाने प्रवर्त्तावे तो घट ध्वंस करवानुं कारण पण तेहीज दंड थाय, माटे ए नियत प्रवाह केतां निश्चयी एक चालनो नथी, जे निश्चे घट करे, ए धर्म एहमां

नथी, अने श्रीअरिहंत परमात्मानुं सेवन ते निश्चे सिद्धतानुं कारण छे, एहने सिद्धिकार्यनी रुचे जे सेवे, तेहने नियमा सिद्धि निपजे ॥ ४ ॥ इति ॥

पट् कारक पट् कारक ते कारण कार्यनुं रे, जे कारण स्वाधीन ॥ ते कर्त्ता ते कर्त्ता सहुकारक ते वसु रे, कर्म ते कारण पीन ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थ — हवे कारणनी पुष्टता कहेवा निमित्त कारक कहे छे १ कर्त्ता, २ कर्म, (कार्य) ३ करण, ४ संप्रदान, ५ अपादान, ६ अधिकरण ए छ कारक छे, ते हरेक कार्य, निपजाववाना कारण छे जिहां कर्त्ता क्रिया करे, तिहां ए छ कारक जाणवा, इहां आत्मा पोतानु सिद्धितारूप कार्य तेने करवा रूप क्रिया करे, तेवारे ए छकारक सर्व होय, तिहां कर्त्ता जे आत्मा तेहनु सिद्धरूप कार्य अभेद छे, ते माटे तेना कारक पण अभेद छे, अने भिन्नकार्यनो कर्त्ता भिन्न होय, तेवारें कारक पण भिन्न होय, ए नीति छे, परतु निमित्त कारण तो सर्वकार्यमां भिन्नज होय, माटे सिद्धरूप कार्यनु निमित्त कारण श्रीअरिहंत छे, तेहने कारक उपादान पणे सर्व पहोंचे छे, ए नीति छे

हवे छ कारकमा प्रथम कर्त्ता नामे कारक छे, तेहनु लक्षण कहे छे जे कार्य निपजवानु स्वाधीन कारण एटले सर्वकारक तेहने आधीन होय ते कर्त्ता कारक कहीयें स्वतंत्र कर्त्ता, इति वचनात् ॥ कारणमहवा छद्धा त हसतत्तोत्ति कारण कत्ता ॥ श्रीभाष्यसुधानुविवाक्य ॥ सर्वकारक ते कर्त्ताने वशें छे आधीन छे हवे बीजु कर्मनामा कारक, ते जे कारणें पुष्ट थाये अने कखु थाय, ते कर्मकारक कहीयें ॥ उक्त च ॥ कम्म किरियाकरण इति ॥

कार्य कार्य संकल्पे कारकदशा रे, छती सत्ता सद्भाव ॥ अथवा तुल्य धर्मने जोयवे रे, साध्यारोपण दाव ॥ जि० ॥ ६ ॥

अर्थ — इहां कोई पूछशे जे कर्म तो कार्य छे, पण कारण नथी, तेहने उत्तर कहे छे जे कर्त्ताने पहेला तो कार्यनो संकल्प थाय छे, ते वखतें ते कर्त्ता पहेला संकल्पे कार्यने विचारे, तेवार पछी कार्य करे, तेमाटे कारण कहियें ॥ उक्त च विशेषावश्यके ॥ सर्वेऽपि बुद्धो संकल्प्य कार्य करोति इति ॥ व्यवहारस्ततो बुद्धाऽध्यवसितस्य कुंभस्य चिकीर्षितो मृन्मय कुंभस्तद्बुद्धा भवनतया कारण भवति ॥ अथवा स्यासादि काल ते घटकार्यनु कारण

, अने कर्त्ताने तो स्यासादि कार्य छे, अथवा जे कार्य निपजाववानुं
त्तिकादिक मूल उपादान, तेहमा जे कार्यनी स्थिति सत्तायें योग्यतापणे
ही छे, ते कार्यपणु सत्तागत ते प्रागभावी कार्यनु कारण छे ॥ उक्त च ॥
अथवा नव्यो योग्य सरूपलाभस्येति शक्त्युत्पादविमुमत सुकरत्वात्कार्ये
प्यात्मन कारणमिष्यते अवश्य च कर्मण कारणत्वमेष्टव्य ॥इति॥सत् भाव
नीक पणे जे कारण उपादान निमित्त ते सर्व नजीक करे, कार्यने
र्यें ते कारणनुं सत् भाव छतापणुं ते कार्य बुद्धियें मेळवे, तेमाटे कार्यने
ारण कहे, अथवा तुल्यधर्मनु जोवु, जे मुजने एहवु कार्य निपजाववु छे,
ेम कोइ आत्मा मोक्ष पूर्णानंद करवाने उद्यमी थयो, ते सिद्धरूपनिष्पन्न
त्त्वने जोवे, अने विचारे जे मने माहारू एहवु तत्त्व निपजाववु छे, एम स
ल्प करवो. ते तुल्य धर्म जोइ कार्यनो उद्यम घणो थाय, तेमाटे
ार्यने पण कारण कहेवु॥ उक्त च श्रीपूज्ये किं बहुना॥ यथा यथापुक्तितो
टते तथा सुथाया कर्मण कारणत्व वाच्यमन्यथा कर्मणो कारणत्वे करोति
ति कारकमिति पक्षे कारकत्वाद्युपपत्तिरेव स्यादिति ॥ ए रीतें कर्मने
ापे कारकपणु मानवु एमज कारकता छे, साध्यनु आरोपण करवु एह
र्मने कारकपणु जाणवु ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

अतिशय अतिशय कारण कारक करणता रे, निमित्त
अने उपादान ॥ सम्प्रदान सम्प्रदान कारण पद भव
नथी रे कारण व्यय अपादान ॥ जं० ॥ ७ ॥

अर्थ –अतिशय उत्कृष्टपणे जे प्रवर्त्तन ते करणनामा त्रीजु कारक कहि
, तेहना बे भेद छे एक निमित्त कारण, बीजु उपादान कारण, ते
ात्माना सत्ता धर्मनु निमित्त कारण श्रीअरिहंतादिक अने कारण पदनु
वन थयु एटले उपादान अधिक अधिक करणता पामे, ते कारणपर्याय
ो लाभ, ते सम्प्रदान पण जाणवु, जे उपादान कारणमां नवु नवु
ारण पर्याय पामे, ते चोथु सम्प्रदानकारक कहियें, अथवा कार्यना
वा नवा पर्यायनु प्रगट थवु ते सम्प्रदान कहियें एटले कार्यपदनु भ
न ते सम्प्रदान कहियें. अने पाछला कारण पर्यायनो व्यय थतो विनाश
अपादान पांचमु कारक कहियें, जोतें कारणपर्यायनो नाश नव्य कारण

तानु निपजवु, ते रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थ ॥

भवन भवन व्यय विणु कारज नवि होवे रे, जिम दृषदे न घटत्व ॥
शुद्धाधारशुद्धाधार सुगुणनो द्रव्य छे रे, सत्ताधार सुतत्त्व॥३०॥८॥

अर्थ – कोइ कहेशे जे सप्रदान तथा अपादान तेहने शी कारणता छे ? तेहने उत्तर कहे छे जे भवन केता नवा पर्यायनु थवु, व्यय केता पूर्वपर्यायनो नाश, ए थया विना कार्य निपजे नहीं, जेम माटीनो पिंम, ते पिंमपर्यायनो व्यय, स्थासपर्यायनु भवन तथा स्थासपर्यायनो व्यय कोशपर्यायनु भवन, कोशपर्यायनो व्यय, कुशल पर्यायनु भवन, कुशल पर्यायनो व्यय, कपाल पर्यायनु भवन, कपाल पर्यायनोव्यय, घटपर्यायनुं भवन, ए रीतें कार्यनी उत्पत्ति छे, तेम सिद्धताने नीपजाववाने विषे पण मिथ्यात्वपर्यायनो व्यय, सम्यक् पर्यायनु भवन, तेहना साधकपर्यायनो जीर्णनो व्यय, नवानो उत्पाद, ए रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे, परतु भवन तथा व्यय विना कार्य थाय नहीं, जेम दृषदनेविषे घटपणु न थाय, यद्यपि कर्त्ता चक्रादिक व्यापार करे, तो पण दृषद (पाषाणनो) घट न थाय, श्या माटे जे दृषद (पाषाणने) विषे स्थासादि घटपर्यायनु भवन व्ययपणु नथी, तेमाटे निपजे नहीं,

हवे छठु आधारकारक कहे छे स्वगुण जे ज्ञानादिक तेहनो शुद्ध आधार द्रव्यपदार्थ छे, एटले जीव, द्रव्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, दान, लाभ, भोग, उपभोग, अव्याबाध, अमूर्त्तता, अगुरुलघुता, असंगता, निर्मलता, कर्तृता, पारिणामिकतादि मूलगुण, सर्वनो आधार जीवद्रव्य छे, एम धर्मास्तिकायादि सर्व द्रव्य पोत पोताना गुणना आधारें छे, तेहथी धर्मास्तिकायने आधार नामें कारक कहो ? एम कोई पूछे, तेहने उत्तर जे धर्मास्तिकायने गुणाधारीपणु छे, परतु कर्तृत्वपणु नथी, तेमाटे कारकपणु न गवेष्यु शुद्धतत्त्वने सत्तानो आधार छे, सत्ता ते आत्मानो मूलधर्म जे निरामय, तेहनो आधार सुतत्त्व छे ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थ ॥

आतम आतम कर्त्ता कार्य सिद्धता रे, तसु सा
धन जिनराज ॥ प्रभु दीठे प्रभु दीठे कारज
रुचि उपजे रे, प्रगटे आत्मसमाज ॥ ३० ॥ ९ ॥

अर्थ – हवे उपनय करे छे आत्मा स्वरूपरुचि, नवोद्विग्न, मोक्षाभिलाषी, सम्यक्दर्शन गुण प्रगटे, जे स्वरूपनुं कर्त्तापणु विरतिपणु तत्त्व ध्यान, तत्त्वतन्मयताद्विकने करवे कर्त्ता छे एटले तत्त्वार्थी आत्मा, कर्त्ता, कार्यसिद्धता, सकलगुणप्रगटतापणु, नि कर्मावस्था, तेहनु साधन निमित्त कारण श्रीजिनराज सर्वज्ञ छे, जे कारणें प्रभु श्रीपरमात्मा दीठे यथार्थ जासन थाय, कार्यनी स्वसत्ता प्राग्नावनोगीपणानी रुचि उपजे, ते रुचि संपूर्णसिद्धतानुं मुख्य कारण छे, ते रुचि वधती साधनजाव, ध्यानावस्थावलंबीने पूर्णानंदता निपजावे, आत्मानो समाज केता सम्राज प्रगटे, तेहथी मोक्षनो कर्त्ता आत्मा खरो पण मोक्षनी रुचि विनानु कर्त्तापणु प्रगटे नहीं, अने ते रुचि श्रीअरिहंतदेवने दीठे निपजे, माटे श्री अरिहंतनु दर्शन, ते रुचिनु कारण छे, अने रुचिते मोक्षनुं कारण छे एवी रीतें मोक्षरूप कार्यनु मूलकारण श्री अरिहंतज छे, तेमाटे माहारे मोक्ष निपजे, ए उपकारतत्त्वहितना करनार, श्रीअरिहंतनो जाणु ॥ ए ॥ इति ॥

वंदन वंदन नमन सेवन वली पूजना रे, स्मरण
स्तवन वली ध्यान ॥ देवचंद्र देवचंद्र कीजें जगदी
शनु रे, प्रगटे पूर्ण निधान ॥ उ० ॥ १० ॥

अर्थ – तेमाटे वंदना केतां कर जोडन, नमन केतां शीश नमाववारूप, सेवना ते आज्ञा मानवारूप, वली पूजना ते पुष्पादिकनी, तथा स्मरण ते वारंवार गुणनु संजारवु, स्तवन ते वचनें करी गुणनु कथन, हर्षथी करवु, तथा ध्यान ते प्रभुगुणे चित्तनी एकाग्रतानु करवु, एटला सर्व उपाय छे, ते सर्व देवचंद्र स्तुतिकर्त्ता ते पोताने कहे छे जे वंदनादिक कर्त्तव्य कीजें, श्री जगदीशनी त्रैलोक्यदयालनी ते करता सेवा प्रगटे केतां प्रकाश पामे, पूर्ण निधान, अनंतगुण, आत्मशक्ति, परमानंदरूप निधान प्रगटे एटले श्रीजिनराज परमात्मानी सेवा करता पोतानी पूर्णपरमात्मता निपजे, अविनाशी धन प्रकाश पामे, ए श्री मुनिसुव्रत देवाधि देवनो परम उपकार छे ॥ १० ॥ इतिश्री मुनिसुव्रजिनस्तवनं संपूर्ण ॥ २० ॥

वर्षाकालें सर्वलोक पोतानें घरे रहे तेम इहां पण अनादिनो उद्धत परभाव विभावी आत्मा ते अनेक विषय विकाररूप जारमां रहेतो हतो, तेने श्रीजिन कर्मदेवने निमित्त स्वरूपनी प्राप्ति थइ, चेतनसमताने सग रंगे केली रीज करीने क्रमथी थको समतामां रमी रहे, स्वात्म स्वभावमां अनुभव रंगे रमी रहे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

सम्यग्दृष्टि मोर, तिहां हरषे घणु रे ॥ ति० ॥
देखी अद्भुत रूप, परम जिनवर तणु रे ॥ प० ॥
प्रभुगुणनो उपदेश, ते जलधारा वही रे ॥ तें० ॥
धर्मरुचि चित्त भूमि, माहे निश्चल रही रे ॥ मा० ४ ॥

अर्थ — जिनविरहरूप मेघ देखीने सम्यग्दृष्टि तत्त्वरुचिरूप मोर ते हो हरषे घणे आनंद पामे. श्रीतीर्थंकर देवनु रूप केहेवु छे ? जो अ नंत परमाणुरूप सर्व देवता मलीने विकुर्वे, तो पण श्री अरिहंतना पगना अंगुठा समान रूप करी शके नहीं, परंतु परमशीतल निर्विकारी परमे श्वरनु रूप देखीने सम्यग्दृष्टि जीव वर्षाकालना मोरनी परे हर्ष आनंद पामे

प्रभु श्री तीर्थंकर देव, तेनी भक्तिमां परिणम्या, एवा तत्त्वरुचि जीव, ते पोताना वचन उच्चार करीने प्रभुना गुणग्राम करे, ते प्रभुगुणगानरूप मे घनी जलधारा, वर्षीने ते जलधारा धर्मरुचि जीवना चित्तरूप भूमिका माहे नि श्चल रहे, एटले तत्त्वरुचिवंत जीवना चित्तमां प्रभुना गुण समाइ रहे ॥ ४ ॥

चातक श्रमण समूह, करे तब पारणो रे ॥ क० ॥
अनुभव रस आस्वाद, सकल दुःख वारणो रे ॥ स० ॥
अशुभाचार निवारण, तृण अंकुरता रे ॥ तृ० ॥
विरति तणा परिणाम, ते बीजनी पूरता रे ॥ तें० ॥ ५ ॥

अर्थ — प्रभुदेशनारूप जलधारा वरसता श्रमण निर्ग्रंथ तत्त्वरमणी रूप चातक ते धारा ते पारणु करे छे, एटले सम्यग्दर्शन कार्ये स्वभावरूप स्वानंद अनुभवनी पीपासा पूर्ण थती ते पीपासा श्रीजिन भक्ति रूप कारण पामीने आत्मस्वरूपनु यथार्थ ज्ञान ते रूप अनुभव तद्रूपता रस नु आस्वादन करीने सकलदुःखनु निवारण करे, एवु ए पारणुं करे

छु छे? जे सकल सांसारिक विजाव जे कर्मजार उमता गुणावरणतादिक तेनो वारणो केतां वारणहार छे,एटले तइपइ खनु निवारण करे छे

इहां वर्षाकाले नीनां तृण ऊगे, तेम जिनजक्तिरूप मेहमांहे पण अशु नआश्रवनुं निवारण थयु, ए तृणना नीना अंकूर प्रगटया.

वर्षाकाले करसणी लोक धरतीमां बीज वावे, तेम इहां आश्रवथी विरमवारूप विरतिना परिणाम वपना, तेहीज बीजनी पूर्णता थइ ॥ ५ ॥

पंच महाव्रत धान्य, तणा कर्षण वध्या रे ॥ त० ॥
साध्यजाव निज थापी, साधनतायें सध्या रे ॥ सा० ॥
क्षायिक दरिसण ज्ञान, चरणगुण ऊपना रे ॥ च० ॥
आदिक बहुगुण सस्य, आतम घर नीपना रे॥आ०॥६॥

अर्थ – वर्षाकालमां जे बीज वाव्यां होय, ते कणीने वधे, इहां इच्य तथा जावथी पांच माहाव्रत "सवाउं पाणाइवायाउं विरमणं" इत्यादिक धान्य कणने वधसगारिकजी माहाव्रत ते निरतिचार थया, तेहीज ध्याननां कर्षण वृद्धि पाम्यां, पण साध्यजाव केतां साध्यपणु निज केतां पोतानो आत्मजाव ते साध्यपणे थापीने साधन कार्य निपजाववानी शक्ति, तेपणे सध्या, एटले साधनरूप थया. जावार्थ जे आत्मानी सत्ता संपूर्ण प्रागजाव करवी एहवा साध्य धारीने, माहाव्रत परिणतिरूप साधनायें परिणम्या, क्षायकनिरावरण, संपूर्ण केवल ज्ञान, केवल दर्शन, यथा ख्यात चारित्र प्रमुख गुण ऊपना प्रगट थया इत्यादिक सगुणनी अन ता तेहीज सस्य केतां धान्य ते जे आत्मा जिनसेवनमयी थयो हतो, तेहना घरे नीपना, आत्मप्रदेशसर्व ज्ञान, दर्शन, चारित्रनी पूर्णता पाम्या॥६॥

प्रजु दरिसण महा मेह, तणे प्रवेशमे रे ॥ त० ॥
परमानंद सुजिक्ष, थया मुज देशमे रे ॥ थ० ॥
देवचंद्र जिनचंद्र, तणो अनुजव करो रे ॥ त० ॥
सादि अनंतो काल, आतमसुख अनुसरो रे ॥ आ०॥७॥

अर्थ – एहवा एकवीशमा जिनेंद्र श्री नमिनाथ, परम दयालु, गुण समुद्र, जगधयजीवना जावजास्कर, कर्मरोगना माहावैद्य, तेहनु जे

दर्शन केतां मुखनुं जोवुं, अथवा शासन, अथवा दर्शन शब्दे समकित, तेहीज माहावर्षाद, तेहने प्रवेशें केतां पेसवे करीने परमानंद आत्मिक आनंदरूप सुनक्ष केतां सुगाल थयो, माहारा देश केतां असंख्यात प्रदेश रूप क्षेत्रने विषे तेमाटे देवमांहे चंद्रमा समान अथवा देवचंद्र जे स्तुतिकर्त्ता तेहनुं संबोधन हे देवचंद्र! श्रीजिनचंद्र श्रीवीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तेहना अनुभव गुणज्ञानादिनुं आस्वादन करो, तेहनाज गुण बहुमानमांहे लीन रहो, तो थोडा कालमां सादि केतां जेहनी आदि छे, परंतु अनंत केतां छेडो नथी, एहवुं जे अविनाशी आत्मिक सुख, तेहने अनुसरी केतां पामो, एटले अहो भव्यजीवो! तुमें श्रीनमिजिनथी संपूर्णस्वरूपभोगी, एहवा श्रीजिनेश्वर तेहना गुणनुं बहुमान तथा तेहनी आज्ञानुं मानवुं, तेमध्ये रहो, तो संपूर्णसिद्ध अविनाशी, अक्षयआत्मिक, अनंत संपदा पामो, स्वसंपदा प्रगट करवानो ए नियमा पुष्ट उपाय छे ॥ ७ ॥ इति श्रीनमिनाथजिनस्तवन संपूर्ण ॥ २१ ॥

॥ अथ द्वाविंश श्रीनेमिनाथजिनस्तवन ॥

॥ पद्मप्रभजिन जइ अलगा वस्या ॥ ए देशी ॥

नेमि जिनेसर निज कारज कर्युं, छांड्यो सर्व
विभावो जी॥ आतमशक्ति सकल प्रगट करी,
आस्वाद्यो निज भावो जी ॥ ने० ॥ १ ॥

अर्थ – हवे बावीशमा श्रीनेमिनाथनी स्तुति करे छे जादवकुलमां तिलक समान, माहाउपगारी, एहवा श्रीनेमिनाथ जिनेश्वर निज केतां पोतानुं कार्य कर्युं, क्यांही पण आत्माने खरडवा दीधा नहीं, छांड्यो केतां तज्यो सर्व केतां समस्त चार निक्षेपें विभाव ते अंतरंग तथा बाह्य कारणथी सर्वविभाव तज्यो, आत्मानी शक्ति असंख्यात प्रदेशने विषे जे अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत सुख, अनंत अगुरुलघु, अनंत दान, अनंत लाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य, अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, परम असंगता, अभोगीतारूप पोतानुं प्रभुत्व, विभुत्व, कारणत्व, कार्यत्व, व्यापकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, अस्तित्व,

विचारवु, जे एने पण ग्रहवु नहीं, केम के एना ग्राहक तो अनंता जीव निगोदमध्यें पड्या छे ॥ ३ ॥ इति तृतीयगाथार्थ ॥

रागीसंगे रे रागदशा वधे, थाए तिणे संसारो जी॥ नीरागी
थी रे रागनु जोडवु, लहिएं भवनो पारो जी ॥ ने० ॥ ४ ॥

अर्थ – हवे पांचमु जीवद्रव्य ते अनेक आत्मा छे, वली स्वजाति पण छे, माटे तेहने ग्रही राग करीयें, परंतु एक अवगुण एहमा पण दीसे, ते कहे छे, जे संसारी जीव तो राग द्वेष संयुक्त छे, माटे तेहनो संग कीजें तो आपणने पण राग दशा वधे अने रागदशा तो अजिनवचनो हेतु छे, अरिहंतदेवना आगम जोता अने आत्मधर्म जोता, राग तो तजवा योग्य छे, रागथी चार गतिरूप संसार थाए वधे, माटे ए पण आत्महित न हीं, तेमाटे नीरागी, वीतराग, परमचारित्री, सर्वपरभावत्यागीथी, जो राग जो डीयें, तो भवनो पार पामीयें, यद्यपि क्षय तो रागनोज करवो छे, पण प्रथम राग पलटाववानो ए उपाय छे, जे नीरागीथी राग जोडीयें, एटले ते नीरागी राग करे नहीं, तेथी अनुक्रम ए आपणा राग पण क्षय पामे, तेवारें ए आत्मा वीतरागभाव भजे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

अप्रशस्तता रे टाली प्रशस्तता, करता आश्रव नासे जी॥
संवर वाधे रे साधे निर्जरा, आतमभाव प्रकासे जी॥ने०॥ ५॥

अर्थ – तेमाटे कामरूप जे अप्रशस्त राग हता, ते टाली अरिहंतपणा रूप प्रशस्तराग करवो, गुणी उपर राग ते प्रशस्त छे, ते साधनकालें का मनो छे, ते प्रशस्त राग करता अनुक्रमे आश्रव नाश पामे, नवा कर्म जे वारूप अशुद्ध परिणति टले, वली प्रशस्तरागी जीव, ते गुणीने अव लंब्यो रहे, तेहथी सगुणनी एकत्वता थये, ते सगुण एकत्वता परिणा मथी संवरपरिणति वधे, अने पूर्वकृत कर्मनी निर्जरा परीसाटरूप ते पण सवे केता नीपजे, ते संवरनिर्जराने प्रगटवे आत्मानो भावधर्म, अरूपीशक्ति प्रकाश पामे, निरावरण थाय ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थ ॥

नेमिप्रभुध्याने रे एकत्वना, निजतत्वे एक तानो जी ॥ शुक्ल
ध्यानें रे सावि सुसिद्धिना, लहियें मुक्ति निदानो जी ॥ ने० ॥ ६ ॥

॥ अथ त्रयोविंश श्रीपार्श्वनाथजिनस्तवन ॥

॥ कडखानी देशी ॥

सहजगुण आगरो स्वामी सुखसागरो, ज्ञानवैरागरें प्रभु सवायो॥
शुद्धता एकता तीक्ष्णताभावथी, मोहरिपुजिति जय पडह वायो॥१॥

अर्थ – हवे त्रेवीशमा श्रीपार्श्वनाथ पुरपादानी परमेश्वरनी स्तुति करे छे श्रीपार्श्वनाथ प्रभुजी कहेवा छे ? सहज अकृत्रिम वस्तुना मूल धर्म ज्ञानानंदादिक तेहना आगर छे, अनंत आत्मगुण उपजवाना धाम छे,स्वामी केतां स्वसंपदाना अधिपति छे, सुखना सागर छे, एटले जे अतींद्रिय, स्वाधीन, निरामय, नि प्रयास, अविनाशी सुख तेना समुद्र छे, नि सग सुखना पात्र छे, केवलज्ञानरूप वयर केता वज्र ते हीरो तेहना आगर छे, सदा सर्वदा प्रभु तुमें सवाया छो, ए श्रीपार्श्वनाथ स्वामीनी शुद्धता, ज्ञाननी यथार्थता, निर्मलता, एकता, ते चारित्रनी स्वरूप तन्मयता तीक्ष्णता, ते वीर्यनी तीव्रता, वीर्यनी तीक्ष्णता ते धारा छे, अने चारित्रनी एकता ते पुग्लथी प्रेरणा छे, तथा ज्ञान ते प्रकाश देखाडण हार छे, तेमाटे ए मलेज मोक्ष छे कोई कहेशे जे सम्यक्दर्शन कां न कह्यु ? तेहने उत्तर जे ज्ञान ते दर्शनयुक्तनेज कहे छे, एटले ज्ञानमध्ये दर्शननु एकपणु छे, तथा तप ते वीर्यनी तीक्ष्णता कही छे, उक्त च आवश्यकनिर्युक्तौ ॥ नाण पयासगलो, हगो उ तवो सयमो उ गुत्तिकरो ॥ तिएहवि समाउंगो, मोक्खो जिणसासणे जणीउं ॥ १ ॥ एटले शुद्धता, एकता, तीक्ष्णताथी मोहरिपुने जीतीने अर्थात् ज्ञान, चारित्र, तथा तपना बले मोहादिक कर्मने हणीने, जयनो पडहो वजाव्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

वस्तु निजभाव अविभास निकलंकता, परिणति
वृत्तिता करी अभेदे ॥ भाव तादात्म्यता शक्ति उ
ल्लासथी, संतति योगने तु उछेदे ॥ स० ॥ २ ॥

अर्थ – हवे शुद्धतादिकनु स्वरूप कहे छे वस्तु जे जीवादिक छ द्रव्य, तेहना जे निज केतां पोताना भाव ते गुणपर्यायरूप उत्पाद, व्यय परिणतिनो अविभास केता जाणवु, ते पण निकलक एटले एकांतता अय

दोष गुण वस्तुनी लखीय यथार्थता, लही उदासी
नता अपरनावे ॥ ध्वसि तज्जन्यता नावकर्त्तापणुं,
परम प्रनु तु रम्यो निज स्वनावें ॥ स० ॥ ३ ॥

अर्थ – हवे वली एज शुद्धता, एकता, तीक्ष्णता ए त्रणेनो अर्थांतर कहे छे वस्तु जे वस्त्र, वन, वनिता, शीत, आतप, विषादि, तेना दोष ते अशुन वर्णादिक तथा गुण ते शुनवर्णादिक, तेहने लखे केता जाणे, यथार्थपणे एटले अशुनदोष सहित वस्तुने अशुनदोषी सहित जाणे अने शुनगुणवत वस्तुने शुन जाणे, जड वस्तुने जडपणे जाणे, चेतन वस्तुने चेतनपणे जाणे, ते यथार्थ स्याद्वादपणे जाणे, ए शुद्धता कहीयें अने ते वस्तुने इष्टता, अनिष्टता रहितपणे जाणे, ते उदासीनता क हिये एहवु उदासीनतापणु तेने लही केता पामीने एटले एवु उदासी नपणु जे पाम्यो, तेथी एक पोतानो आत्मा असख्यातप्रदेशी तेहने विषे व्याप्यव्यापकनावें रह्या जे गुणपर्याय, तेहथी अपर नाव केता अन्यनावने एटले बीजा अन्य केता जुदा जे अनंता जीव तथा अनंता पुद्गलादिक अजीव पदार्थ, ते सर्वथी उदासपणे सर्वना अग्राहक अनागी असगी थया, ए सर्वे चारित्र परिणतिने एकता कहियें अने ध्वसी केता छेदीने तज्जन्यतानावें केता तदुत्पत्तिनावें जे विनावकर्त्तापणु तेहने छेदीने छेद केता शक्ति ते तीक्ष्णता जाणवी ए कार्य करवे हे प्रनुजी ! तु निज केता पोताने सनावे रम्यो, आत्मसनावरमणी थयो ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

शुन अशुन नाव अविनास तहकीकता, शुन अशु
न नाव तिहा प्रनु न कीधु ॥ शुद्धपरिणामता वीर्यक
र्त्ता थइ, परम अक्रियता अमृत पीधु ॥ स० ॥ ४ ॥

अर्थ – वली एहीज त्रिनगीनो अर्थांतर कहे छे शुन केता प्रशस्त अशु न केता अप्रशस्त जे नाव, तेहनी जे अविनास केता उलखाण, तहकिकता केता तेहने निर्धारे तेशुद्धता पणे ए सर्व तमें जाण्यु परतु हे परमेश्वर ! तुमें तिहा रागीद्वेषीपणे शुनअशुन नाव पण कर्यु नहीं, एहीज एकता, चा रित्र धर्मनी अरागी, अद्वेषी, परिणति ते एकता शुद्धनिरावरण परिणामता,

ते पारिणामिकभावें जे वीर्यगुण, तेहना कर्त्ता थइने एटले रागद्वेषने अनु यायीपणे वीर्यनो विकार छे, ते रागद्वेष रहितपणे थये, वीर्य शुद्ध थाय तेवारें स्ववीर्यबलें पारिणामिककर्त्ता थइने, एटले स्वपरिणामिकताना कर्त्ता थइने परम केता उत्कृष्ट अक्रियपणारूप अमृतनु पान तमें कर्युं एटले विभाव कर्तृता तथा साधकरूप कर्तृता तजीने अकप, अचल, वीर्यपणे हे परमेश्वर ! तमें अक्रिय थया ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

शुद्धता प्रभु तणी आत्मभावें रमे, परम परमात्म
ता तास थाए ॥ मिश्रभावे अछे त्रिगुणनी भिन्नता,
त्रिगुण एकत्व तुज चरण आए ॥ स० ॥ ५ ॥

अर्थ – एहवी शुद्धता, निरावरणता, तथा अनंतगुणभोगीपणानी जे प्रभुता, ते आत्मभावे केता पोताने आत्मपणे रमे, एटले प्रभुनी प्रभुता तेनो रंगी जे जीव, तेहने परम उत्कृष्ट शुद्ध परमात्मापणु थाय, मिश्रभाव जे क्ष योपशम भावें त्रिगुण जे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तेहनी भिन्नता केता भेदरत्नत्रयी छे, साधक छे, परंतु सविकल्प छे, ते त्रिगुण जे रत्नत्रयी, तेह नु जे एकत्व केता एकपणु अभेदपणुं ते थाय, तुज केता ताहरे चरण यथाख्यात क्षायक चारित्र आवे, प्रगटे, एटले क्षीणमोहगुणठाणें एकत्व वि तर्क अप्रविचार शुक्लध्यान उपने, जे दर्शन निर्धाररूप, तथा चारित्र स्थिर तारूप, ए बे धारा, ज्ञानधाराथी अभेद थई, एटले प्रथम मिथ्यात्वकालें तो ज्ञान विपर्यास रूपें हतु ते सम्यक्दर्शन प्रगटे, यथार्थज्ञान थयु, तेवारें ज्ञानस्वरूप रमणी थयो, पछी ते ज्ञान स्वरूप रमणी स्थिरता भावने भजे, एम ध्यानारूढ थयो, विकल्प तजता, पोतानी आत्माने तत्त्वपरिणतिमध्ये तन्मयता पमाडतो पछी ज्ञानगुण रमण, ज्ञाननोज निर्धार, एटले पर्याय भेदें ते मूलगुणें एकत्व पामे, ए अभेदरत्नत्रयीनु स्वरूप, ध्यानिगम्य छे, प रंतु मूलनयें आत्मा ज्ञान, दर्शन, ए बे गुणें सहित छे, एहवी आम्नाय छे, शेष निर्धारथिरताए सर्व चेतना गुणनी प्रवृत्ति छे, तेमाटे ए ज्ञानमांहेज स्थिरत्वपरिणति ते अभेदता कहेवी, प्रथम क्षयोपशमी चलवीर्यताए चेत कापर्यायनी प्रवृत्ति असंख्यसमयी हती, ते भासनप्रवृत्ति पछी क्रमें कारण भावेमां थिरतापरिणतिए हती, ते क्षीणमोहकालें रोधकने क्षयें समरा

असंख्यसमयी प्रवृत्ति थइ, ते केवलज्ञान थये निरावरणताये एकसमयी थइ, ए रीतें अभेदता रत्नत्रयी थाय छे. ए श्री भाष्यथी समजवी ॥ ५ ॥

उपशम रस भरी सर्व जन शंकरी, मूर्त्ति जिनराज
नी आज भेटी ॥ कारणें कार्यनिष्पत्ति श्रद्धान
छे, तेणे भवभ्रमणनी भीड भेटी ॥ स० ॥ ६ ॥

अर्थ – उपशम रस जे कषायनो अभाव, तेहथी भरी अने सर्वलोकने शंकरी केता कल्याणनी करनारी एहवी प्रभुनी थापना केता मूर्ति तेह नी शांत अचल असंगमुद्रा, ते आज भेटी केता नमस्काररूपें सेवी हवे कारणे कार्य निपजे, एहवी श्रद्धा प्रतीत छे, तेणे मोक्षनु निमित्त कारण, श्रीजिनमुद्रानो योग थयो, अने उपादान कारण आत्मोपयोग प्रमुख अ ध्यवसाय जिनगुणभासन रागहर्षें परिणम्या, एहवा कारणने मळवे, जाणु छु, जे कारणता ते कार्यनो हेतु छे, माटे कारण मळे कार्यनी नि ष्पत्ति थशे, एहवो आगमिक भव्यताद्योत उपयोग थयो, तेहथी जाणु जे ए परमपुरुषोत्तम देव श्री वीतरागनी इष्टता तो उपनी, तो कोइ दिव से ए आत्मा गुणी थनार छे, ए अनुमानें जाण्यो जे कारण मळ्यु तो का र्य निपजशे अने भवभ्रमण पण टळशे, ए हर्षनु वचन छे, भवभ्रमणनी भीड मटी, ए कारणें कार्योपचारी वचन छे, एम भावना करवी जो प्रभुनी प्रभुता इष्ट लागे छे, तो आत्मा सिद्धता वरशे ॥ ६ ॥ इति षष्ठगाथार्थ ॥

नयर खंभायते पार्श्वप्रभु दर्शने, विकसते हर्ष
उत्साह वाध्यो ॥ हेतु एकत्वता रमण परिणाम
थी, सिद्धि साधक पणो आज साध्यो ॥ स० ॥ ७॥

अर्थ – एहवा अध्यवसाय श्रीखंभायत तीर्थें श्री सुखसागर पार्श्वजिन नु वदन करता, कोइक प्रभुनी प्रभुता उपर अपूर्व राग उपनो ते हर्ष ए वचन भाख्यु छे, ते माटे खंभायतनु नाम आप्यु छे, जे ए खंभायत नग रमां विकसित हर्षने विकस्वर थये उत्साह वाध्यो केता वध्यो हेतु जे कारण श्री अरिहंत देव, तेहथी एकत्व पणे अत्यंत रागे रम्यो जे परिणाम, एट ले प्रभुथी अतिरागी परिणाम थवाथी, सिद्धि जे मोक्ष तेहनु साधकपणु

ए आत्मामाहे छे, एहवु अनुमान सघ्यु एटले प्रभुरागें अनुष्ठान रहित आतारहित परिणम्यु, तो जाण्यु जे ए जीवमोक्ष निपजाववानी योग्यतावत छे, माटे एहवु अनुमान कीधु जे आज केता जे दिवसे प्रभुने नेटयो, ते दिवसें माहरु सिद्धिसाधकपणु सघ्यु ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थ ॥

आज कृतपुण्य धन्य दीह माहरो थयो, आज नरज
न्म मे सफल नाव्यो ॥ देवचन्द्र स्वामि त्रेवीशमो
वदीयो, नक्तिन्नर चित्त तुक गुण रमाव्यो ॥ स० ॥ ८ ॥

अर्थ – आज जे वेलायें अनुष्ठानादिक दोष रहित आत्मा प्रभुनक्ते परिणम्यो, ते दिवस कृतपुण्य केतां पुण्योदय थयो, ए दिन धन्य थयो, ए दिनें जिननक्ति रक्त अध्यवसाय थवे ए नर जन्म सफलपणे विचार्यो जे माहरो ए जन्म सफल छे, जे में नीरागी, निस्पृही, परमगुणी, सर्वदर्शी देव, श्रीपार्श्वनाथस्वामी त्रेवीशमा तीर्थंकर तेने नेटयो, वांद्यो, स्तव्यो, अने तेहनी नक्तिनरने विषे चित्त केता मन रमाव्यु एटले पुजलरमणता तजी, श्रीअरिहंतगुणनी रमणताए मन रमाव्यु तेहीज दिन कृतार्थ कृतपुण्य सफल मानवो, ए दिन लेखानो जाणवो, सर्वदेवमाहे चन्द्रमा समान अथवा स्तुतिकर्त्ता जे देवचन्द्र ते एहवो लान पाम्यो ॥ ८ ॥ इति श्री पार्श्वजिनस्तवन ॥

॥ अथ चतुर्विंश श्रीमाहावीरजिनस्तवनं ॥

॥ ढाल कडखानी देशीए चाले छे ॥

तार हो प्रभु तार मुक सेवक नणी, जगतमां एटलु
सुजश लीजें ॥ दास अवगुण नर्यो जाणी पोतात
णो दयानिधि दीनपर दया कीजें ॥ ता० ॥ १ ॥

अर्थ – कोइक अवसरें श्रीजिनागमना अभ्यासे करीने संसार भ्रमण ज्ञानावरणादि आवरणे आवृत पोतानी अनंत आत्मशक्ति जाणीने अनादि परनावानुगतता दोषने दुःखे उद्विग्न आत्मा ते पोतानी साधकता शक्ति अणदेखतो परमनिर्यामक समान चोवीशमा श्रीवीरनाथना चरण शरण निर्धारीने श्रीवीरप्रभुनी आगल प्रार्थना सहित, विनति करे छे जे हे

नाथ ! हे दीनदयाल ! हे प्रभुजी ! मुज सरिखो जे तत्त्वसाधन तथा आज्ञा निर्वाहमा असमर्थ, तेने मात्र नामथी सेवक जाणी तार तार, ए गुणरोधक रूप डुःखथी निस्तार, तुज सरीखा प्रभु विना बीजा कोने कहुं ? जगत्मां एटलुं सुजश लीजें, यद्यपि प्रभु तो जशना कामी नथी, परंतु उपचारें नक्ति आतुरताएं कहे ठे, जे मुज सरीखो दास ते यद्यपि राग, द्वेष, असंयम, अनुष्ठानाशातनादि दोष, एकतादोष, अनादरादिदोषरूप अवगुणें करी नखो ठे, तो पण ताहरो कहेवाय ठे, तेमाटे हे दयानिधि ! केता नावकरुणाना निधान ! दीन जे दुःरक, अशरण, डुःखित, तत्त्वशून्य, ज्ञानादि संपदारहित, नावदरिडी, मार्गनो विराधक, असंयमसंचारी, माहा विकारी, तमारी आज्ञाथी विमुख, अनादिनो उद्धत, एहवा मुज उपर दया करीजें ताहरी रुपा तेहीज त्राण (शरण) थशे यद्यपि अरिहंत तो रुपावंतज ठे, तो रुपा शी करवी ठे ? तो पण अर्थी विचारे नहीं माटे अर्थीनुं ए वचन ठे, जे दयावंतनेज एम कहेवाय ठे, जे हे देव ! तमें दयाना नंमार ठो, तमनेंज अवजवे तरीश, एज सत्य ठे ॥ १ ॥ इति प्रथम० ॥

रागद्वेषें नरयो मोह वैरी नडयो, लोकनी रीतमा घ
णुए रातो ॥ क्रोधवश धमधम्यो शुद्धगुण नवि र
म्यो, नम्यो नवमांहे हुं विषय मातो ॥ ता० ॥ २ ॥

अर्थ – दास कहेवो ठे, रागद्वेषे नखो, जगत्मा पड्यो, गुणीथी ईर्ष्याकरे ठे, मोह जे मुंजितपणुं ते तत्त्वनी अजाणता विपर्यासता, हेतुयें मोहवेरी नडयो तेथी दबाणो ठे, तथा लोकनी जे रीत केता चाल तेमाहे घणोज मातो ठे, लोकनी चालमाहे मग्न ठे, लोकरंजननो अर्थी ठे, क्रोध जे ताता चन्डपरिणाम तेहने विषे धमधमी रह्यो ठे, जेम धमण धमतां अग्नि तपे, तेम तपी रह्यो ठे, शुद्ध गुण जे सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, शुद्ध चारित्र, क्षमा, मार्दव, आर्यवादि आत्मगुण, तेने विषे रम्यो नहीं, तन्मयी न थयो ते रूप न ग्रह्युं वली नम्यो चतुर्गतिरूप नवचक्रमाहे इव्य,क्षेत्र,काल, नाव रूप संसार तेने विषे हुं विषय जे पांचेंडियना स्वाद,तेमाहे मातो केता मग्न थयो, विषयग्रस्त थयो थको एम संसारचक्र अनुनव्युं ते हवे मुजने तार तार हे नाथ ! दीनबंधु ! निःकारण दयाल ! मुजने तार नवडुःखथी उगार ॥ २ ॥

आदरयो आचरण लोक उपचारथी, शास्त्रअन्यास
पण कोइ कीयो ॥ शुद्ध श्रद्धान वली आत्मअवलव
विनु, तेहवो कार्य तेणे को न सीधो ॥ ता० ॥ ३ ॥

अर्थ – कदाचित् कोइ केहेशे जे आवश्यककरणादिक आचरण थाद स्यु अंगीकार कर्यु, परंतु ते सर्व लोकोपचारथी एटले विध तथा गरल तथा अन्योन्यानुष्ठानथी नावना धर्म विना उपचारें अंगीकार कर्यु तथा काइ कहेशे उग्रगोत्र पशादिक कर्मना विपाकें ज्ञानावरणीय क्षयोपशम पामें शास्त्रनो अन्यास पण कीधो, शास्त्र नण्या, शास्त्रना यथार्थ अर्थ पण जाण्या, तथा अध्यात्मनावनाए स्पर्शज्ञानानुनव विना श्रुताभ्यास कीधो, परतु शुद्ध यथार्थस्याद्वादोपेत नावधर्म ते विना शेष नावधर्मनी रुचियें जे प्रवर्त्तन दान दयादिक करीयें ते सर्व कारण समजवां, परतु मूल धर्म नहीं, धर्म ते वस्तुनी सत्ता, आत्माने विषे सरूपपणे परिणामिकताए रह्यो छे, तेमाहे जे प्रगटयो ते धर्म, एहवु शुद्ध श्रद्धान, शुद्धप्रतीति, तथा वली आत्मानो सरुप प्रगट करवा रूप रुचि तथा आत्माना स्वगुणने आलंबन विना जे आचरण तेणे आचरणें तथा श्रुताभ्यासें तेहवु कार्य जे कार्यथी आत्मानु साधन थाय, ते कोइ नीपन्यु नही, जे थकी आत्मगुण कोइ प्रगटे, ते थयु नही, तेमाटे अहो परमेश्वर ! ताहरीज रुपा पार कतारे, निस्तारे, तेमाटे तार तार ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

स्वामिदर्शन समो निमित्त लही निर्मलो, जो उपा
दान ए शुचि न थाशे ॥ दोपको वस्तुनो अहवा उ
द्यम तणो, स्वामिसेवासही निकट लाशे ॥ ता० ॥४॥

अर्थ – स्वामी श्रीवीतराग जे परकार्यना अकर्त्ता, परनावादिना अनोक्ता इछा, लीला, चपलता रहित एटले जे इछा ते तो कणतावतने छे, अने जे परमेश्वर तेतो पूर्णसुखी छे,तेमाटे इछारहित, वली लीला पण सुखनी लालच वालाने हाय, अने लालचीपणु ते सुखनी ऊणतायें थाय छे, ते माटे लालचीपणु नथी, एहवा स्वामीना दर्शन समान निर्मल निमित्त लही केता पामीने जो ए आत्मानु उपादान मूलपरिणति ते शुचि केता

पवित्र नही थाशे तो जाणीयें ठइयें जे वस्तु जे जीव, तेह्नोज दोष केतां अवगुण ठे, एटले रखे ए जीवनो दल अयोग्य होय ? ए जीवनी सत्ता केवी रीतनी ठे ? अथवा पोताना उद्यमनी खामी ठे ? केम के आकरे प्रयत्नें उद्यम करी आत्मानें समरवो जोइयें, ते ए जीव पोतानी कणाशे आत्माने समरतो नथी, तेमाटे हवे शु करवु ? जे बीजो उपाय कोइ नथी,तो श्रीअरिहतनी सेवा तेहीज निश्चे निकट केता नजीकता लासे केता पमाडशे एटले ए आत्मा डुष्ट ठे, परतु श्रीजिनराजनी सेवनाथी डुष्टता तजशें ॥ ४ ॥

स्वामिगुण उलखी स्वामीने जे भजे, दर्शन शुद्ध
ता तेह पामे ॥ ज्ञान चारित्र तप वीर्य उल्लासथी,
कर्म जीपी वसे मुक्तिधामे ॥ ता० ॥ ५ ॥

अर्थ – स्वामी जे श्रीअरिहत, तेह्ना गुणने उलखीनें जे प्राणी श्रीअरिहतने भजे, केता सेवें, ते दर्शन केता समकेतरूप गुण पामे, दर्शननी निर्मलता पामे, ज्ञान ते यथार्थभासन, चारित्र ते स्वरूप रमण, तप ते तत्त्वएकाग्रता, वीर्य ते आत्मसामर्थ्य तेह्ना उल्लासथी केता उल्लसवे थी ज्ञानावर्णादिकर्मने जीपीने वसे केता रहे, मुक्ति केता मोक्ष निरावरण सपूर्ण सिद्धतारूप धामें केतां थानके वसे ॥ ५ ॥ इति पचम गाथार्थ ॥

जगत वत्सल महावीर जिनवर सुणी, चित्त प्रभु
चरणने शरण वास्यो ॥ तारजो बापजी बिरुद निज
राखवा, दासनी सेवना रखे जोशो ॥ ता० ॥ ६ ॥

अर्थ – जगत्त्रयवत्सल केता जगत्त्रयना धर्महितकारी, एहवा माहावीर श्रीचोवीशमा जिनवर, तेह्ने सुणी केतां सांभलिने चित्त केतां मन ते प्रभुने चरणने शरणें वास्यो केतां वसाव्यो, तेमाटे हे प्रभु परमेश्वर ! माहरो आत्मा तो पलटीने सर्वसाधन करे, एहवी शक्ति देखाती नथी माटे भइक भक्तिए कहु छु जे हे तात ! हे दीनबधो ! मुझ दासने तुमें तारजो, तमारु तारकतानु बिरुद राखवा माटे दास जे सेवक तेह्नी सेवना भक्ति सामु जोशो मा,जे ए आज्ञाप्रमाणे भक्ति करे,तो तरे, ए वात तो स्वामी माहारा मा थवी दुर्लभ ठे, पण तमारे सयोगे तरीयें, एहीज नियमा आधार ठे॥६॥

विनति मानजो शक्ति ए आपजो, भावस्याद्वा
दता शुद्ध भासे ॥ साधि साधक दशा सिद्धता अनु
भवी, देवचंद्र विमल प्रभुता प्रकासे ॥ ता० ॥ ७ ॥

अर्थ – माहरी एटली विनति मानजो, ए पण भद्रकपणाथी भक्तिनुं वचन छे, जे शक्ति सामर्थ्य एवी आपजो, ते कहे छे,जे भाव केता वस्तुधर्म ते स्याद्वादरीतें नित्य, एक, अनेक, अस्ति, नास्ति, भेद, अभेदपणें छ द्रव्यना अनंता धर्म शुद्ध, शंकादिक दूषण रहित भासे, केता जाणपणामध्ये आवे, साधि केतां नीपजावीने साधकदशा ते भेदरत्नत्रयी, सिद्धता, निष्पन्नता, अनुभवे, केतां भोगवे, सर्वदेवमाहे चंद्रमा समान सिद्ध भगवान् तेहनी विमल केतां निर्मल जे प्रभुता, ते प्रकासे केतां प्रगट करे एटले स्याद्वाद ज्ञानें साधकता प्रगटे, साधकताथी सिद्धता प्रगटे. एहीज सारपद्धति छे ॥७॥

एटले ए चोवीश स्तवन थया पोताना जाणपणाप्रमाणे परमेश्वरनी गुण ग्रामें स्तवना करी,तेमांहे जे यथार्थ ते प्रमाण, अने अयथार्थनु मिच्छामि दुक्कड गीतार्थें गुण सेवो, दोष तजवो, में भद्रकतायें ए रचना करी छे, मा होटा पुरुषें क्षमा राखी गुण सेवा ॥७॥ इति माहावीरजिन स्तवन॥२४॥

अथ सामान्यकलशरूप पचविंशतितम स्तवनं ॥

॥ कलश बोलवानी देशीमा ॥

चोवीशे जिनगुण गाईये, ध्याईये तत्वस्वरूपो जी ॥
परमानंद पद पाईयें,अक्षय ज्ञान अनूपो जी॥चो०॥१॥

अर्थ –श्रीऋषभदेवथी मांमीने माहावीर पर्यंत अवसर्पिणी काले शासनना नायक गुणरत्नाकर, माहामाहण, माहागोप, माहावैद्य, एहवा चोवीश तीर्थंकर थया, तेहने गाइयें केतां गुणग्राम करीयें,अने पोताना तत्वसरुपने ध्यावीयें तेहने ध्याने, तत्वनी एकाग्रता पामीयें, तेथी परमानंद अविनाशीपद पामीने वली अक्षय,अविनाशी, अनंतु क्षायिक ज्ञान ते अनूप केतां अद्भुत पामीजे ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

चउदर्से बावन भला, गणधर गुणभंमारो जी॥ समनाम
पी साद्दु साहुणी, सावय सावयी सारो जी ॥ चो० ॥ २ ॥

अर्थ – चोवीशे जिनराजना गणधर (१४५२) नला गण गणि पिटक
ना धणी, गुणना भंडार तथा समतामयी साधु साधवी, अने श्रावक, श्रा
विका सार केतां प्रधान धर्मना धोरी, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रना पात्र,
ए चार प्रकारनो संघ ते सहित गायजो ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

वर्द्धमान जिनवर तणो, शासन अति सुखकारो जी ॥ चौ
विह संघ विराजतो, डुसम काल आधारो जी ॥ चो० ॥ ३ ॥

अर्थ –तथा हमणां श्रीवर्द्धमान माहावीर स्वामीनु शासन अत्यंत सुखनु
कारक छे, ए शासनमांहे जे पेठा,ते जीव संसारनो पार पामे, तथा डुसम काल
पांचमा आरामध्ये भव्यजीवने आधारभूत चतुर्विध संघ बिराजे छे, वर्त्तमान
कालें नवतत्त्व षट्द्रव्यनी ओलखाण थाय मिथ्यात्व असंयमनो जे जे नाश था
य,ते उपगार श्रीवीरप्रभुना शासननो छे, ते श्रीवीरनाज आगम आधार छे॥३॥

जिनसेवनथी ज्ञानना, लहे हिताहित बोधो जी ॥ अहित
त्याग हित आदरे, संयम तपनी शोधो जी ॥ चो० ॥ ४ ॥

अर्थ – ए जिनसेवनानुं फल श्रीविशेषावश्यकने अनुसार कहीयें छैय.
ते श्रीवीतरागना उपदेश्यां सूत्र ते सांभलवाथी जाणपणु थाय, ते ज्ञानथी
हित अहितनो बोध थाय, पछी अहितना त्याग करे, तथा हितने आदरे,
तत्त्वसाधन आदर तेहथी संयम तपनी शोध कतां शुद्धता थाय ॥ ४ ॥

अभिनव कर्म अग्रहणता, जीर्णकर्म अभावो जी ॥ नि क
र्मनि अबाधता, अवेदन अनाकुल भावो जी ॥ चो० ॥ ५ ॥

अर्थ – संयम तपनी शुद्धता थवाथी नवा कर्मनी अग्रहणता थाय,
एटले नवा कर्म न बांधे, अने जीर्ण कतां जुना कर्मनो अभाव थाय, एटले
पूर्वेना सत्तागत कर्म निर्जरे अने नवानो बंध नहीं थाय, तथा पूर्वना स
त्तागत क्षय थाय,तेवारे आत्मा निःकर्मी केतां सर्वकर्मरहित थाय, अबाध
ता केता बाधा रहित थाय, जे बाधा ते आत्मप्रदेश पुद्गलना संगनी छे, पु
द्गलसंग टले बाधा मटी गइ तेवारें आत्मा अवेदन अनाकुलपणु पाम्यो व
ली आकुलता परभावधिनी हती ते गइ, ते सर्व प्रभुजिना उपगार जाणवो ते
माटे चोवीश जिनने स्तवीयें एहीज सार छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थ ॥

भावरोगना विगमथी, अचल अक्षय निराबाधो जी॥
पूर्णानंददशा लही, विलसे सिद्धसमाधो जी॥ चो० ॥६॥

अर्थ – पछी भावरोग जे परानुयायीपणु तेहनो विगम केता सर्वथी टलवे करीने अचल केतां चपलता रहित अक्षय केता अविनाशीपणुं निराबाध केता अव्याबाध पद प्रगटे, ते सर्वनु मूल कारण जिनराज श्री वीतराग देवनी सेवना भाव रुचे, द्रव्य तथा भावथी प्रगटे, माटे सेवना करवी एहीज हित छे,पूर्णानंद परमानंद अनंत गुणना भागरूप स्वसिद्धता दशा लही केता पामीने विलसे केता अनुभवे, सिद्धनिष्पन्न परनिष्ठितार्थ आत्मिक समाधि, ज्ञान दर्शन समाधि, अव्याबाधानंदसमाधि भोगवे, पामे, ए श्रीजिनेश्वरना सेवननु फल एहीज परम निर्वाणपदनी प्राप्ति छे, तेणें सर्वविकल्प कल्पना निवारीने, सर्वज्ञ सर्वदर्शी शुद्धतत्त्वी परमेश्वर निर्विकारी देवनु सेवन करो,एहीज परमसुखनु पुष्ट कारण छे ॥ ६ ॥

श्रीजिनचंद्रनी सेवना, प्रगटे पुण्यप्रधानो जी ॥ सुमति सागर अति उल्लसे, साधुरंग प्रभु ध्यानो जी ॥ चो० ॥ ७ ॥

अर्थ – श्रीजिनचंद्र अरिहंत देव तेहनी सेवना करता पुण्यप्रधान प्रगटे अने श्रेष्ट सुमति जे परमानंद साधकमति, ते उल्लसे केतां उल्लास पामे अने प्रभुने ध्याने साधु केतां भलो रंग थाय बीजो अर्थ श्रीजिनचंद्रसूरिभट्टारक श्री खरतरगच्छाधीश्वर तेहना शिष्य श्रीपुण्यप्रधानोपाध्याय, तेहना शिष्य श्रीसुमति सागरापाध्याय,तेहना शिष्य श्रीसाधुरंगवाचक,ए स्तुतिकर्त्तानी परंपरामां बहुश्रुत थया, तेहनां नाम कह्यां ॥७॥ इति सप्तम गाथार्थ ॥

सुविहित खरत गच्छवरू, राजसार उवझायो जी॥ ज्ञानधर्म पाठक तणो, शिष्य सुजस सुखदायो जी ॥ चो० ॥ ८ ॥

अर्थ –सुविहित कहता पचांगी प्रमाण रत्नत्रयीनो हेतु केतां कारण भूवी जेहनी समाचारी एहवो जे खरतरगछ ते मध्ये वर केतां प्रधान सर्व शास्त्र निपुण महस्थउविषे अनेक जिनचैत्यप्रतिष्टा कारक आवश्यकोद्धार प्रमुख ग्रंथोना कर्त्ता एवा महोपाध्याय, श्रीराजसारजी थया, तेहना शिष्य श्रीज्ञानधर्म उपाध्याय, न्यायादिक ग्रंथाध्यापक, जेण शास्त्र वर्ष पर्य

त जिव्हाना रस तजी शाक जाति तजी, ने संवेगवृत्ति धरी, तेमना शिशिष्य रूडा यशना धणी, सुखना देवावाला एहवा ॥ ८॥ इति अष्टम गाथार्थ ॥

दीपचंद पाठक तणो, शिष्य स्तवे जिनराजो जी ॥ देवचंद पद सेवता, पूर्णानंद समाजो जी ॥ चो० ॥ ए ॥

अर्थ —तथा जेणे श्री शत्रुंजय तीर्थे उपर शिवासोमजीकृत चोमुखनी अनेक बिंबप्रतिष्ठा करी तथा पांच पांडवना बिंबनी प्रतिष्ठा करी, तथा समोसरण चैत्य तथा श्रीकुंथुनाथ चैत्य प्रतिष्ठा करी,श्रीराजनगरे सहस्रफणापार्श्वप्रभुनी प्रतिष्ठा करी,एहवा उपाध्याय श्रीदीपचंद्रजी,तेहना शिष्य पंडित देवचंद्रगणि तेणे ए चोवीश प्रभुनी स्तवना भक्तिवशे करी, पोतानी भक्ति परिणति महानंद हेतु छे,एहवा गुणना नाथ,देवचंद्र पद सेवता पूर्णानंद जे सिद्ध अव्याबाध आनंदना समाज केता समुदाय ते पामे, ए जिनभक्ति ते मोक्षनो परमोपाय छे ॥ ए ॥ इतिश्री चोवीश जिनस्तुतिनो बालावबोध संपूर्ण ॥

॥ इति श्री देवचंद्रजीमाहाराजकृत बालावबोधसहित चतुर्विंशति जिनस्तवनानि संपूर्णानि ॥

॥ अथ श्रीदेवचंद्रजीकृत विंशति विहरमानजिन स्तवनानि ॥

॥ तत्र प्रथम श्रीसीमंधरजिन स्तवन ॥ निद्रडी वेरण हुइ रही ॥ ए देशी ॥

॥श्री सीमंधर जिनवर स्वामी विनतडी अवधारो ॥ शुद्धधर्म प्रगट्यो जे तुमचे, प्रगटो तेह अम्हारो रे स्वामी विनवीयें मनरंग ॥ १ ॥ जे परिणामिक धर्म तुमारो, तेहवो अमचो धर्म ॥ श्रद्धाभासन रमण वियोगे, वलग्गो विभाव अधर्म रे स्वामी ॥ वि०॥ २ ॥ वस्तु स्वभाव स्वजाति तेहना, मूल अभाव न थाय ॥ परविभाव अनुगत परिणतिथी, कर्मे ते अवराय रे स्वामी ॥ वि० ॥ ३ ॥ जे विभाव ते पण नैमित्तिक, संतति भाव अनादि ॥ परनिमित्त ते विषय संगादिक, ते संयोग सादि रे स्वामी ॥ वि० ॥ ४ ॥ अशुद्ध निमित्त ए संसरता, अत्ता कत्ता परनो ॥ शुद्ध निमित्त रमे जब चिद्घन, कर्त्ता भोक्ता घरनो रे स्वामी ॥ वि०॥५ ॥ जेहना धर्म अन

ता प्रगट्या, जे निजपरिणति वरीयो ॥ परमातम जिनदेव अमोही, ज्ञाना
दिक गुण दरीयो रे स्वामी ॥ वि० ॥ ६ ॥ अवलंबन उपदेशक रीतें, श्री
सीमधर देव ॥ भजीयें शुद्ध निमित्त अनोपम, तजीयें भवभय टेव रे
स्वामी ॥ वि० ॥ ७ ॥ शुद्धदेव अवलंबन करतां, परहरीयें परभाव ॥ आ
तमधर्म रमण अनुभवतां प्रगटे आतम भाव रे स्वामी ॥ वि० ॥ ८ ॥
आतमगुण निर्मल नीपजतां, ध्यानसमाधि स्वभावें ॥ पूर्णानंद सिद्धता
साधी, देवचंद्र पद पावे रे स्वामी ॥वि०॥९॥ इति सीमधरजिन स्तवन ॥

॥ अथ द्वितीय श्रीयुगमधरजिन स्तवन ॥

॥ देशी नारायणानी ॥ श्री युगमधर वीनवु रे, विनतडी अवधार रे ॥
दयानराय ॥ ए परपरिणति रंगथी रे, मुझने नाथ उगार रे ॥ द० ॥ १ ॥
श्री० ॥ कारक ग्राहक भोग्यता रे, में कीधी माहाराय रे ॥ द० ॥ पण तु
क सरिखो प्रभु लहि रे, साची वात कहाय रे ॥ द० ॥ २ ॥ श्री० ॥
यपि मूल स्वभावमें रे, परकर्तृत्व विभाव रे ॥ द० ॥ अस्तिधरम जे मा
रो रे, एहनो तथ्य अभाव रे ॥ द० ॥३॥ श्री० ॥ परपरिणामिकता दशा
लहि परकारण योग रे ॥ द० ॥ चेतनता परगत थइ रे, राचो पुद्गल
ग रे ॥ द० ॥ ४ ॥ श्री० ॥ अशुद्ध निमित्त तो जड अछे रे, वीर्यशक्ति
हीन रे ॥ द० ॥ तूतो वीरज ज्ञानथी रे, सुख अनंते लीन रे ॥ द० ॥
५ श्री० ॥ तिण कारण निश्चे कर्यो रे, मुझ निज परिणति भोग रे ॥
० ॥ तुझ सेवाथी नीपजे रे, भाजे भवभय सोग रे ॥ द० ॥ ६ ॥
०॥ शुद्ध रमण आनंदता रे, ध्रुव निस्संग स्वभाव रे ॥ द० ॥ सकल
अमूर्त्तता रे, ध्यातां सिद्ध उपाय रे ॥ द० ॥ ७ ॥ श्री० ॥ सम्यग्
जे उपदिश्यो रे, सुणतां तत्त्व जणाय रे ॥ द० ॥ श्रद्धाज्ञानें जे
रे, तेहिज कार्य कराय रे ॥ द० ॥ ८ ॥ श्री० ॥ कार्यरुचि कर्त्ता
, कारक सवि पलटाय रे ॥ द० ॥ आतमगतें आतम रमे रे,
र मगत थाय रे ॥ द० ॥ ९ ॥ श्री० ॥ त्राण शरण आधार छो
तुजी भव्य सहाय रे ॥ द० ॥ देवचंद्र पद नीपजे रे, जिनपदक
साय रे ॥ द० ॥ १० ॥ श्री० ॥ इति श्रीयुगमधरजिन स्तवन ॥

॥ अथ तृतीय श्रीबाहुजिन स्तवन ॥

वजिन अवधारीयें ॥ ए देशी ॥ बाहुजिणंद दयामयी, वर्त्तमान भगवा

न ॥ प्रभुजी ॥ महाविदेहें विचरता, केवल ज्ञान निधान ॥प्र०॥१॥वा०॥
द्रव्यथकी छ कायने, न हणे जेह लगार ॥ प्र० ॥ भावदया परिणामनो,
एहीज छे व्यवहार ॥ प्र० ॥ २ ॥ वा० ॥ रूप अनुत्तर देवथी, अनंत गुणुं
अभिराम ॥ प्र० ॥ जोतां पण जगजीवनें, न वधे विषय विराम ॥ प्र० ॥
॥ ३ ॥ वा० ॥ कर्मउदय जिनराजनो, भविजन धर्मसहाय ॥ प्र० ॥ ना
मादिक संभारतां, मिथ्यादोष विलाय ॥ प्र० ॥ ४ ॥ वा० ॥ आतम
गुण अविराधना, भावदया भंडार ॥ प्र० ॥ क्षायिक गुण पर्यायमें, नवि
परधर्मप्रचार ॥ प्र० ॥ ५ ॥ वा० ॥ गुणगुण परिणति परिणमे, बाधक
भाव विहीन ॥ प्र० ॥ द्रव्य असंगी अन्यनो, शुद्ध अहिंसक पीन ॥
॥ प्र० ॥ ६ ॥ वा० ॥ क्षेत्रे सर्वप्रदेशमें, नहीं परभाव प्रसंग ॥ प्र० ॥
अतनु अयोगी भावथी, अवगाहना अभंग ॥ प्र० ॥ ७ ॥ वा० ॥ उ
त्पाद व्यय ध्रुव पणे, सहेज परिणति थाय ॥ प्र० ॥ छेदन योजनता
नहीं, वस्तुस्वभाव समाय ॥ प्र० ॥ ८ ॥ वा० ॥ गुण पर्याय अनंत
ता, कारक परिणति तेम ॥ प्र० ॥ निज निज परिणति परिणमे, भाव अ
हिंसक एम ॥ प्र० ॥ ९ ॥ वा० ॥ एम अहिंसकता मयी, दीठो तुं
जिनराज ॥ प्र० ॥ रक्षक निज परजीवना, तारण तरण जिहाज ॥
प्र० ॥ १० ॥ वा० ॥ परमातम परमेसरु, भावदया दातार ॥ प्र० ॥
सेवो ध्यावो एहने, देवचंद्र सुखकार ॥ प्र० ॥ ११ ॥ वा० ॥ इति ॥३॥

॥ अथ चतुर्थ श्रीसुबाहुजिन स्तवन ॥

ढाल ॥ माहरो बाला ब्रह्मचारी ॥ ए देशी ॥ श्रीसुबाहुजिन अंतरजामी,
मुज मनना विसरामी रे ॥ प्रभु अंतरजामी ॥ आतम धर्म तणा आरामी,
परपरिणति निकामी रे ॥ प्र० ॥ १ ॥ केवल ज्ञान अनंत प्रकाशी, भवि
जन कमल विकाशी रे ॥ प्र० ॥ चिदानंद घन तत्वविलासी, शुद्धस्वरूप
निवासी रे ॥ प्र० ॥ २ ॥ यद्यपि हुं मोहादिक ग्रसीयो, परपरिणतिसुं र
सीयो रे ॥ प्र० ॥ हवे तुज सम मुज साहिब मलीयो, तिणे सवि भव
भय टलियो रे ॥प्र०॥३॥ ध्येय स्वभाव प्रभुअवधारी दुर्ध्याता परिणति वा
री रे ॥ प्र० ॥ भासन वीर्य एकताकारी, ध्यान सहज संभारी रे ॥
॥ प्र० ॥ ४ ॥ ध्याता ध्येय समाधि अभेदे, परपरिणति विच्छेदे ॥ प्र० ॥
ध्याता साधक भाव उच्छेदे, ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र० ॥ ५ ॥ द्रव्यक्रि

या साधन विधि याची, जे जिन आगम वांची रे ॥ प्र० ॥ परिणति वृत्ति विजावें राची, तिण नवि थाये साची रे ॥ प्र० ॥ ६ ॥ पण नवि नय जिनराज पसायें, तत्त्वरसायण पाये रे ॥ प्र० ॥ प्रभुनगतें निज चित्त वसाये, जावरोग मिट जाये रे ॥ प्र० ॥ ७ ॥ जिनवर वचन अमृत अनुसरीयें, तत्त्व रमण आदरीयें रे ॥ प्र० ॥ द्रव्यजाव आश्रव परिहरीयें देवचंद्र पद वरीयें रे ॥ प्र० ॥ ८ ॥ इति चतुर्थ श्री सुबाहुजिन स्तवन॥४॥

॥ अथ पंचम श्रीसुजातजिन स्तवन ॥

॥ देखु देखु नणद हठीली ॥ ए देशी ॥ स्वामी सुजात सुहाया, दीठा आणंद उपाया रे ॥ मनमोहना जिनराया ॥ जिणें पूरण तत्त्व निपाया, द्रव्यास्तिक नय ठहराया रे ॥ म० ॥ १ ॥ पर्यायास्तिक नयराया, ते मूळ सजाव समाया रे ॥ म० ॥ ज्ञानादिक स्व परजाया, निजकार्य करण वरताया रे ॥ म० ॥ २ ॥ अंशनय मार्ग कहाया, ते विकल्पजाव सुणाया रे ॥ म० ॥ नय चार ते द्रव्य थपाया, शब्दादिक जाव कहाया रे ॥ म० ॥ ॥ ३ ॥ दुर्नय ते सुनय चलाया, एकत्व अनेदें ध्याया रे ॥ म० ॥ ते सवि परमार्थ समाया, तसु वर्तन जेद गमाया रे ॥ म० ॥ ४ ॥ स्याद्वादी वस्तु कहीजें, तसु धर्म अनंत लहीजें रे ॥ म० ॥ सामान्य विशेषनुं धाम, ते द्रव्यास्तिक परिणाम रे ॥ म० ॥ ५ ॥ जिनरूप अनंत गणीजें, ते दिव्य ज्ञान जाणीजें रे ॥ म० ॥ श्रुतज्ञानें नयपथ लीजें, अनुजव आस्वादन कीजें रे ॥ म० ॥ ६ ॥ प्रजुशक्ति व्यक्ति एकजावें, गुण सर्व रह्या समजावें रे ॥ म० ॥ माहरे सत्ता प्रजु सरखी, जिनवचन पसायें परखी रे ॥ ॥ म० ॥ ७ ॥ तुं तो निज संपत्ति जोगी, हुं तो परपरिणतिनो योगी रे ॥ ॥ म० ॥ तिण तुम्ह प्रजु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुज गुणग्रामी रे ॥ ॥ म० ॥ ८ ॥ ए संबंधें चित्त समवाय, मुज सिद्धिनुं कारण थाय रे ॥म०॥ जिनराजनी सेवना करवी, ध्येय ध्यान धारणा धरवी रे ॥म०॥ ९ ॥ तुं पूरण ब्रह्म अरूपी तुं ज्ञानानंद स्वरूपी रे ॥ म० ॥ इम तत्त्वानंद करीयें, तो देवचंद्र पद वरीयें रे ॥ म० ॥ १० ॥ इति सुजातजिनस्तवन ॥

॥ अथ षष्ठ श्री स्वयंप्रजजिन स्तवन ॥

॥ जोमनडोहेडावशोजिनरिखाडुरो मददरो ॥ ए देशी ॥ स्वामी स्वयंप्रज ने हो जाउं जामणे, हरखे वार हजार ॥ वस्तुधर्म पूरण जसु नीपनो, जाव

रूपा किरतार ॥ १ ॥ स्वा० ॥ द्रव्यधर्म ते हो जोग समारवा, विषया
दिक परिहार ॥ आतमशक्ति स्वभाव सुधर्मनो, साधनहेतु उदार ॥ २
॥ स्वा० ॥ उपशम भावें हो मिश्र क्षायिकपणें, जे निज गुण प्राग्भाव ॥
पूर्णावस्थानें नीपजावतो, साधन धर्म स्वभाव ॥ ३ ॥ स्वा० ॥ समकि
त गुणथी हो शैलेशी लगें, आतम अनुगत भाव ॥ संवर निर्जरा हो उपादा
न हेतुता, साध्यालंबन दाव ॥ ४ ॥ स्वा० ॥ सकलप्रदेशें हो कर्म अ
भावता, पूर्णानंद सरूप ॥ आतम गुणनी हो जे संपूर्णता, सिद्ध स्वभा
व अनूप ॥ ५ ॥ स्वा० ॥ अचल अबाधित हो जे निस्संगता, परमातम
चिद्रूप ॥ आतमभोगी हो रमता निज पदें, सिद्धरमण ए रूप ॥ ६ ॥
॥ स्वा० ॥ एहवो धर्म हो प्रभुने नीपन्यो, भाख्यो एहवो धर्म ॥ जे आद
रता हो भवियण शुचि हवे, त्रिविध विदारी कर्म ॥ ७ ॥ स्वा० ॥ नाम
धर्म हो ठवण धर्म तथा, द्रव्यक्षेत्र तिम काल ॥ भावधर्मना हो हेतुपणें
भला, भाव विना सहु आल ॥ ८ ॥ स्वा० ॥ श्रद्धा भासन हो तत्त्व रम
ण पणे, करता तन्मय भाव ॥ देवचंद्र जिनवर पद सेवता, प्रगटे वस्तु
स्वभाव ॥ ए ॥ स्वा० ॥ इति षष्ठ श्री स्वयप्रभजिन स्तवन संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तम श्रीऋषभाननजिन स्तवन ॥

॥ वारी हुं गोडी पासने ॥ ए देशी ॥ श्रीऋषभानन वांदीयें, अचल अनंत
गुणवास ॥ जिनवर ॥ क्षायिक चारित्र भोगथी, ज्ञानानंद विलास ॥ जि० ॥
१ ॥ श्री० ॥ जे प्रसन्न प्रभु मुख ग्रहे, तेहीज नयन प्रधान ॥ जि० ॥ जि
नचरणे जे नामीयें, मस्तक तेह प्रमाण ॥ जि० ॥ २ ॥ श्री० ॥ अरिहाप
दकज अरचीयें, स लहीजें ते हथ्थ ॥ जि० ॥ प्रभुगुण चिंतनमें रमे, तेहज
मन सुकयथ्थ ॥ जि० ॥ ३ ॥ श्री० ॥ जाणो छो सहु जीवनी, साधक बा
धक भात ॥ जि० ॥ पण श्रीमुखथी सांभली, मन पामे नीरात ॥ जि० ॥
४ ॥ श्री० ॥ तीन काल जाणग भणी, शुं कहियें वार वार ॥ जि० ॥ पूर्णा
नंदी प्रभु तणु, ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ॥ ५ ॥ श्री० ॥ कारणथी
कारज हुवे, ए श्री जिनमुख वाण ॥ जि० ॥ पुष्टहेतु मुझ सिद्धना, जाणी
कीध प्रमाण ॥ जि० ॥ ६ ॥ श्री० ॥ शुद्ध तत्त्व निज संपदा, ज्यां लगें
पूर्ण न थाय ॥ जि० ॥ त्यां लगें जग गुरु देवना, सेवु चरण सदाय
॥ जि० ॥ ७ ॥ श्री० ॥ कारज पूर्ण कर्या विना, कारण केम मुकाय

॥ जि० ॥ कारज रुचि कारणतणा, सेवे शुद्ध उपाय ॥ जि०॥ ८ ॥ श्री०॥ ज्ञान चरण संपूर्णता, अव्याबाध अमाय ॥ जि० ॥ देवचन्द्र पद पामीयें, श्री जिनराज पसाय ॥जि०॥९॥ श्री० ॥ इति श्री ऋषभाननजिन स्तवन ॥

॥ अथ अष्टम श्री अनंतवीर्यजिन स्तवन ॥

॥चरणाली चामुंडा रण चढे ॥ए देशी॥ अनंतवीरज जिनराजनो, शुचि वीरज परम अनंत रे ॥ निज आतम भावें परिणम्यो,गुणवृत्ति वर्त्तनावंत रे॥१॥ मन मोह्युं अम्हारुं प्रभुगुणें ॥ ए आंकणी ॥ यद्यपि जीव सहु सदा,वीर्यगुण सत्तावंत रे॥ पण कर्में आवृतचल तथा,बाल बाधक भाव लहंत रे ॥२॥म०॥ अल्पवीर्य क्षयोपशम अछे, अविभाग वर्गणा रूप रे ॥ षड्गुण एम असंख्यथी, थाये योग स्थान सरूप रे ॥३॥म०॥ सूक्ष्म निगोदी जीवथी, जाव सेंनीवर पज्जत्त रे ॥ योगना ठाण असंख्य छे,तरतम मोहें परायत्त रे ॥४॥म०॥ संयमने योगें वीर्य ते, तुम्हे कीधा पंडित दक्ष रे ॥ साध्य रसी साधक पणे, अभिसंधि रम्यो निज लक्ष रे ॥ ५ ॥ म० ॥ अभिसंधि अबंधक नीपने, अनभिसंधि अबंधक थाय रे ॥ स्थिर एक तत्त्वता वरततो, ते क्षायिक शक्ति समाय रे ॥ ६ ॥ म० ॥ चक्रभ्रमणन्याय सयोगता, तजी कीध अयोगी धाम रे ॥ अकरण वीर्य अनंतता, निजगुण सहकार अकाम रे॥ ७ ॥ म० ॥ शुद्ध अचल निजवीर्यनी, नैरुपाधिक शक्ति अनंत रे ॥ ते प्रगटी में जाणी सही, तिणें तुमहीज देव महंत रे ॥ ८ ॥ म० ॥ तुज ज्ञानें चेतना अनुगमी, मुज वीर्य स्वरूप समाय रे ॥ पंडित क्षायिकता पामशे, ए पूरणसिद्धि उपाय रे ॥ ९ ॥ म० ॥ नायक तारक तूं धणी, सेवनथी आतम सिद्धि रे॥ देवचन्द्र पद संपजे,वर परमाणंद समृद्धि रे॥१०॥म०॥

॥ अथ नवम श्रीसूरप्रभजिन स्तवन ॥

॥ देशी कडखानी ॥ सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता,तेणें चिरकालनो मोह जींत्यो ॥ भाव स्याद्वादता शुद्ध परकाश करि, नीपनो परम पद जग वदीतो ॥ १ ॥ सू० ॥ प्रथममिथ्यात्व हणि शुद्ध दर्शन निपुण,प्रगट करि जेणें अविरति पणासी॥ शुद्धचारित्र गत वीर्य एकत्वथी,परिणति कर्तृता सवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥ बारि परभावनी कर्तृता मूलथी, आतम परिणाम कर्तृत्व धारी ॥ श्रेणी आरोहतां वेद हास्यादिनी, सागमी चेतना प्रह निवारी ॥ ३ ॥ सू० ॥ भेदज्ञानें यथा वस्तुता ठेलवी, द्रव्य पर्याय

मे थइ अवेदी ॥ जाव सविकल्पता ठेदि केवल सकल. ज्ञान अनंतता स्वामि वेदी ॥ ४ ॥ सू० ॥ वीर्यक्षायिक बलें चपलता योगनी, रोधि चेत न कस्यो शुचि अलेशी ॥ जाव शैलेशीमें परम अक्रिय थइ, क्षय करी चार तनु कर्मशेषी ॥ ५ ॥ सू० ॥ वर्ण रस गंध विनु फरस संस्थान विनु, यो गतनु संग विनु जिन अरूपी ॥ परम आनंद अत्यंत सुख अनुनवी, तत्तत न्मय सदा चित्स्वरूपी ॥ ६ ॥ सू० ॥ तादृशी शूरता वीरता तीक्ष्णता, देखि सेवक तणो चित्त राच्यो ॥ राग सुप्रशस्तथी गुणी आश्चर्यता, गुणी अनुत पणे जीव माच्यो ॥ ७ ॥ सू० ॥ आत्मगुण रुचि थये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व निष्पत्ति निर्वाण पावे ॥ देवचंद शुद्ध परमात्म सेवनथकी, परम आ त्मिक आनंद पावे ॥ ८ ॥ सू० ॥ इति नवम सूरप्रन्नजिन स्तवन ॥ए॥

॥ अथ दशम श्रीविशालजिन स्तवन ॥

॥ प्राणी वाणी जिनतणी ॥ए देशी॥ देव विशाल जिणंदनी, तमे ध्यावा तत्त्व समाधि रे ॥ चिदानंद रस अनुनवी, सहज अकृत निरुपाधि रे ॥१॥ स०॥ अरिहंत पद वंदीयें गुणवंत रे ॥ गुणवंत अनंत महंत स्तवो, नवता रणो नगवंत रे ॥ ए आंकणी ॥ नव उपाधि गद टालवा, प्रभुजी ठो वैद्य अमोघ रे ॥ रत्नत्रयि औषध करी, तमें ताख्या नविजन उंघ रे ॥२॥त०॥अ०॥ नव समुद्र जल तारवा, निर्यामक सम जिनराज रे ॥ चरण जहाजें पामीयें, अक्षय शिवनगरनु राज रे ॥३॥अ०॥अ०॥ नव अटवी अति गहनथी, पारग प्रभुजी सथवाह रे ॥ शुद्धमार्ग दर्शक पणे, योग क्षेमकर नाह रे ॥४॥यो०॥अ०॥ रक्षक जिन ठ कायना, वली मोहनिवारक स्वामी रे॥ श्रम ण संघ रक्षक सदा, तेणें गोप ईश अनिराम रे ॥५॥ते०॥अ०॥ नाव अ हिंसक पूर्णता, माहणता उपदेश रे ॥ धर्म अहिंसक नीपनो, माहण ज गदीश विशेष रे ॥६॥मा०॥अ०॥ पुष्ट कारण अरिहंतजी, तारक ज्ञायक मु निचंद रे ॥ मोचक सर्व विनावथी, कींपावे मोह अरिंद रे ॥७॥कीं०॥अ०॥ कामकुंन सुरमणि परें, सहेजें उपगारी थाय रे ॥ देवचंद सुखकर प्रभु, गुण गेह अमोह अमाय रे ॥८॥गु०॥अ०॥ इति श्री विशालजिन स्तवनं ॥

॥ अथ एकादश श्रीवज्रधरजिन स्तवन ॥

॥ नदी यमुनाके तीर ॥ ए देशी ॥ विहरमान नगवान, सुणो मुज वि नति ॥ जगतारक जगनाथ, अठो त्रिभुवन पति ॥ नासक लोकालोक, ति

णे जाणो हती ॥ तो पण वितक वात, कहूं हुं तुझ प्रति ॥ १ ॥ हूं सरूप निज छांडि, रम्यो पर पुद्गलें ॥ झील्यो उलट आणी, विषय तृष्णाजलें ॥ आश्रव बंधविभाव, करूं रुचि आपणी ॥ भूल्यो मिथ्यावास, दोष द्युं परभणी ॥२॥ अवगुण ढांकण काज, करूं जिनमत क्रिया ॥ न तजुं अवगुण चाल, अनादिनी जे प्रिया ॥ दृष्टिरागनो पोष, तेह समकित गणुं ॥ स्याद्वादनी रीत न देखुं निजपणुं ॥ ३ ॥ मन तनु चपल स्वभाव, वचन एकांतता ॥ वस्तु अनंत स्वभाव, न भासे जे छता ॥ जे लोकोत्तर देव नमूं लौकिक थी ॥ दुर्लभ सिद्ध स्वभाव, प्रभो तहकीकथी ॥४॥ महाविदेह मझार के, तारक जिनवरु ॥ श्रीवज्रधर अरिहंत, अनंत गुणाकरु ॥ ते निर्यामक श्रेष्ठ,सही मुझ तारशे ॥ महावैद्य गुणयोग,रोग भव वारशे॥५॥ प्रभुमुख भव्य स्वभाव, सुणुं जो माहरो ॥ तो पामे प्रमोद, एह चेतन खरो॥ थाये शिव पद आश,राशि सुखवृंदनी ॥ सहज स्वतंत्र सरूप, खाण आणंदनी ॥ ६ ॥ वलगा जे प्रभुनाम धाम ते गुण तणा ॥ धारो चेतन राम, एह थिरवास ना ॥ देवचंद्र जिनचंद्र,हृदय स्थिर थापजो ॥ जिन आणायुत भक्ति, शक्ति मुझ आपजो ॥ ७ ॥ इति एकादश श्री वज्रधरजिन स्तवन ॥११॥

॥ अथ द्वादश श्री चंद्राननजिन स्तवन ॥

॥ वीरा चंदला ॥ ए देशी ॥ चंद्राननजिन, सांभलीए अरदास रे ॥ मुझ सेवक भणी, छे प्रभुनो विश्वासो रे ॥ १ ॥ चं० ॥ भरतक्षेत्र मानव पणो रे, लाधो दुःसम काल ॥ जिनपूरवधर विरहथी रे, दुलहो साधन चालो रे ॥ २ ॥ चं० ॥ द्रव्य क्रिया रुचि जीवडा रे, भाव धर्मरुचिहीन ॥ उपदेशक पण तेहवा रे, शुं करे जीव नवीन रे ॥ ३ ॥ चं० ॥ तत्त्वागम जाणग तजी रे, बहुजन संमत जेह ॥ मूढ हठी जन आदर्या रे, सुगुरु कहावे तेह रे ॥ ४ ॥ चं० ॥ आणा साध्य विना क्रिया रे, लोकें मान्यो रे धर्म॥ दंसण नाण चरित्रनो रे, मूल न जाण्यो मर्म रे ॥ ५ ॥ चं० ॥ गच्छ कदाग्रह साचवे रे, माने धर्म प्रसिद्ध ॥ आतम गुण अकषायता रे, धर्म न जाणे शुद्ध रे ॥ ६ ॥ चं० ॥ तत्त्वरसिक जन थोडला रे, बहुलो जन संवाद ॥ जाणो छो जिनराजजी रे, सघलो एह विवाद रे ॥ ७ ॥ चं० ॥ नाथ चरण वंदन तणो रे, मनमां घणो उमंग ॥ पुण्य विना किम पामीयें रे, प्रभुवंदनना रंग रे ॥ ८ ॥ चं० ॥ जगतारक प्रभु वादीए रे, महाविद

ह मझार ॥ वस्तुधर्मे स्याद्वादता रे, सुणि करिये निर्धार रे ॥ ९ ॥ च० ॥ तुझ करुणा सहु उपरे रे, सरखी छे महाराय ॥ पण अविराधक जीवने रे, कारण सफलु थाय रे ॥ १० ॥ च० ॥ एहवा पण नवि जीवने रे, देव नकि आधार ॥ प्रभुसमरणथी पामीये रे, देवचंद्र पद सार रे ॥ ११ ॥ च० ॥इति॥

॥ अथ त्रयोदश श्री चंद्रबाहुजिन स्तवन ॥

॥ श्री अरनाथ उपासना ॥ ए देशी ॥ चंद्रबाहुजिन सेवना, भवनाशिनी तेह ॥ परपरिणतिना पासने निष्कासन रेह ॥ १ ॥ च० ॥ पुद्गल भाव आशसना उल्लासन हेतु ॥ सम्यग्दर्शन वासना, भासनचरण समेत ॥ २ ॥ च० ॥ त्रिकरण योग प्रशंसना, गुणस्तवना रंग ॥ वंदन पूजन भावना निजपावना अंग ॥ ३ ॥ च० ॥ परमातम पद कामना, कामनाशन एह ॥ सत्तारूपे प्रकाशना करता गुणगेह ॥ ४ ॥ च० ॥ परमेश्वर आलंबना, राच्या जेह जीव ॥ निर्मल साध्यनी साधना, साधे तेह सदीव ॥ ५ ॥ च० ॥ परमानंद उपायता, प्रभु पुष्ट उपाय ॥ तुझ सम तारक सेवतां, परसेव न थाय ॥ ६ ॥ च० ॥ शुद्धातम संपत्ति तणा, तुम्हे कारण सार ॥ देवचंद्र अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥७॥च०॥ इति चंद्रबाहुजिन स्तवनं ॥

॥ अथ चतुर्दश श्रीभुजंगस्वामि स्तवन ॥

॥ देशी नणदली ॥ पुष्कलावइ विजय हो, के विचरे तीर्थपति ॥ प्रभुचरणने सेवे हो, के सुर नर असुरपति ॥ जस गुण प्रगटया हो, के सर्व प्रदेशमां ॥ आतम गुणनी हो के विकसी अनंत रमा ॥१॥ सामान्य स्वभावनी हो के परिणति असहाइ ॥ धर्मविशेषनी हो के गुणने अनुजाइ ॥ गुण सकल प्रदेश हो के निजनिज कार्य करे ॥ समुदाय प्रवर्ते हो के कर्ता भाव धरे ॥ २ ॥ जड द्रव्य चतुष्क हो के कर्तामाव नहीं ॥ सर्व प्रदेश हो के वृत्ति विभक्त कही ॥ चेतन द्रव्यने हो, के सकल प्रदेश मिले ॥ गुणवर्तना वर्ते हो, के वस्तुने सहज बले ॥ ३ ॥ संग्रह गुणकारी हो, के सकले गुण वर्ते ॥ इच्छादिक परिणति हो के भावे अनुसरते ॥ दानादिक लब्धि हो, के न हुवे सहाय विना ॥ सहकार अकंप हो, के गुणनी वृत्ति घना ॥ ४ ॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपणे ॥ वर्ते तेहने हो, के निजक गुण गणे ॥ ज्ञानादिक गुणनी हो, के वर्तना जीव प्रतें ॥ धर्मादिक द्रव्यने हो के सहकार करंते ॥ ५ ॥ सामान्य स्वभावना हो, के

प्रभुगुण धर्म रमी ॥ आतम अनुभवथी हो, के परिणति अन्य वमी ॥ तुझ शक्ति अनंती हो, के गातां ने ध्यातां ॥ मुझ शक्ति विकासन हो, के थाये गुण रमतां ॥ ६ ॥ इम निज गुणभोगी हो, के स्वामि भुजंग मुदा ॥ जे नित्य वदे हो, के ते नर धन्य सदा ॥ देवचंद्र प्रभुनी हो के पुण्ये भक्ति सधे ॥ आतम अनुभवनी हो, के नित्य नित्यशक्ति वधे ॥७ ॥ इति॥१४॥

॥ अथ पंचदश श्री ईश्वरदेवजिन स्तवन ॥

॥ काल अनंतानंत ॥ ए देशी ॥ सेवो ईश्वर देव,जिणे ईश्वरता हो निज अद्भुत वरी ॥ तिरोभावनी शक्ति, आविर्भावें हो सहु प्रगट करी ॥ १ ॥ अस्तित्वादिक धर्म, निर्मल भावें हो सहुने सर्वदा ॥ नित्यत्वादि स्वभाव, ते परिणामी हो जडचेतन सदा ॥ २ ॥ कर्त्ता भोक्ता भाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान चारित्रता ॥ गुणपर्याय अनंत, पाम्या तुमचा हो पूर्ण पवित्रता ॥ ३ ॥ पूर्णानंद सरूप, भोगी अयोगी हो उपयोगी सदा ॥ शक्ति सकल स्वाधीन, वरते प्रभुनी हो जे न चले कदा ॥ ४ ॥ दास विभाव अनंत, नासे प्रभुनी हो तुझ अवलंबने ॥ ज्ञानानंद महंत, तुझ सेवाथी हो सेवकने बने ॥ ५ ॥ धन्य धन्य ते जीव, प्रभुपद वंदी हो जे देशन सुणे ॥ ज्ञानक्रिया करे शुद्ध, अनुभव योगे हो निज साधक पणे ॥ ६ ॥ वारवार जिनराज, तुझ पद सेवा हो होजो निर्मली ॥ तुझ शासन अनुजाइ, वासन भासन हो तत्त्वरमण वली ॥ ७ ॥ शुद्धातमनिज धर्म, रुचि अनुभवथी हो साधन सत्यता ॥ देवचंद्र जिनचंद्र, भक्ति पसाय हो होशे व्यक्तता ॥ ८ ॥ इति पंचदश श्री ईश्वरनामाजिन स्तवन ॥ १५ ॥

॥ अथ षोडश श्री नमिप्रभजिन स्तवन ॥

॥ अरज अरज सुणोने रूडा राजीया हो जी ॥ ए देशी ॥ नमिप्रभ नमिप्रभप्रभुजी वीनवु हो जी,पामी पामीवर प्रस्ताव ॥ जाणो छो जाणो छो जिण विनवे हो जी, तोपण दासस्वभाव ॥१॥न०॥ हु करता हु करता पर भावनु हो जी, भोक्ता पुद्गलरूप ॥ ग्राहक ग्राहक व्यापक एहनो हो जी,राच्या जड भव भूप ॥२॥न०॥ आतम आतम धर्म विसारीया हो जी, सेव्या मिथ्या माग ॥ आश्रव आश्रव बंधपणु कयु हो जी, संवरनिर्जर त्याग ॥ ३ ॥ न० ॥ जडचल जडचल कर्म जे देहने हो जी, जाण्यु आतम तत्त्व ॥ बहिरातम बहिरातमता मे ग्रही हो जी, चतुरंगे एकत्व ॥ ४ ॥ न० ॥ के

वल केवल ज्ञानमहोदधि हो जी, केवल दंसण बुद्ध ॥ वीरज वीरज अनंत सनातनो हो जी, चारित्र क्षायिक शुद्ध ॥ ५ ॥ न० ॥ विश्रामि विश्रामि निजभावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद ॥ परमातम परमातम प्रभु देखता हो जी, भागि भ्रांति अनाद ॥ ६ ॥ न० ॥ जिनसम जिनसम सत्ता ओलखी हो जी, तसु प्रागभावनी इह ॥ अंतर अंतर आतमता लही हो जी, परपरिणति निरीह ॥ ७ ॥ न० ॥ प्रतिछंदे प्रतिछंदे जिनराजने हो जी, करता साधक भाव ॥ देवचंद्र देवचंद्र पद अनुभवे हो जी, शुद्धातम प्रागभाव ॥ ८ ॥ न० ॥ इति षोडश नमिप्रभजिन स्तवन ॥

॥ अथ सप्तदश श्री वीरसेनजिन स्तवन ॥

॥ भावा रे मात मल्हार ॥ ए देशी ॥ वीरसेन जगदीश, तारी परम जगीश, आज हो दीसे रे वीरजता त्रिभुवनथी घणी जी ॥ १ ॥ अणहारी अशरीर, अक्षय अजय अतिधीर, आज हो अविनाशी अलेशी ध्रुव प्रभुता बणी जी॥ २ ॥ अतींद्रिय गत कोह, विगतमाय मय लोह, आज हो सोहे रे मोहे जगजनता भणी जी ॥ ३ ॥ अमर अखय अरूप, पूर्णानंद सरूप, आज हो चिद्रूपे दीपे थिर समता धणी जी ॥ ४ ॥ वेदरहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय, आज हो ध्यायके नायकने ध्येयपद ग्रह्या जी ॥ ५ ॥ दानलाभ निज भाग, शुद्धस्वगुण उपभोग, आज हो अजोगी करता भोक्ता प्रभु लह्या जी ॥ ६ ॥ दरिसण ज्ञान चारित्र, सकल प्रदेश पवित्र, आज हो निर्मल निस्संगी अरिहा वंदीय जी ॥ ७ ॥ देवचंद्र जिन चंद्र, पूर्णानंदना वृंद, आज हो जिनवरसेवाथी, चिर आनंदीये जी ॥ ८ ॥ इति॥

॥ अथ अष्टादश श्री महाभद्रजिन स्तवन ॥

॥तट यमुनानु रे अति रलीयामणुं रे ॥ ए देशी ॥ महाभद्र जिनराज,राज विराजे हो आज तुमारडो जी॥ क्षायिकवीर्य अनंत, धर्म अभंग हो तुं साहिब वडो जी ॥१॥ हुं बलिहारी रे श्री जिनवरतणी रे ॥ कर्ता भोक्ता भाव कारज कारण हो तुं स्वामी छतो जी ॥ ज्ञानानंद प्रधान, सर्ववस्तुनो हो धर्म प्रकाशता जी ॥ २ ॥ हुं० ॥ सम्यग्दर्शन मित्र, स्थिरनिर्धार रे अविसंवादता जी ॥ अव्याबाध समाधि कोश अनश्वर रे निज आनंदता जी॥ ३ ॥ हुं० ॥ देश असंख्य प्रदेश, निजनिज रीतें रे गुण संपत्ति भर्या जी ॥ चारित्र दुर्ग अभंग, आतम शक्ते हो परजय संचर्या जी॥ ४ ॥ हुं० ॥

धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुता हो तुज बल आकरो जी ॥ तत्त्व सकल प्राग्भाव, सादि अनंती रे रीतें प्रभु धरो जी ॥ ५ ॥ हु० ॥ द्रव्य भाव अरिलेश, सकल निवारी रे साहिब अवतर्यो जी ॥ सहज स्वभाव विलास, जोगी उपयोगी रे ज्ञान गुणें भर्यो जी ॥ ६ ॥ हु० ॥ आचारिज उवझाय साधक मुनिवर हो देस विरत धरु जी ॥ आतम सिद्ध अनंत कारणरूपें रे योगक्षेमकरु जी ॥ ७ ॥ हु० ॥ सम्यग्दृष्टि जीव, आणारागी हो सहु जिनराजना जी ॥ आतम साधन काज सेवे पदकज हो श्री महाराजना जी ॥ ८ ॥ हु० ॥ देवचंद्र जिनचंद्र, भगतें राचा हो भवि आतम रुचि जी ॥ अव्यय अक्षय शुद्ध, संपत्ति प्रगटे हो सत्तागत शुचि जी ॥९॥ हु०॥

॥ अथ एकोनविंश श्री देवजसाजिन स्तवन ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहामणुं ॥ ए देशी ॥ देवजसा दरिसण करो, विघटे मोह विभाव लाल रे ॥ प्रगटे शुद्ध स्वभावता, आनंद लहरी दाव लाल रे ॥ १ ॥ दे० ॥ स्वामी वसो पुष्कर वर, जंबूभरतें दास लाल रे ॥ क्षेत्र विभेद घणो पड्यो किम पोहोचे उल्लास लाल रे ॥ २ ॥ दे० ॥ होवत जो तनु पांखडी आवत नाथ हजूर लाल रे ॥ जो होती चित्त आंखडी, देखत नित्य प्रभु नूर लाल रे ॥ ३ ॥ दे० ॥ शासनभक्त जे सुरवरा, विनवुं शीष नमाय लाल रे ॥ कृपा करो मुज उपरें, तो जिनवंदन थाय लाल रे ॥ ४ ॥ दे०॥ पूछुं पूर्वे विराधना शी कीधी इणे जीव लाल रे ॥ अविरति मोह टले नहीं, दीठे आगमदीव लाल रे ॥ ५ ॥ दे० ॥ आतम शुद्ध स्वभावने, बोधन शोधनकाज लाल रे ॥ रत्नत्रयि प्राप्ति तणा, हेतु कहो महाराज लाल रे ॥ ६ ॥ दे० ॥ तुज सरिखो साहिब मिल्या, भांजे भवभ्रम टेव लाल रे ॥ पुष्टालंबन प्रभु लहि, कोण करे परसेव लाल रे ॥ ७ ॥ दे० ॥ दीनदयाल कृपालुओ नाथ भविक आधार लाल रे ॥ देवचंद्र जिन सेवना, परमामृत सुखकार लाल रे ॥८॥दे०॥ इति श्रीदेवजसाजिन स्तवन ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवन ॥

॥ अजितवीर्यजिन विचरता रे ॥ मनमोहनारे लाल ॥ पुष्कर अर्द्धविदेह रे ॥ भविबोहनारे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारिखा रे ॥ मन० ॥ सेवे धन्य धन्य तेह रे ॥ भवि० ॥ १ ॥ जिनगुण अमृत पानथी रे ॥ म०॥ अमृतक्रिया सुपसाय रे ॥ भ० ॥ अमृतक्रिया अनुष्ठानथी रे ॥ म० ॥

वल केवल ज्ञानमहोदधि हो जी, केवल दंसण बुद्ध ॥ वीरज
अनंत स्वभावनो हो जी, चारित्र क्षायिक शुद्ध ॥ ५ ॥ न० ॥ वि
विश्रामि निजभावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद ॥ परमातम प
प्रभु देखता हो जी, भागि भ्रांति अनाद ॥ ६ ॥ न० ॥ जिनस
म सत्ता उलखी हो जी, तसु प्राग्भावनी इह ॥ अंतर अ
ता लही हो जी, परपरिणति निरीह ॥ ७ ॥ न० ॥ प्रतिछंदें
नराजनें हो जी, करता साधक भाव ॥ देवचंद्र देवचंद्र पद
जी, शुद्धातम प्राग्भाव ॥ ८ ॥ न० ॥ इति षोडश नमिप्रभ

॥ अथ सप्तदश श्री वीरसेनजिन स्तवन ॥

॥ लाछलदे मात मल्हार ॥ ए देशी ॥ वीरसेन जगदी
जगीश, आज हो दीसे रे वीरजता त्रिभुवनथी घणी जी
अशरीर, अक्षय अजय अतिधीर, आज हो अविनाशी
ता बणी जी॥ १ ॥ अतींद्रिय गत कोह, विगतमाय
सोहे रे मोहे जगजनता भणी जी ॥ ३ ॥ अमर अ
सरूप, आज हो चिद्रूपें दीपे थिर समता धणी
कषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय, आज हो ध्यायके
जी ॥ ५ ॥ दानलाभ निज भोग, शुद्धस्वगुण उप
करता भोक्ता प्रभु लह्यो जी ॥ ६ ॥ दरिसण ज्ञान
त्र, आज हो निर्मल निस्संगी अरिहा वदीयें
पूर्णानंदनो वृंद, आज हो जिनवरसेवाथी,

॥ अथ अष्टादश श्री महाभ